भारत - ईरान सम्बन्ध 1980-1995 तक

डी. फिल. उपाधि हेतु प्रेषित :-

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

राजनीतिशास्त्र विभाग

शोध प्रबन्ध

निर्देशक :

डॉ० मो० शाहिद

(वरिष्ठ प्रवक्ता)

राजनीति शास्त्र विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

अनुसंधान अध्येता-

विजय कुमार

एम.ए., एल.एल.वी.

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री विजय कुमार पुत्र श्री महावीर ने भारत-ईरान सम्बन्ध (1980 - 1995) शीर्षक पर शोध-कार्य मेरे मार्ग निर्देशन में किया गया है। मैं डी. फिल. उपाधि हेतु इनके शोध प्रबन्ध के जमा किये जाने की संस्तुति करता हूँ।

डॉ. मुहम्मद शाहिद
वरिष्ठ प्रवक्ता
राजनीति शास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

17.12.2002

अनुक्रमणिका

अध्याय – एक

भारत और ईरान ऐतिहासिक दृष्टिकोण

एशिया के अन्तर्गत भारत एक विस्तीर्ण प्रायद्वीप है । इसकी भौगोलिक स्थिति की चरम विषमता इसके विस्तार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । भारत देश की सीमा के अन्तर्गत एक ओर बर्फ से ढकी चोटियाँ, तो दूसरी ओर समुद्रतटीय निचले मैदान है । यदि एक ओर राजस्थान में शुष्क मरूस्थल है, तो दूसरी ओर मेघालय में स्थित चेरापूँजी में संसार की सबसे अधिक वर्षा होती है। भारत की इन्हीं विभिन्नताओं को केवल ऊपर से देखने वाले स्ट्रेची व शीली जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने इसको एक देश न कहकर उपमहाद्वीप (Sub Continent) तक कह दिया।[1] जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है, जिसका ग्राफ एक अरब को पार कर गया है। जिसमें चालीस विभिन्न जातियाँ (RACES) सम्मिलित है। ये लोग 161 विभिन्न भाषा में बोलते है तथा तीस विभिन्न लिपियों का प्रयोग करते है भारत में अनेक विभिन्नतायें होते हुए भी भौगोलिक सांस्कृतिक राजनीतिक भाषायी एकता विद्यमान है। प्राचीन भारत के लोग एकता के लिए प्रयत्नशील रहे। उन्होंने विशाल उपमहाद्वीप को एक अखण्ड देश समझा । सारे देश को भरत नामक एक प्राचीन वंश के नाम पर भारतवर्ष (अर्थात् भरतों का देश) नाम दिया गया और इसके निवासियों को ''भारत संतति'' कहा गया । विजेताओं और सांस्कृतिक नेताओं के मन में भारत का भान एक अखण्ड भूमि के रूप में ही हुआ है । भारत की इस एकता को विदेशियों ने भी सराहा है । वे सर्वप्रथम सिंधु तटवासियों के सम्पर्क में आये और इसलिए वे पूरे देश को ही सिंधु या इंडस नाम दे दिया । 'हिन्द' शब्द संस्कृत 'सिंधु' से निकला है और कालक्रमेण यह देश इन्डिया के नाम से मशहूर हुआ, जो इसके यूनानी पर्याय के बहुत निकट है । यह फारसी और अरबी भाषाओं में हिन्द नाम से विदित हुआ । फारस निवासी 'स' अक्षर का उच्चारण 'ह' की भाँति करते है।[2]

एशिया में ईरान एक प्राचीन और महान देश है, जो अपनी सभ्यता और संस्कृति के लिए

1. Lunia B ''भारत की संस्कृति एवं सभ्यता'' 16वाँ संस्करण,1998 आगरा, पृ0– 4
2. वही पृ.– 4

विख्यात है। इसका पुराना नाम पर्सिया था, जो फारस के नाम से भी 1935 तक जाना जाता था। कैस्पियन सागर और फारस कीखाड़ी के बीच स्थित ईरान पर्वतीय क्षेत्र से घिरा मध्यवर्ती पठार है।[1] यहाँ काफी उच्च तापमान रहता है। आवादान विश्व का दूसरा सबसे गर्म स्थान ईरान में ही है। जिसका तापमान 52.8Co है। यह भूकम्पीय पट्टी क्षेत्र में भी पड़ता है। संयुक्त अरब अमीरात से होरमुज के जल डमरू मध्य द्वारा इसे अलग किया जाता है। भारत की भाँति ईरान के लोगों का भी प्रधान व्यवसाय खेती ही है। यहाँ की मुख्य फसल भारत की भाँति गेहूँ, जौ, चावल, फल, ऊन तथा चुकन्दर है।[2] यह विश्व के सर्वाधिक तेल उत्पादक देशों में से एक है। यहाँ का प्रमुख उद्योग और व्यापार पेट्रोल तथा पेट्रोलियम पदार्थ, फल तथा मेवे है। भारत और ईरान दोनों में कालीन उद्योग बहुत समृद्ध है। ईरान का कालीन विश्व प्रसिद्ध है। दोनों देशों में कपास व कालीन का निर्यात किया जाता है। एशियाँ के दो बड़े राष्ट्र भारत और ईरान (कोलम्बो योजना) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सहसदस्य है तथा दोनों देश एक ही वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य बने, जहाँ इन दोनो देशों में कई बातों को लेकर साम्य है। वहीं कई बिन्दुओं पर दोनो देश एक दूसरे से अलग भी दिखायी देते है,जिसके पीछे इनकी भौगोलिक स्थिति, धर्म आदि तथ्य उत्तरदायी है। क्षेत्रफल की दृष्टि से ईरान भारत का लगभग आधा है, जबकि भारत की जनसंख्या ईरान की जनसंख्या के लगभग सोलह गुना है। कुछ समय पूर्व तक इतिहासकारों का विचार था कि प्राचीनकाल में भारत के अन्य देशों से सम्बन्ध न थे, किन्तु नवीनतम शोधकार्यो ने इस धारणा को भ्रामक प्रमाणित कर दिया है।

सिंधु सभ्यता सम्बन्धी विभिन्न प्रदेशों के उत्खनन से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि सिंधु लोगो के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध थे। यह संबंध राजनीतिक थे अथवा नहीं, इसमें सन्देह हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि मुख्य रूप से विदेशों से व्यापारिक संबंध है। इस व्यापारिक आदान–प्रदान ने सांस्कृतिक क्षेत्र में भी एक दूसरे को प्रभावित किया। हड़प्पायी लोंगो का वाणिज्यिक सम्बन्ध अफगानिस्तान और ईरान से भी था।[3] उन्होंने उत्तरी अफगानिस्तान में एक वाणिज्यिक उपनिवेश स्थापित किया था, जिसके

1. क्रानिकल ईयर बुक–1992,दिल्ली
2. वही
3. भारतीय इतिहास – एन.सी.ई.आर.टी. पृ.–64

सहारे उनका व्यापार मध्य एशिया से चलता था। उनके नगरों का व्यापार दजला और फरात प्रदेश के नगरों के साथ चलता था। सिन्धु सभ्यता में ईरान से शीशा आयात किया जाता था। मेसोमोटामिया के पुरालेखों, में दो मध्यवर्ती व्यापार केन्द्रों का उल्लेख मिलता है–दिलमुन और माकन, ये दोनो मेसोपोटामिया और मेहुला के बीच में है । दिलमुन की पहचान फारस की खाड़ी के बहरैन से की जा सकती है । वोगजकोई शिलालेख से ज्ञात होता है कि भारत के ईरान से 14 ई0पू0 से हीं सांस्कृतिक सम्बन्ध थे।[1] वैदिक भाषा की (और कुछ कम सीमा तक संस्कृत की) ईरानी भाषा के प्राचीनतम रूप 'अवेस्ता' की भाषा से तुलना करने पर अनुमान होता है कि ये दोनों किसी एक ही भाषा की बोलियाँ है।[2] भारत और ईरान के व्यापारिक सम्बन्ध भी घनिष्ट थे। ईरानी व भारतीय अनेक सांस्कृतिक परम्पराये भी एक समान थी, उदाहरण – सूर्य पूजा तथा अश्व पूजा, शक्ति पूजा, धाय रखने की प्रथा । चीनी लेखको एवम् अलवरूनी के वर्णन से पता चलता है कि ईरान में बौद्व धर्म प्रचलित था। ऐसा माना जाता है कि वे(आर्य) भारत में बाहर से आये थे। इसका प्रमाण यह है कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा और पश्चिम की पुरानी भाषाओं में इंडो–आर्य या इंडो–जर्मन दोनों भाषा परिवारों से निकली भाषाओं में भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक दूसरे में सादृष्य है।[3]

आर्यो के आदि देश सम्बन्धी मध्य एशिया मत के प्रतिपादक मैंक्समूलर का मानना है कि ईरान और भारत के मध्य किसी भाग, जहाँ कि यह लोग थे, से तीन दलों ने प्रस्थान किया, एक दल भारत दूसरा ईरान और तीसरा यूरोप चला गया जो आर्य भारत व ईरान में बसे इन्डो ईरानी आर्य कहा गया इनके आपस में एक दूसरे के यहां आने और बस जाने से सभ्यता और संस्कृति का आदान–प्रदान हुआ।[4] ईराक में मिले लगभग 1600 ई0पू0 के कस्सी अभिलेखों में तथा ई0पू0 14वीं सदी के मितन्नी अभिलेखों जो कुछ आर्य नामों का उल्लेख मिलता है । उससे संकेत मिलता है कि ईरान से आर्यो की एक शाखा पश्चिम की ओर चली गयी थी। एक शाखा ईरान या फारस में रह गयी, जबकि एक अन्य आगे बढ़ती गयी और सिन्धु के क्षेत्र में जिसे 'पंचनद' कहा जाता था, बस गयी। ऋग्वेद और अवेस्ता–प्राचीन यूनानियों का

1. भारतीय इतिहास – एन.सी.ई.आर.टी. पृ.–64
2. चोपड़ा, पुरी, दास– भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास पृ.–180 दिल्ली
3. वही पृ.–38

धर्मग्रन्थ, में शब्दों, वाक्यांशों, पद्यांशो और यहाँ तक कि पुराण कथाओं और आख्यानों में साक्ष्य से यह अनुमान होता है कि हिन्दुओं और पारसियों के पूर्वज दीर्घकाल तक साथ रहे थे। जब भारत में मगध के नरेश अपने साम्राज्य को विस्तृत कर रहे थे, फारस व ईरान के नरेश भी अपनी शक्ति में बृद्धि कर रहे थे। ईरानी साम्राज्य के संस्थापक युग पुरूष साइरस प्रथम (लगभग ई0पू0 558 से 530 ई0पू0) ने हिन्दुकुश पर्वत तक अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ा दी और गन्धार उसके साम्राज्य का एक प्रदेश हो गया। काबुल की धरती पर भी उसने विजय प्राप्त की। एक अन्य शासक डेरियस प्रथम ने ई0पू0 517 और 516 में भारत पर आक्रमण किया और पंजाब के एक भाग को अपने राज्य में मिला लिया। जेनोफेन तथा अन्य लेखकों के अनुसार ईरानी साम्राज्य के संस्थापक सम्राट साइरस (ई0पू0 558 से 529) ने भारत और इसके सीमान्त प्रदेशों पर कई सैनिक सरगर्मियाँ चालू की थीं और इस दिशा में उसने कुछ निश्चित प्रदेशों को भी जीत लिया । एरियन के अनुसार सिन्धु के पश्चिम में कोफेन (काबुल) तक के इलाके ने ईरानियों के सम्मुख आत्म समर्पण कर दिया था और वे साइरस को कर दिया करते थे। इस तथ्य की पुष्टि उसके नक्शी रूस्तम शिलालेख, परसी पोलिस शिलालेख, बेहिस्तुन शिलालेख से होती है । ईरानी साम्राज्य का यह 20वाँ प्रान्त था, जिसमें समस्त सिन्धु धाटी सम्मिलित थी । पंजाब इस सामाज्य का सबसे अधिक धनवान और घना बसा हुआ प्रान्त था, जिसकी माल–गुजारी डेढ़ करोड़ रूपये थी । ईरान प्रान्तपति व जिला अधिकारी पंजाब में रहते थे, और पंजाबी भी ईरानी सेना में भर्ती किये जाते थे, और ये युनान देश में ईरानियों की ओर से रणक्षेत्र में भी लड़ते थे । डेरियस के पश्चात् उसका पुत्र क्षमार्ष (xerxcs) शासक बना । डेरियस द्वारा विजित भारतीय प्रदेश क्षमार्ष के शासनकाल में उसके अधीन बने रहे । क्षमार्ष के उत्तराधिकारी अयोग्य थे, उनकी साम्राज्य विस्तार में कोई रूचि नही थी । जिससे भारतीय प्रदेशों पर ईरानी प्रभाव कम होने लगा, किन्तु यह विवादास्पद है कि भारतीय क्षेत्रों पर से ईरानी प्रभाव कब समाप्त हुआ, परन्तु यह स्पष्ट है कि हखमनी साम्राज्य के अन्तिम शासक डेरियस तृतीय था, जिसे 330 ई0पू0 में पराजित कर सिकन्दर ने विशाल साम्राज्य का पतन कर दिया । भारत और ईरान का यह सम्पर्क करीब

20 सालों तक बना रहा। इस ईरानी विजय ने दोनो देशों को राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से प्रभावित किया।[1] पाँचवीं सदी ई0पू0 में हीं भारत ने ईरान को 320 टेलेंट सोना नजराना के तौर पर दिया था । भारत और ईरान के बीच व्यापार को बढ़ावा मिला । इस सम्पर्क के राजनीतिक प्रभाव का उल्लेख करते हुए डा0 राजबली पाण्डेय ने लिखा है कि ईरानी आधिपत्य के समय "अनेक ईरानी, तूरानी, यूनानी व विदेशी लोग भारत के इस भू–भाग में आकर बस गये, जिन्होंने भारतीयों के साथ विवाह आदि किये। इनमें से कुछ तो शुद्ध भारतीय हो गये थे, परन्तु अधिकांश ऐसे थे, जिनकी विदेशियों के साथ सहानुभूति रहती थी और विदेशी आक्रमण के समय ये देश के लिए संकट रूप थे । ईरानी आक्रमण के वाणिज्यिक प्रभावों में ईरान के द्वारा पश्चिम, पूर्व जाने वाले व्यापार मार्गो को विस्तृत किया गया और उन्हें अपनी संरक्षा द्वारा सुरक्षित बनाकर भारत के व्यापार को बढ़ाया । ईरानी आक्रमणों ने भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से प्रभावित किया।[2] फारसी लेखकों ने भारत में अर्मई लिपि (Armaie Script) का प्रचार किया, जिससे कालान्तर में दाहिनी ओर से बाई ओर लिखी जाने वाली प्रसिद्ध खरोष्ठी लिपि विकसित हुई । पश्चिमोत्तर भारत में इसी लिपि में अभिलेख प्राप्त हुए है और यह लिपि ईसवी सन् की तीसरी सदी तक निरंतर प्रचलित रही। कुछ विद्वानों का मत है कि पाटिलिपुत्र में अशोक का स्तम्भों वाला विशाल कमरा चट्टानों और स्तम्भों पर उनके अभिलेख, स्तम्भ शीर्षो की घंटानुमान आकृतियों तथा वृषभ और सिंहयुक्त शीर्ष का मूल स्रोत ईरानी प्रभाव था।[3] मौर्य कालीन कला और स्थापत्य पर कुछ विद्वानों का कथन है कि ये स्तम्भ मौर्य सम्राट द्वारा नियुक्त ईरानी कलाकारों द्वारा बनाये गये थे।[4] मौर्य कला जो अशोक के शासनकाल में अपनी प्रगति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थीं, पर ईरानी कला की अमिट छाप है । यह ईरानी कला ई0पू0 चौथी सदी में कुछ अंशों तक यूनानी लोगो के घनिष्ठ सम्बन्ध थे । तक्ष्यशिला में प्रचलित कुछ सामाजिक प्रभावों पर ईरानी प्रथाओं का आभास प्राप्त होता है। ईरान का सासानी शासक यज्दागेर्द तृतीय(637–641ई0) इस्लाम के अनुयायियों द्वारा हटाया गया। यह ईरान के जरथुस्त धर्म(पारसी धर्म) को मानने वाले शासक थे। इस्लाम के प्रचार की प्रक्रिया से बचने के लिए अनेक पारसी लोग पश्चिमी भारत

1. ए.के. मित्तल, पृ.–77 पार्श्वोद्धृत ।
2. लूनिया वी.पृ.– 279 पार्श्वोद्धृत ।
3. ए.के. मित्तल पृ.–106 पार्श्वोद्धृत ।
4. वही पृ.–266

में गुजरात तथा बम्बई में आकर (संभवतः 10वीं और 11वीं सदी में) बस गये। शिलाहार राजाओं ने इन्हें संरक्षण प्रदान किया पारसी लोग यहाँ अपना अलग अस्तित्व बनाये रखने में सफल रहे।[1] संरक्षण क्यों प्रदान किया जाय? शासकों के इस प्रश्न पर इनका जबाब हुआ करता था कि- ''दूध के प्याले में शक्कर की तरह रहते है।'' मेगस्थनीज के अनुसार मौर्य सम्राट ईरानी प्रणाली से रहते थे । ईरानी सम्राट के समान ही वे अंगरक्षकों के द्वारा घिरे हुए एकान्त वास में रहते थे और समय-समय पर प्रकट होते थे । कुछ इतिहासकारो का मानना है कि ईरानी शासन के स्वरूप के अनुसार चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने साम्राज्य की स्थापना की थीं। भारत में ईरानी शब्द 'क्षत्रप' का प्रयोग, चन्द्रगुप्त मौर्य की केशधोवनविधि और पवित्र अग्नि को प्रज्जवलित करने की प्रथा, जिसका सम्राट कनिष्क ने अनुसरण किया था, ईरानी प्रभाव का परिणाम माना जाता है। मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने ईरानी सम्राटों की राज्य सभा के कुछ समारोहों को अपने यहाँ चलाया था और मौर्य शासन सेवा में ईरान के शासकीय अनुभव वाले योग्य कुलीन सामंतो को नियुक्त किया गया था।[2] उदाहरणतः काठियावाड़ के प्रान्त पति तुशाष्फ ऐसे ही व्यक्तियों में थे, जिनका नाम तथा पद जूनागढ़(गिरनार) के अभिलेख में आज भी अंकित है। गान्धार प्रान्त पर जो कला केन्द्र था पर चीनी,युनानी के साथ ईरानी संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट था।[3] ईरान का प्रभाव वास्तु एवं स्थापत्य कला पर भी पड़ा है। अशोक की बौद्ध शिल्प कला विशेषकर अशोक स्तंभ और उनके निर्माण करने की कला ईरानी प्रभाव के कुछ अवशेष प्रकट करती है । ईरान ने ही मौर्य शिल्पियों को लकड़ी, महीन चूने और ईट के स्थान पर पाषाण का प्रयोग सुझाया । चट्टानों की सतह पर शिलालेखों द्वारा धर्म प्रचार करने की प्रणाली ईरानियों में प्रचलित ऐसी ही प्रणालियों (उदाहरणार्थ डेरियस के वेहिस्तुम शिलालेख) से ली गयी थीं । इसके अतिरिक्त मौर्य साम्राज्य में एक छोर से दूसरे छोर तक जाने वाले लम्बे जनमार्गो के समान ही ईरान में भी जनमार्ग थे । पत्थरों पर चमकदार पालिश की कला भी भारतियों ने ईरानियों से सीखी।[4] अशोक के राज्यादेशें की प्रस्तावना और उसमें प्रयुक्त शब्दों में भी ईरानी प्रभाव देखा जाता है। उदाहणार्थ फारस शब्द दिपी के लिए अशोक कालीन लेखकों ने लिपि शब्द का प्रयोग किया है। ईरानी शिल्प पर बौद्ध

1. हरिश्चन्द्र वर्मा (सम्पादक) मध्यकालीन भारत, पृ.-75, 1996-दिल्ली ।
2. ए.के. मित्तल, पृ.-106-पार्श्वोद्धृत
3. वहीं, पृ.-133
4. वहीं, पृ.- 77

धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में ईरानी सिक्के भी मिलते है। भारतीय मुद्राओं पर भी ईरान का प्रभाव पडा। ईरानी आक्रमण के भारत में दूरगामी प्रभाव हुए। भारतीय सैनिकों ने ईरान की ओर से अनेक युद्धों में अपने रण कौशल का परिचय दिया, इनकी यह युद्ध कुशलता ने इन्हें विश्व प्रसिद्ध कर दिया। विशेष रूप से 'थर्मोपल्ली' के युद्ध के पश्चात् युद्धों के लिए भारतीय सैनिकों की मॉग बहुत बढ़ गयी।[1] ऐसा नहीं कि ईरान भारत का इस समय का सम्बन्ध सर्वथा सकारात्मक और स्वागत योग्य परिणामों का ही जन्मदाता रहा है, इसके नकारात्मक परिणाम भी हुए है। युनानियों को जो भारत की अपार सम्पत्ति की जानकारी मिली, वह ईरानियों के जरिये ही। इन जानकारियों से भारत की सम्पत्ति के लिए उनका लालच बढ गया और अन्ततोगत्वा भारत पर सिकन्दर ने आक्रमण कर दिया।[2] सिकन्दर–संकट भारत और ईरान पर एक साथ आया। सिकन्दर ईरान विजय के पाश्चात्य इतिहास के पिता कहे जाने वाले हेरोडोटस और अन्य यूनानी लेखकों के भारत के एक अपार सम्पत्ति वाले देश के वर्णनों से ही भारत की तरफ अपने धन लालच के कारण प्रेरित हुआ। प्राचीन भारत में समुद्री मार्ग पश्चिमी भारत के समुद्र तट के बन्दरगाहों को ईरान की खाड़ी होते हुए सैल्यूशिया से और दक्षिण अरब के बन्दरगाहों से होते हुए मिश्र से मिलाता था। भारतीय जहाज ईरान की खाड़ी तक आते–जाते थे, जिससे व्यापारिक आदान–प्रदान होता था।[3]

पश्चिमोत्तर भारत में शकों के आधिपत्य के बाद पार्थियाई या पह्लव लोगो का आधिपत्य हुआ। प्राचीन भारत के अनेक संस्कृत ग्रन्थों में इन दोनो जनो के एक साथ उल्लेख 'शक' 'पह्लव' के रूप में मिलते है। वास्तव में ये दोनो कुछ समय तक इस देश में समानान्तर शासन करते रहे । पार्थियाई लोगों का मूलवास स्थान ईरान में था, जहॉ से वे भारत की ओर चले।[4] यूनानियों और शकों के विपरीत, वे ईसा की पहली शदी में पश्चिमोत्तर भारत में एक छोटे से भाग पर ही सत्ता जमा सके। मिथिडेट्ज भारत पर आक्रमण कर झेलम और सिन्धु नदी के बीच के प्रदेश पर शासन करने वाला प्रथम पार्थियन नरेश था। सबसे प्रसिद्ध पार्थियाई राजा हुआ गोविन्दोफिनर्स था। अपने से पहले केशको की तरह ही पार्थियाई लोग

1. ए.के. मित्तल, पृ.–77 पाश्र्वोद्धृत ।
2. भारत का इतिहास – NCERT
3. चोपड़ा, पुरी, दास– पृ.–140, पाश्र्वोद्धृत ।
4. भारत का इतिहास – NCERT पृ.–150

भी भारतीय राजतन्त्र के और समाज के अंग बन गये। इन्हे द्वितीय श्रेणी के क्षत्रिय का स्थान मिला। भारतीय समाज में विदेशियों का आत्मसातकरण जितना अधिक मौर्येत्तरकाल में हुआ, उतना प्राचीन भारत के इतिहास में और किसी भी काल में नही हुआ। ईशा के बाद पहली और दूसरी शताब्दियों में शक्तिशाली कुषाण साम्राज्य की सीमाए पश्चिम में ईरानी साम्राज्य की सीमा को स्पर्श करती थीं। परिणाम स्वरूप सम्पर्क और व्यापारिक संबंध भी स्थापित हुआ था। कनिष्क जो प्राचीन भारत का महानतम शासक था, के समय में भारतीय सभ्यता का विदेशों में प्रचार-प्रसार हुआ।[1] इस संबंध में डा0 राय चौधरी ने लिखा है- कनिष्क के वंश ने भारतीय सभ्यता के लिए मध्य एवं पूर्वी एशिया का द्वार खोल दिया। कनिष्क के सिक्के यूनानी व ईरानी प्रभाव को प्रदर्शित करते है। वास्तव में वे यूनानी भारतीय और ईरानी देवी देवताओं का विलक्षण सम्पर्क प्रदर्शित करते है। कुषाणों ने रेशम के उस प्रख्यात मार्ग पर नियंत्रण कर लिया, जो चीन से चलकर कुषाण साम्राज्य में शामिल मध्य एशिया और अफगानिस्तान से गुजरते हुए ईरान जाता था । यह रेशम मार्ग कुषाण का एक बड़ा आय स्रोत था । व्यापारियों से उगाही गयी चुंगी से अत्यधिक मात्रा में धन हीं नहीं सभ्यता एवं संस्कृति के पारस्परिक संवहन में भी यह मार्ग अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ।[2] रोचक बात यह है कि कौस्मास के काल में भारत में बाहर आयात की जाने वाली वस्तुओं में अरब और पार्सिया(ईरान) की सर्वोत्तम नस्लों के घोड़े और इथोपिया के हाथी दन्त भी होते थे, क्योंकि इथोपिया में बड़े-बड़े दन्तैल हाथी बहुत थे।[3]

शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य के बाद महाराज हर्ष के भी शासन काल में भारत और ईरान के बीच सम्बन्धों के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध है। फारस के साथ भी हर्ष ने राजनयिक संबंध स्थापित किये थे। हर्ष व ईरान के शासक ने एक दूसरे को उपहार भेजे थे।[4] राजपूत कालीन भारत में दोनो देशों के छुट-पुट सम्पर्को के सिवा कोई विशेष संबंध नहीं थे। इस काल में भारत विश्व के अन्य देशों से पृथक रहा । सल्तनत कालीन भारत में राजनयिक और सांस्कृतिक दोनो प्रकार के संबंधों का साक्ष्य मिलता है, जिसमें सांस्कृतिक संबंध ज्यादा महत्वपूर्ण था। राजनयिक संबंधों में एक दूसरे के यहाँ प्रचलित राजनयिक

---

1. भारत का इतिहास - NCERT पृ.-151
2. ए.के. मित्तल - पृ.-33, पार्श्वोद्धृत ।
3. चोपड़ा, पुरी, दास- पृ.-143, पार्श्वोद्धृत
4. ए.के. मित्तल- पृ.-163, पार्श्वोद्धृत ।

परम्पराओं का प्रभाव दोनों देशों में दिखाई देता था। मध्यकालीन भारत में लाख (गोंद) बंगाल और उड़ीसा में कई स्थानों पर तथा धार में भी बनाई जाती थीं। इसका निर्यात फारस को होता था।[1] सांस्कृतिक सम्बंधों में फारसी साहित्य के विद्वानों का एक दूसरे के यहाँ आना-जाना हुआ था। दिल्ली के सुल्तानों ने फारसी भाषा को अपनी राज भाषा बनाया और इसके विकास के लिए अनेक संस्थायें शुरू कीं । ऐबक ने विद्वानों और कवियों को उदारता से दान दिया और कई फारसी विद्वानों को राजनयिक संरक्षण प्रदान किया इल्तुतमिस ने भी फारसी विद्वानों का सम्मान किया। उसके दरबार के फारसी विद्वानों में प्रमुख थे-ख्वाजा-आबू-नस्र, समरकन्द के अबूबक्र विन, मुहम्मद रूमानी, ताजुद्दीन बाबिर तथा नुरूद्दीन मुहम्मद हौफी। इस काल में फारस के रीति-रिवाजों और जीवन को अपनाया गया। इल्तुतमिश और बलवन दोनों ने अपने वंश को फिरदौसी के शाहनामें में उल्लिखित पौराणिक अफरासियाब से जोड़ा। रजिया को अपना उत्तराधिकारी चुनते समय भी इल्तुतमिश ने ईरानी परम्परा से प्रेरणा ली थीं। जहाँ पिता के बाद पुत्री के सिंहासनारोहण के उदाहरण प्राप्त होते थे। बलबन ने अपने पौत्रो का नाम फारस के सम्राटों के समान कैकुवाद, कौखसरो तथा कैकास रखे थे। फारसी रिवाजों समव्यवहारों, संस्कारों व उत्सवों को अपनाया गया। नौरोज का उत्सव मनाना बलवन से शुरू किया था। उसने अपने दरबार की संरचना भी फारसी के आधार पर की। सेना की संरचना मध्यकालीन फारसी सेना के आधार पर थी और उसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, युद्ध सामग्री एवं युद्ध प्रणाली अपनाई गयी।[2] बलवन के दरबार में मध्य एशिया से बहुत से विद्वान आये, जिन्हें सुल्तान ने संरक्षण दिया। बलवन से सर्वप्रथम फारस के इस्लामिक राजत्व के राजनीतिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के आधार पर अपने शासन को संगठित किया। इस प्रकार बलवन के राजत्व सिद्धान्त का स्वरूप और सार फारस के राजत्व से प्रेरित था। उसने फारस के लोक प्रचलित वीरों से प्रेरणा लेकर अपना राजनीतिक आदर्श निर्मित किया था, उसका अनुसरण करते हुए उसने राजत्व की प्रतिष्ठा को उच्च सम्मान दिलाने का प्रयत्न किया। राजा को धरती पर ईश्वर का प्रतीक ''नियामते खुदाई'' माना गया।[3] खुसरों को बलवन से लेकर गयासुद्दीन तुगलक तक सभी सुल्तानो ने संरक्षण प्रदान

1. ए.के. मित्तल, पृ.पृ.-301-302
2. हरिश्चन्द्र वर्मा - पृ.-171-पार्श्वोद्धृत
3. वही पृ.पृ.-180-82

किया। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में प्रमुख फारसी विद्वान सुद्रुद्दीन अली, फखरुद्दीन, इमामुद्दीन रजा, मौलाना आरिफ, अब्दुल हकमी, सिहाबुद्दीन सद्रनिशीन प्रमुख थे। इन फारसी विद्वानों के लेखन एवं साहित्य सृजन में ईरानी फारसी साहित्य के विद्वानों का प्रभाव दिखाई पड़ता था। भारतीय फारसी साहित्य से ईरानी फारसी साहित्य भी प्रभावित हुआ।[1] अमीर खुसरों ने 'फारसी हिन्दी कोष' की रचना की जिससे दोनों भाषाओं के साहित्य के पारस्परिक आदान–प्रदान का रास्ता और साफ हुआ। जैसा कि साहित्य के बारे में कहा जाता है कि साहित्य तत्कालीन देश की सम्यता संस्कृति, समाज को भी चित्रित करता है तथा उसका संवाहक भी होता है। साहित्यिक सहयोग और आदान–प्रदान से भारतीय और ईरानी परिचय के उस चतुर्दिक पारदर्शी चौराहे पर खडे हुए जहा से सब कुछ साफ–साफ नजर आता है। 'अवेस्ता' ईरानी भाषा का प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसकी बहुत सी बाते ऋग्वेद से मिलती है। दोनों ग्रन्थों में बहुत से देवताओं के और सामाजिक वर्गो के नाम भी समान है। सूफीमत के चिश्ती सम्प्रदाय की भारत में स्थापना शेख मुईनुद्दीन चिश्ती ने की थी। इनका जन्म 1141 ई0 में ईरान के सिस्तान नामक नगर के संजर गॉव में हुआ था।[2] अपने जीवन काल में ये इतने लोकप्रिय हो गये थे कि इन्हे मुहम्मद गोरी ने 'सुल्तान–उल–हिन्द' अर्थात हिन्द का आध्यात्मिक गुरू की उपाधि से विभूषित किया था। इन्होने कव्वाली के रूप में एक नयी शैली के आध्यात्मिक संगीत की परम्परा डाली । चिश्ती सम्प्रदाय के सिद्वान्त ईरानी प्रभाव से पूर्णतयः मुक्त नहीं थे। शेख मुईनुद्दीन चिश्ती द्वारा जिया ईरान, उनके द्वारा देखा हुआ ईरान, उनके द्वारा लाया हुआ ईरान, भारत में तब तक रहा जब तक शेख चिश्ती रहे। भारतीय संस्कृति और सभ्यता में एकीकरण की इतनी अधिक शक्ति है कि देश के आरम्भिक आकान्ताओं जैसे यूनानी, शक, हूण, पार्थियन आदि भारतियों में पूर्णरूपेण मिल गये और वे एकात्मय और अनन्यता को सम्पूर्णतया खो बैठे। यह सत्य है कि जब कभी दो प्रकार की सभ्यतायें एवं संस्कृतियॉ परस्पर सम्पर्क में आती है तो वे एक दूसरे को प्रभावित करती है। भारतीय और ईरानी सम्पर्क को इसी परिपेक्ष्य में देखना होगा। भारतीय और ईरानी एक दूसरे के विचार और प्रथाओं को अपनाये। जिसके फलस्वरूप अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए। हैवेल ने ठीक ही

1. ए.के. मित्तल– पृ.– 301–302
2. वही पृ.–315

कहा है कि ईरानी और भारतीय संस्कृति में जो सामानताये है, वे एक समान परम्पराओं के कारण है और किसी ने भी एक दूसरे की नकल नहीं की है। मोहम्मद बिन कासिम ने 712 ई0 में सिन्ध पर विजय प्राप्त कर ली, जो भारत में पहला मुस्लिम उपनिवेश बना था।[1]

मुगल कालीन भारत में काबुल कन्धार के बाबर शासित होने के कारण पारस्परिक सम्पर्क व व्यापारिक सम्बन्ध भारत व ईरान के बीच था। 1539 ई0 में चौसा के युद्व में 1540 ई0 में कन्नौज के युद्व में शेरशाह से पराजित होने के पश्चात् हुमायूँ ईरान भाग गया। अकबर के साम्राज्य में गजनी कन्धार जैसे पश्चिमी इलाके शामिल थे। इस समय ईरान के साथ व्यापारिक सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित था । कन्धार का दुर्ग भारत और फारस के बीच स्थित था। जो व्यापारिक एवं सामरिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण होने के कारण कलह का कारण बना रहा।[2] मुगल दरबार में आन्तारिक कलह उत्पन्न होने से 1621 ई0 में ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार को घेर लिया तथा 1622 ई0 में कन्धार पर अधिकार कर लिया । जहाँगीर कन्धार पर अधिकार नहीं कर सका क्योंकि उसके शासन के आन्तिम दिनों में फारस के शाह ने कन्धार पर अधिकार किया था । शाहजहाँ कन्धार को पुनः प्राप्त करना चाहता था क्योंकि कन्धार राजनैतिक एवं व्यापारिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। 16 मई 1649 को शाही सेना ने कन्धार पहुचते ही घेराबन्दी आरम्भ कर दी। यह घेराबन्दी साढ़े तीन माह तक चली। मुगल सेना को कोई सफलता न मिलती देख 3 सितम्बर 1649 को कन्धार से प्रस्थान आरम्भ करना पड़ा। 1652 ई0 में एक बार पुनः शाहजहाँ के आदेशानुसार शहजादा औरगंजेब और सादुल्ला ने दुर्ग की घेराबन्दी आरम्भ की।[3] परिणाम वही 'ढाक के तीन पात' रहने पर शाहजहाँ ने इन्हे वापस बुला लिया दो बार असफल हो जाने पर भी शाहजहाँ ने कन्धार जीतने की आशा नहीं छोड़ी और 1653 ई0 में दाराशिकोह के नेतृत्व में सेना भेजी । पाँच माह की घेराबन्दी पर भी दारा की सारी तैयारी निष्फल रही । शाहजहाँ की असफलता का घटिया तोपो तथा घटिया अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग भी एक कारण था। इसी युद्व के पश्चात् शाहजहाँ ने सैन्य सुधारों पर ध्यान दिया इसके पीछे ईरान का सामारिक प्रभाव ही उत्प्रेरक के रूप में था।

1. भारत का इतिहास –NCERT पृ.– 235
2. चोपड़ा, पुरी, दास– पृ.– 181–83, पार्श्वोद्धृत
3. ए0के0 मित्तल– पृ.–390, पार्श्वोद्धृत ।

ईरानी सेना हमेशा बचाव की नीति ही अपनायीं। ईरानी सेनानायक अपेक्षाकृत अधिक महत्वाकाक्षी व साहसी थे। साथ ही उन्हे मुगलों की भॉति रसद की कमी का भी सामना नहीं करना पड़ा। भारत और ईरान के कन्धार मुकाबले दोनों देशों का पारस्परिक सामरिक परिचय कराया। औरगंजेब भी कन्धार विजय का स्वप्न अपने शासनकाल में देखता था पर अन्य समस्याओं में व्यस्तता के कारण उसका स्वप्न साकार न हो सका। इसका यह स्वप्न भारत और फारस के बीच मधुर सम्बन्धों के रास्तें में एक रोड़ा ही बना रहा।

मुगलकालीन शासन व्यवस्था पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।[1] जैसा कि विदित है मुगलों का मूल प्रदेश मध्य एशिया था मुगल राजव्यवस्था का आधार फारस और अरब की राज संस्थाए थीं। सेना की विशेष व्यवस्था थीं। सभी कर्मचारियों को सेना में भर्ती होना पडता था उसी के अनुसार मनसब के अनुक्रम में उनका वेतन विनिश्चित किया जाता था। सास्कृतिक एवं साहित्यिक आदान-प्रदान भी मुगलकालीन भारत और ईरान में हुआ।[2] मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर स्वयं तुर्की एवं फारसी का बड़ा विद्वान था। हुमायूँ तथा उसकी बहन गुलबदन बेगम भी फारसी की विद्वान थीं। हुमायूँ ने जिसे अन्य तैमूरियों के समान कला में अभिरूचि थीं, फारस में अपने निर्वासन के समय चीनी-फारसी संगीत, काव्य और चित्रकला का अध्ययन करने में बिताया तथा शाह तहमास्प के उदार संरक्षण में रहने वाले फारस के प्रमुख कलाकारों के सम्पर्क में आया। बाद में इन्हीं कलाकारों को काबुल लाया गया । हुमायॅ और उसका पुत्र अकबर इनसे चित्रकला सीखते थे तथा उन्हें ''दस्तानें अमीर हमजा'' के लिए चित्र बनवाने का कार्य सौंपा गया । ये विदेशी कलाकार अपने भारतीय सहायकों के साथ मुगल चित्रकला प्रणाली के केन्द्रीय भाग बन गये, जो अकबर के समय में अत्यन्त विख्यात हुई ।[3] अकबर के शासनकाल में फारसी तथा तुर्की साहित्य की सर्वाधिक उन्नति हुई। अकबर की मॉ जाम के एक फारसवासी शेख परिवार में उत्पन्न हुई थी, जिससे उसने विरासत में ही फारसी विचार पाये और वह उससे चिपका रहा।[4] अबुल फजल की 'आइने-अकबरी' निजामुद्दीन अहमद की तबकात-ए-अकबरी तथा फैज सरहिन्दी का अकबरनामा इसी काल की कृतिया है। ये फारसी साहित्य से समय-समय पर व आवश्यकतानुसार उर्जा अर्जित व

1. ए.के. मित्तल, पृ.पृ.-405-6, पार्श्वोद्धृत
2. वहीं पृ.पृ.-413-15
3. मजूमदार राय चौधरी दत्त- भारत का वृहद इतिहास भाग-2, पृ.-308 दिल्ली ।
4. वहीं पृ.-298

अर्पित करते रहे है। जिससे "भारत ईरान साहित्यिक सवंहन" की एक शाश्वत धारा प्रवाहित रही थीं। जहागीर और शाहजहाँ ने भी अनेक फारसी विद्वानों को आश्रय प्रदान किया था। जिनका ईरान के फारसी विद्वानों से सम्बन्ध था। जहाँगीर अपने पितामह बाबर के समान फारसी साहित्य का उच्चकोटि का विद्वान था। उसने 'तुजुक-ए-जहागीरी' नामक आत्मकथा फारसी में लिखी थी। मोतदिय खाँ तथा कामदार खाँ तथा अन्य अनेक फारसी के उच्चकोटि के विद्वान भी जहागीर के शासन काल में थे जिनका ईरानी फारसी साहित्यकारों से सम्बन्ध था। इनकी पारस्परिक फारसी कृतियों के भी आदान-प्रदान होते थे। औरगंजेब उच्च शिक्षा प्राप्त फारसी विद्वान था इसने भी फारसी विद्वानों का आश्रय प्रदान किया। जिनका भी सम्बन्ध ईरान व ईरानी फारसी साहित्य से था । इन फारसी विद्वानों द्वारा भारत के अनेक ग्रन्थों – रामायण, महाभारत, अथर्ववेद आदि का अनुवाद फारसी में हुआ । इन अनुवादित ग्रन्थों का ईरान जाना तथा उनका ईरानी फारसी विद्वानों द्वारा अध्ययन दोनों देशों के बीच पारस्परिक सांस्कृतिक समझ में सहायक सिद्व हुआ ।[1] मुगलकाल स्थापत्यकला क्षेत्र में एक नवयुग का सूत्रपात करता है जिसे इण्डो पार्शियन स्थापत्य शैली कहा जाता है। जिसके माध्यम से ईरानी स्थापत्य की अनेक बारीकिया भारतीय स्थापत्य कला में सहज ही चली आयी । भोग विलास की सामग्री ललित कलाएं उद्यान निर्माण कला चित्रकला एवं अन्य कलाओं पर भी ईरानी प्रभाव देखा जा सकता था । मीर सैयद अली, ख्वाजा अब्दुल समद, दसवन्त और बसखन आदि चित्रकारों का संबंध ईरानी चित्रकारों से रहा, जो एक दूसरे से प्रभावित होते रहे थे। यद्यपि शाहजहाँ का शासनकाल वास्तुकला के चरमोत्कर्ष का काल रहा । उस समय की इमारते विश्व प्रसिद्ध है, जिनकी स्थापना व निर्माण में ईरानी कला व कलाकारों का सहयोग रहा है।[2] ऐसा नही कि भारतीय इमारते ही ईरानी स्थापत्य के प्रभावों में रहीं । भारतीय स्थापत्य कला का प्रभाव भी तत्कालीन ईरानी स्थापत्य पर पड़ा, उसका दूरगामी प्रभाव भी हुआ । दोनो देशों की कलाओं एवं कलाकारों का समन्वय नवीनकला तकनीकों के विकास में सहायक सिद्ध हुआ । चित्रकला के साथ संगीत भी दोनों देशों के प्रभाव से अछूता न रहा । इस क्षेत्र में भी पारस्पारिक प्रभाव भी पड़े । तत्कालीन मुगल

1. ए.के. मित्तल- पृ.-302 पार्श्वोद्धृत ।
2. चोपड़ा, पुरी, दास पृ.पृ. 216-17 पार्श्वोद्धृत ।

सरदार अपने दरबार ईरानी तरीके से लगते थे । उस समय के विशेषाधिकार प्राप्त वर्गो में जो मुगल सरदार थे उनमें ईरानी भी थे।[1] रहन–सहन, खान–पान एवं जीवन के अन्य दैनिक कार्यों में ईरानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता था । तत्कालीन मुगल शासक समाज पूर्णतया ईरानी प्रभावों मे था। इन्हीं ईरानी सरदारों की स्वदेश वापसी के साथ भारतीय रीति–रिवाज व परम्परायें रहन–सहन के तौर–तरीके सहज रूप से ईरान चले गये और वहाँ की सामाजिक व्यवस्थाओं में घुल–मिल गये। आभूषण, भोजन, वस्त्र आवास फर्नीचर, श्रृंगार, मनोरंजन के साधन आदि पर ईरान का प्रभाव पड़ा था। बहुत सारी वस्तुए समानरूप से उभय देशों में प्रचलन में थीं जो एक दूसरे के सम्बन्धों के प्रभाव के कारण थीं, मनोरंजन के साधनों में पशुदौड़, पशु युद्ध, घुड़सवारी, ताश आदि में दोनो देशों के कलाकारों के बीच–बीच में सहयोग एवं सम्पर्क होते रहते थे, जिनसे उभय देश प्रभावित होते रहे थे। मुगल चित्रकला में भारतीय एवं फारसी शैलियों का सम्पर्क समागम चल ही रहा था कि 1526 ई0 में मुगलों का आगमन हुआ । वे अपने साथ कला की नयी परम्परायें लाये, जिसे फारस के महान कलाकार विहजाद (पन्द्रहवी सदी) ने विकसित किया था ।[2] चित्रकला ही नहीं स्थापत्य कला भी ईरानी प्रभाव से परिष्कृत एवं परिमार्जित हुई। शाहजहाँ ने स्थापत्य कला की अर्ध हिन्दू उदारवादी शैली, जो कि अकबर की इमारतों की विशेषता थी, को त्याग कर पुनः फारसी पद्धति के रूपांकणों को अपनाने का प्रयत्न किया । शाहजहाँ द्वारा आगरे में ताजमहल के मकबरे का निर्माण मुगल स्थापत्य कलां की चरमसीमा है, इसे उसने अपनी प्राणोपम पत्नी की यादगार स्वरूप बनवाया था । इसे विश्व में स्थापत्यकला के चमत्कार का नमूना माना जाता है । इसे बनाने में बीस वर्षो का समय लगा तथा केवल मकबरे के निर्माण में पचास लाख रकम खर्च की गयी थीं । इसकी सम्पूर्ण रचना और सामान आदि में इससे बहुत अधिक व्यय हुआ है। ऐसा अनुमान है कि यह राशि 411,48,826रू0 के करीब होगीं। इसका प्रधान शिल्पकार एक तुर्क (या फारसी) उस्ताद इशां था, जिसे बड़ी संख्या में हिन्दू कारीगरों का सहयोग प्राप्त था।[3] प्राचीनतम भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का एक प्रधान गुण एकीकरण करने की शक्ति थीं, परन्तु जब कभी दो प्रकार की सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ परस्पर

1. ए.के. मित्तल– पृ.–418 पार्श्वोद्धृत
2. चोपड़ा, पुरी, दास– पृ. 186 पार्श्वोद्धृत
3. वहीं पृ.पृ.–216–217

सम्पर्क में आती है, तो वे परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती है।[1] भारत पर इस्लामी प्रभाव के दृष्टिकोण से 11वीं शदी के आरम्भ में भारत में तुर्क अफगानों की विजय बहुत महत्वपूर्ण रही, जिसके द्वारा इस्लाम के भारत में राजनीतिक शक्ति के रूप में आगमन हुआ। मुसलमानों की अरब–ईरानी संस्कृति एक संयुक्त संस्कृति थीं अरबो ने ईरान और मिश्र की प्राचीन सभ्यता तथा यूनानी, रोम सभ्यता की शेष परमराओं को आत्मसात कर लिया था।[2]

दक्षिणी भारत में बहमनी साम्राज्य के विघटन के बाद विकसित अहमद नगर, बीजापुर, गोलकुण्डा के दकनी सुलतानों ने भी मुगल परम्परा से अलग चित्रकला की अपनी शैली बना ली थी। यहाँ के शासक सिया थे, जिनका फारस से गहरा राजनीतिक सम्बन्ध था, फलस्वरूप कई फारसी और तुर्की कलाकार बीजापुर और गोलकुण्डा के राजदरबारों में नियुक्त किये गये थे । इसी से दकनी स्कूल के आरम्भिक चित्रों में फारसी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । प्राकृतिक दृश्य एवं सजावटी तत्व फारसी का बोध देते है ।[3] बहमनी सल्तनत भी वास्तु शिल्प की अपनी एक अलग शैली विकसित करने में सफल रहीं थीं। यह न तो परम्परागत द्रविण–चालुक्य शैली पर आधारित थीं और न दिल्ली सल्तनत की शैली पर। यह प्रत्यक्ष रूप से फारस के वास्तु शिल्प से प्रभावित थीं, जहाँ से बहमनी राज्य का संस्थापक एक सहयात्री के रूप में आया था, वह अपने साथ बड़ी संख्या में शिल्पकार, कारीगर और मजदूरों को भी लाया था। साथ ही मोहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित करने के निर्णय से भी कई शिल्पकार शाही सेवा छोड़कर बीजापुर आ गये थे । जहाँ दिल्ली और फारसी दो स्थापत्य शैलियों का सामन्जस्य आरम्भ हो गया था।[4] कलात्मक ही नहीं आर्थिक सम्बन्धों का भी साक्ष्य उपलब्ध है। दक्षिण भारत में किशमिश और खजूर का फारस तथा अरब से और अफीम का अफ्रीका से आयात होता था।[5] बहमनी साम्राज्य का शासक महमूद गावाँ बड़ा साहित्यिक और सांस्कृतिक सुरूचि सम्पन्न व्यक्ति था। वह विद्वानों का महान संरक्षक था, उसने अपनी राजनीतिक गतिविधियों को केवल बहमनी साम्राज्य तक ही सीमित नहीं रखा। वरन् भारत और उसके बाहर ईरान, इराक और मिश्र तथा टर्की के सुलतानों के साथ

1. लूनिया बी. पृ.–279 पार्श्वोद्धृत
2. चोपड़ा, पुरी, दास– पृ. 102 पार्श्वोद्धृत
3. वही पृ.पृ.– 197–98 पार्श्वोद्धृत
4. वही पृ. 209

पत्र व्यवहार किया।[1] बहमनी साम्राज्य में युरोप की सैनिक और वास्तुकला का जितना प्रभाव यहाँ देखने को मिलता है, उतना भारत की समकालीन किसी अन्य शैली में नहीं। गुलवर्गा का जामा मस्जिद ईरानी वास्तुविदों की कृत के रूप में विख्यात है। दौलता बाद स्थित चाँदमीनार (1435ई0) और वींदर स्थित महमूद गवान महाविद्यालय (1472ई0) जैसे अन्य भवन भी प्रमुख रूप से ईरानी शैली में बने है और अवश्य ही अधिकांशतः उसी देश के वास्तुविदों एवं कारीगरों द्वारा बनाये गये होगें। अन्य भवनों पर ईरानी शैली की प्रेरणा अधिक आंशिक तथा अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है। गुलवर्गा में मोहम्मद शाह ने दो मस्जिद बनवाया। इसमें पावदान के दण्डे वाले गुम्बद तथा शकरे प्रवेश द्वार है, जो ईरानी शैली की खास विशेषतायें है।[2] मकबरों पर ईरानी रूप सज्जा का प्रभाव है। हिन्दू प्रभाव मकबरों के बाहरी भाग पर तथा ईरानी प्रभाव भीतरी, जो ईरानी जिल्दसाजी एवं कसीदाकारी के सुन्दर नमूने की याद दिलाती है–देखने में आता है।[3]

ब्रिटिश भारत और ईरानः–

ब्रिटिश भारत और ईरान के सम्बन्धो में कर्जन की वैदेशिक कार्ययोजना तथा आंग्ल अफगान सम्बन्धो पर ही विशेष ध्यान केन्द्रित करना होगा, क्योंकि इसके सिवा कोई विशेष घटना–विकास उल्लेखनीय नही है। ब्रिटिश भारत के ज्यादातर हुक्मरानों ने अपना ध्यान भारतीय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से निपटने पर ही केन्द्रित किया। ब्रिटिश भारत शासित परिक्षेत्रों पर संकट स्वरूप व उसके हितबाधक घटनाओं के विरूद्ध ही क्रिया – प्रतिक्रिया की रणनीति ब्रिटिश हुक्मरानों की रही। आकलैण्ड (AUCKLAND) 1836 में गवर्नर जनरल बन कर भारत आया। उस समय तेहरान में रूस के प्रसार के समाचार मिले । रूस के मध्य एशिया में प्रसार की गाथा 1801 में उसके जार्जिया पर अधिकार से आरम्भ होती है। रूस ने दो युद्धों (1811–13) और (1826–28) में फारस (ईरान) को परास्त किया और उसे कैस्पियन सागर के आस–पास के कई इलाके रूस को देने पड़े । रूस का प्रभाव फारस में बढ़ गया और अंग्रेजो की फरात नदी के रास्ते भारत को एक और मार्ग स्थापित करने की योजना असफल हो गयी।[4] कालान्तर में रूस के भय से निपटने के लिए क्या किया जाय इस पर लार्ड पामर्स्टन और

1. हरिश्चन्द्र वर्मा– पृ. 323 पार्श्वोद्धृत ।
2. नीलकण्ठ शास्त्री पृ.पृ.–424–25 पार्श्वोद्धृत ।
3. वहीं पृ.–425
4. बी.एल. ग्रोवर–आधुनिक भारत का इतिहास पृ.पृ.–311–12 दशम संस्करण–1995 एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0 राम नगर, दिल्ली ।

आकलैण्ड ने योजना बनाई। योजना और उसके कियान्वयन से जिसमें महाराजा रणजीत सिंह का सहयोग प्रमुख था, आंग्ल-अफगान मित्रता तो नहीं बन सकी, उलटे शत्रुता ही बढ़ गयी, जिसके फलस्वरूप रूस और ईरान में फिर प्रसार की नीति अपनाने का प्रयत्न किया।[1] आंग्ल-अफगान संघर्ष में ब्रिटिश भारत की रणनीति रूस एवं ईरान का तथ्य प्रभावी भूमिका निभाता रहा। 'रूसी भय' एवं ईरानी परिक्षेत्र पर आधिपत्य की लालच आंग्ल हुक्मरानों की अफगान नीति के निर्देशक तत्व रहे। आंग्ल-अफगान संबंधों में दूसरा अध्याय लार्ड एलनबरों के शासनकाल से आरम्भ होकर लार्ड नार्थब्रुक के वायसराय काल तक चलता है। इस काल में कुशल अकर्मण्यता की नीति (Polcy of masterly inactivity) का काल कहा जाता है। कुछ लोगों ने इसका अर्थ अकर्मण्यता और सभी प्रकार के राजनीतिक संबंधों को तोड़ना माना है। लारेन्स के जींवनी लेखक आर0बी0 स्मिथ ने उसे उपयुक्त रूप से इस प्रकार वर्णन किया है- ''सर जान लारेन्स की विदेशनीति आत्मनिर्भरता, आत्मनिग्रह, रक्षा की, न कि व्यतिक्रमण की, प्रतीक्षा की और प्रतिरक्षा की नीति थी, ताकि यदि इस प्रकार के आक्रमण कार्य का भी अवसर आये, तो यह ठीक दशा में कठोर आघात कर सके'' रूस का भय सभी भारतीय सरकारों को भयभीत करता रहा था। लारेन्स का कार्य काल भी अछूता नही था। आंग्ल-अफगान समस्या पर 1867-68 में हम लारेन्स की नीति में कुछ परिवर्तन देखते है। यह नीति दो शर्तो पर निर्भर थी- एक कि सीमा पर कोई झगड़ा उत्पन्न न हो और दूसरे कि प्रतिद्वन्दी दूसरे देशों से सहायता न लें। यदि कोई प्रतिद्वन्दी ईरान और रूस से सहायता लेगा, तो लारेन्स काबुल के अमीर को (जो कोई भी हो) थोड़ा धन और हथियारों की सहायता अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए देगा।[2] मेयों और नार्थब्रुक ने इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया, अपितु इसे कायम रखते हुए विकसित किया। 1867 में लिटन के वायसराय बनने पर निश्चय पूर्वक परिवर्तन आया। वह रूस की एशिया और यूरोप में बढ़ती हुई शक्ति को रोकना चाहता था। अपने विविध उपक्रमों से अफगानिस्तान के अमीर को अपनी विदेशनीति भारत सरकार द्वारा चलाने स्वीकार करा ली। आंग्ल-अफगान संबंधों में यह ब्रिटिश भारत की महत्वपूर्ण सफलता थी, जिससे ब्रिटिश भारत और

1. बी.एल. ग्रोवर-पृ.-315 पार्श्वोद्धृत
2. वहीं पृ.- 318

ईरानी संबंध गम्भीर रूप से प्रभावित हुए। यही क्रम लार्ड रिपन के भी समय में रहा, परन्तु 1921 में एक शांति संधि की गयी, जिसमें अफगानिस्तान को अपने विदेशी मामलें स्वाधीनता पूर्वक चलाने के तथ्य को पुनः स्वीकार कर लिया गया। वारेनहेस्टिंग्ज और वेलेजेली के काल में ही उपयुक्त थल सीमा का प्रश्न प्रशासको और गृह सरकार के मन को चिन्तित करता रहा था । कर्जन ने इस प्रश्न को नये दृष्टिकोण से देखा। जैसा कि के0एम0 पन्निकर ने कहा है कि '' एक ऐसे साम्राज्य का स्वरूप दे दिया, जिसकी आवाज को सुनना आवश्यक हो गया!'' कर्जन की एशिया के अन्य देशों– अरब, ईरान, अफगानिस्तान, तिब्बत और श्याम तक के प्रति साधारण नीति थी। अंग्रेजों की फारस की खाड़ी में विशेष रूचि 17वीं शताब्दी से थी। जब से उन्होंने इस प्रदेश में महत्वपूर्ण क्षेत्र जीत लिये थे। 19वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षा में यूरोपीय शक्तियों में अपने–अपने उपनिवेशों और प्रभाव क्षेत्रों को बनाने में होड़ लगी हुई थी। रूस दक्षिण की ओर फारस की खाड़ी में कोई प्रभाव क्षेत्र, बन्दरगाह प्राप्त करना चाहता था। 1892 में मस्यू डेलोकेल (M. Deloncle) ने फ्रांस के निचले सदन में भाषण में कहा था कि ''इंग्लैण्ड के अकेले ही फारस की खाड़ी में शान्ति बनाये रखने के दावें और अरब अमीरों के झगड़ों में मध्यस्थता करने के अधिकार को हम स्वीकार नही करते।''[1] कर्जन द्वारा भारत में बैठकर नीतियों को निर्देशित करने का सबसे जोरदार प्रयास विदेशी सम्बन्धों में दिखाई देता है, जहॉ उसके अतिशय रूस–भय के कारण ब्रिटिश सरकार को अक्सर उलझन की स्थिति का सामना करना पड़ता था, जो पहले ही उस ओर महात्वाकांक्षी कदम उठा चुकी थीं। 1907 में इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूस के बीच में त्रिराष्ट्रीय मैत्रींय संघ के रूप में होने वाली थीं। वायसराय ने बार–बार फारस की खाड़ी और सियेस्तान में एक निश्चित ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने की इच्छा प्रकट कीं। पर्याप्त सोच–बिचार के पश्चात् इंग्लैण्ड की सरकार इस बात पर सहमत हुई कि खाड़ी के संबंध में ''मुनरो सिद्धान्त'' जैसी कोई घोषण की जाय, जिसमें अन्य शक्तियों को चेतावनी दीं गयी हो और उसने अनिच्छापूर्वक स्वयं कर्जन को उस क्षेत्र में ध्वजारोहण की अनुमति दे दी।[2] कर्जन स्वयं 1903 नवम्बर, दिसम्बर में खाड़ी गया। उसने अंग्रेजो की उस देश में रूचि को प्रदर्शित किया। कर्जन ने फारस,

1. बी.एल. ग्रोवर पृ.–304 पार्श्वोद्धृत ।

2. सुमित सरकार– आधुनिक भारत पृ.पृ. 119–20 पंचम संस्करण –1998 राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ।

अफगानिस्तान का सीस्तान के मामले के झगड़े में रूस को हस्तक्षेप करने का अवसर नहीं दिया, क्योंकि 1857 की एक संधि के अनुसार फारस और अफगानिस्तान ने अपने झगड़े अंग्रेजों की सहायता से सुलझाना स्वीकार किया था ।[1] कर्जन एक बहुत बड़ा साम्राज्यवादी व्यक्ति था। वह भारत को इतना महत्व देता था, यह इस बात से स्पष्ट है कि उसने 1898 में कहा था कि भारत हमारे साम्राज्य का केन्द्र है। यदि साम्राज्य अपना अन्य कोई भाग खो बैठता है, तो हम जीवित रह सकते है, परन्तु यदि हम भारत को खो बैठे तो हमारे देश के साम्राज्य का सूर्य अस्त हो जायेगा ।[2]

ब्रिटिश भारतीय विदेश नीति में जहाँ कर्जन के पूर्व लिटन के मुखर साम्राज्यवाद का स्वर सुनाई नहीं पड़ता, वहीं 1860 के दशक में ''अप्रतिम निषिक्रयता'' के दिनों की अपेक्षा कुल मिलाकर अधिक आक्रामक दृष्टिकोण ही देखे जाते रहे। यह बात तब अधिक समझ में आती है, जब इसे अफगानिस्तान की ओर बढ़ते हुए रूस, हिन्द चीन पर पार्सिया और फ्रान्स के बढ़ते हुए प्रभाव एवं तीव्र होती साम्राज्यवादी प्रतिद्वान्दिता के संबंध में देखा जाय।[3] ब्रिटिश भारत की विदेशों में किये जाने वाले अभियानों एवं सैन्य विस्तार का निश्चित अर्थ था। वित्तीय बोझ 1873 के बाद से सोने की तुलना में चाँदी के रूपये के अवमूल्यन से भारतीय वित्तीय व्यवस्था पर बहुत बोझ बढ़ गया। इसमें ईरान में ब्रिटिश भारत के सैन्य उपक्रम भी शामिल थे । 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में इस बात पर चिन्ता जताई गयी । मेसोपोटामिया, ईरान तथा अन्य विदेशी भूमियों से भारतीय सेना को वापस बुलाने की माँग की गयी ।[4] वास्तव में विदेशी भूमि पर भारतीय सेना भेजने का ब्रिटिश शासन का एक मात्र लक्ष्य आय के श्रोतो का विस्तार करना ही था। ईरानी दक्षिण भारत में इसी संबंध में से उपजी परिस्थितियों के कारण कई स्थानों पर रहते भी थे। गुजरात के राजपथों पर केवल गुजरात और मराठा प्रान्त के स्थानीय लोग ही नहीं, बल्कि सिन्धी, फारसी, अरबी, आर्मेनियावासी, पारसी, यहूदी तथा बोहरों के साथ अंग्रेज, डच, पुर्तगाली व्यापारी भी देखे जा सकते थे।[5] उत्तरोत्तर स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रभाव की तीव्रता एवं ब्रिटिश भारत सरकार तथा लन्दन स्थित ब्रितानी सरकार की साम्राज्य विस्तार की सिमटती सम्भावनाओं के कारण भारत ईरान

1. वी.एल. ग्रोवर पृ.पृ.–300–301, पार्श्वोद्धृत ।
2. वही पृ.–304–305
3. विपिन चन्द्र–भारत का स्वतन्त्रता संहार्ष –पृ. 312 प्रथम संस्करण– हिन्दी मा0 कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली ।
4. सुमित सरकार पृ. 32 पार्श्वोद्धृत ।
5. चोपड़ा, पुरी, दास– पृ. 132 पार्श्वोद्धृत ।

सम्बन्धों में स्वतन्त्र भारत के पूर्व कोई प्रभावी एवं उल्लेखनीय घटना का विकास नहीं हुआ ।

ब्रिटिश भारत में सरकारी काम–काज की भाषा फारसी के स्थान पर अंग्रेजी हो जाने के कारण मुगलकालीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान की अनवरत परम्परा सर्वथा अवरूद्ध हो गयीं। सम्बन्धों व सम्पर्को के केन्द्र में साम्राज्य विस्तार सैनिक एवं कूटनीतिक पहलू हीं रहे। ब्रितानी सरकार भारत को अपना बाजार एवं कच्चे माल के कारखाने के तौर पर प्रयुक्त करतीं रहीं। यहीं कारण है कि इस अवधि में व्यापारिक एवं वाणिज्यिक संबंध भी ब्रिटिश भारत एवं ईरान के बीच सामान्य रहे। फारस के साथ व्यापारिक सम्बन्धों के यहाँ के तत्कालीन बन्दरगाहों, उनसे निर्यातवस्तुओं तथा निर्यात स्थानों को दर्शाने वाली निम्न सारणी से समझा जा सकता है[1] :–

क्र0सं0	तटवर्ती क्षेत्र तथा मुख्य बन्दरगाह	निर्यात की मुख्य वस्तुएँ	नियत स्थान
1.	सिन्ध लाहरी बन्दर	लट्ठा	फारस की खाड़ी
2.	चौदल,दमोल,राजापुर	मुख्यतः लट्ठा और मंहगा सामान, कुछ कालीमिर्च (तीर्थयात्री)	फारस की खाड़ी
3.	गुजरात, कैबे, गोध दीऊ, सूरत, कोंकण	सूतीमाल,सूत,नील(तीर्थयात्री)	फारस की खाड़ी
4.	गोआ गोआ(भटकल,लुप्त)	जहाज पर माल बदलना, कुछ स्थानिक निर्यात	फारस की खाड़ी
5.	उत्तर मछली पटम	सस्ता कपड़ा तथा मलमल, सुन्दर वस्तुएँ तथा सूत	फारस की खाड़ी

उपरांकित सारणी के अवलोकन से ईरान और भारत के बीच दीर्घकालिक संबंधों का साक्ष्य मिलता है।

1. चोपड़ा, पुरी, दास– पृ.पृ. 103–4 पार्श्वोद्धृत

अध्याय–2

इस्लामिक गणराज्य का उदय और सुधारवादी आन्दोलन तथा भारत

ईरान की क्रान्ति निश्चय ही समसामयिक युग की एक महत्वपूर्ण घटना है । इसके फलस्वरूप विश्व का सबसे शक्तिशाली राजतन्त्र अपने ही बोझ से चरमरा कर ढह गया । एक राष्ट्रव्यापी जनमत संग्रह के बाद ईरान एक इस्लामिक गणराज्य बन गया ।[1] सम्पूर्ण विश्व में ईरान की छवि एक कट्टर मुस्लिम देश की बन गयी । वर्ष 1979 में शाह को अपदस्थ किये जाने एवं इस्लामिक क्रान्ति के बाद जो शासन स्थापित हुआ उसका विशेष बल इस्लाम के नियमों का कठोरता से पालन कराये जाने पर था । इस कट्टरपंथ का नेतृत्व ईरान के तत्कालीन कट्टर धार्मिक नेता आयतुल्लाह खुमैनी के हाथों में था ।[2] 1953 में डा0 मुहम्मद मुसद्दिक के नेतृत्व में ईरान में एक 'लघुक्रान्ति' हुई थी । सही दिशा के अभाव में कुछ ही महीने के अन्दर राजतन्त्र की पुनः स्थापना हो गयी । शाह पुनः सत्ता में आ गये और उन्होंने कठोर दमन नीति का सहारा लिया । पेट्रोल उत्पादन में वृद्धि के कारण देश की अर्थ व्यवस्था बड़ी तेजी से आगे बढ़ी । राजनीतिक मोर्चे पर अपेक्षाकृत शन्ति छा गयी, पर वास्तव में यह राख के नीचे छिपी चिनगारी की स्थिति थी ।[3] अन्दर ही अन्दर लोगों में विद्रोह की भावना सुलग रही थी क्योंकि आर्थिक प्रगति भले ही हुई थी पर देश का आर्थिक विकास नहीं हो पाया था । राजनैतिक गतिविधि का संचालन शाह ही करते रहे, साथ ही गुप्त पुलिस अपना शिकंजा कसती गयी । विचार स्वातन्त्रय का नामोनिशान मिटा दिया गया । प्रचार और सूचना माध्यम जनता तक केवल ऐसी सूचना पहुँचाने लगे । जिससे शाह प्रसन्न हो सके । जनता की तकलीफो को दूर करने का कोई उपाय नहीं किया गया । सरकार के भीतर और बाहर भ्रष्टाचार विशेष

---

1. दिनमान हिन्दी साप्ताहिक 22–28 अप्रैल 1979 पृ. 38
2. क्रानिकल पत्रिका पृ. 33 अगस्त 1997
3. डी.एन. वर्मा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध – पृ. 468

रूप से फैला हुआ था और बढ़ता जा रहा था । आधुनिकिकरण के नाम पर परम्परागत सभ्यता, संस्कृति और मान्यताओं को तिलांजलि दी जाने लगी । गुप्त पुलिस सब जगह लोगों का पीछा करती रहती थी । जो इस स्थिति का थोड़ा सा विरोध करता उसे तेजी से दवा दिया जाता था ।

देश के आर्थिक विकास के लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा था । सरकार ने बुनियादी उद्योगों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया । अधिकांश कारखाने विदेशी मशीन आधारित या तो स्वयं शाह के थे या शाही परिवार के थे । देश का एक मात्र स्थिर और स्थायी उद्योग तेल उद्योग था । लेकिन इसकी भी अपनी सीमाएं थीं । 1973–77 के बीच ईरान में एक ऐसा आर्थिक असन्तुलन पैदा हो गया जिसके कारण देश के भिन्न वर्गो की बीच तेजी से असंतोष और विद्रोह की भावना घर करने लगी । अभूतपूर्व मुद्रस्फीर्ति, तेजी से बढ़ती हुई कीमते, वेतहाशा बढ़ते हुए किराये, वेतनवृद्धि की मॉग और शहरी तथा ग्रामीण आय में बढ़ने वाला अन्तर, इन सब कारणों के मिल जाने के कारण एक कुचक्र पैदा हो गया । ईरान के पास पेट्रोडालर की कोई कमी नहीं थीं । लेकिन उसको हथियार खरीदने पर खर्च किया जाता था । 1970–78 के बीच ईरान के शाह ने दस अरब डालर मूल्य के हथियार अमेरिका से खरीदे । इन आठ वर्षो के दौरान अमेरिकी हथियारों की कुल बिक्री का पच्चीस प्रतिशत भाग अकेले ईरान ने खरीदा । इनके संचालन एवं रख–रखाव हेतु हजारों की संख्या में तकनीशियनों का भी आयात करना पड़ा । 1978 के अन्त तक लगभग दस हजार अमेरिकी ईरान के हथियार सम्बन्धी काम–काज में लगे थे । ईरानी सेनाओं के अत्याधुनिक बनाने की शाह की मंशा के कारण ईरान शीघ्र ही अमेरिकी हथियारों का सबसे बड़ा ग्राहक बन गया । हथियार व्यापार में लाखों डालरों की रिश्वत और कमीशनों का लेन–देन शुरू हुआ कुछ ही दिनों में यह आम जानकारी में हो गया कि अनेक उच्चाधिकारी और शाही धराने के सदस्य इस भ्रष्टाचार में शामिल थे ।[1] 'ओपेक' द्वारा तेल मूल्य में वृद्धि के कारण पश्चिम युरोप के आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण ईरान में मन्दी का दौर चलने लगा। हथियार खरीद एवं शाही खर्च में निरन्तर वृद्धि होती रही । मुद्रा स्फीर्ति भयंकर रूप से बढ़ गयी। सामाजिक जीवन में आर्थिक असमानता बढ़ती गयी ईरान की अर्थव्यवस्था तेजी से विगड़ने लगी ।[2] 1970

1. डी.एन. वर्मा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध – पृ. 469 पार्श्वोद्धृत
2. पी.डी. कौशिक अन्र्राष्ट्रीय सम्बन्ध

के दशक में शाह के नेतृत्व में ईरान एक आधुनिक एवं शक्तिशाली देश बनता प्रतीत होता था, जिसके अमेरिका से दृढ़ मैत्री सम्बन्ध थे, परन्तु 70 के दशक के अन्तिम वर्षों में मध्यपूर्व में इस्लामिक पुरातनपंथी के विश्वास के पुनर्जागरण ने मोरक्को से लेकर इण्डोनेशिया तक के 60 करोड़ मुसलमानों के उत्साह एवं आकंक्षाओं को जागृत कर दिया ।[1] जनता में व्याप्त असन्तोष पर शाह ने कठोरता से काम लिया । इन्होंने विद्यार्थियों, सरकारी और गैर सरकारी कर्मचारियों, धार्मिक नेताओं के सरकार विरोधी प्रदर्शनों को कुचलने के लिए ईरान की सड़कों और गली कूचों तक में सेनाएं तैनात कर दी । हजारों निहत्थे लोग मौत के घाट उतार दिये गये और असंख्य लोगों को ईरान की कुख्यात जेलों में ठूस दिया गया । धीरे-धीरे ईरानी समाज के अन्य वर्गो ने भी इन विरोध प्रदर्शनों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया और अन्त में पूरा देश शाह के विरूद्ध संगठित हो गया । [2]

ईरान, जिसे मध्यपूर्व की कुंजी ''(Key to the Middle East) कहा जाता है, विश्व के तेल उत्पादक देशों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।[3] यहाँ के शाह इस भ्रम में रहे कि जनता उनके प्रति वफादार है, देश में राजनीतिक स्थिरता और आर्थिक समृद्धि है और इसी के आधार पर उन्होंने 'श्वेत क्रान्ति' के बाद देश को ''प्राचीन महान सभ्यता'' के स्वार्णिम युग की ओर ले जाने के लिए कदम उठाने शुरू कर दिये उन्होंने ईरानी राजतन्त्र को इस्लाम के आगमन से पूर्व का प्रचारित करना शुरू कर दिया । इस तरह शाह ने ईरान के उलेमाओं को चुनौती दी । जनता तो बेहद नाराज थी ही, उलेमाओ ने जनता को नैतिक समर्थन दिया । जल्द ही ईरान के धर्म स्थल शाह विरोधी आन्दोलन के केन्द्र बन गये । इन्हीं उलेमाओं ने जनता की राजनीतिक और प्रगतिशील मॉगों का समर्थन करना शुरू कर दिया । व्यापक जन असन्तोष की स्थिति में उन्होंने जनता की मॉगों को जोर शोर से उठाया और इस तरह भारी जन समर्थन हासिल कर लिया । ऐसे ही धार्मिक नेताओं में एक थे आयतुउल्लाह खुमैनी जिन्हें शाह के दमन चक्र से बचने को लिए 1965 में ईरान छोड़ना पड़ा ।

1978 के अगस्त में ईरान के भीतर सुलग रहे असन्तोष ने विस्फोट का रूप अख्तियार कर लिया।

1. पी.डी. कौशिक – पृ. 574 पार्श्वोद्धृत
2. डी.एन. वर्मा पृ.–470 पार्श्वोद्धृत
3. पी.डी. कौशिक पार्श्वोद्धृत

10 अगस्त को ईरान के एक महत्वपूर्ण नगर इस्फहान में भारी पैमाने पर दंगे भड़क उठे । जिसमें सैकड़ो लोग मारे गये । 12 अगस्त को इस्फहान नगर में मार्शल ला लागू कर दिया गया । ईरानी सेनाओं को सतर्क कर दिया गया । शाह के विरूद्ध ईरानी जनता ने खुला संघर्ष छेड़ दिया लेकिन यह भी स्पष्ट हो गया कि संघर्ष की वागडोर शाह के राजनीतिक विरोधियों के हाथ से निकल कर पूरी तरह कट्टरपंथी लोगों के हाथ में पहुँच गयी थीं वैसे भी 1970 के दशक के अन्तिम वर्षों में मध्यपूर्व में इस्लामी पुरातनपंथी के विश्वास के पुर्नजागरण में मोरक्को से लेकर के इण्डोनेशिया तक के 60 करोड़ मुसलमान के उत्साह और आकांक्षाओं को जागृत कर दिया । इस पुर्नजागरण के केन्द्र में 77 वर्षीय धार्मिक नेता आयतुउल्लाह रूहुल्लाह खुमैनी थे । वे फ्रांस में निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे । ईरान में खुमैनी के धार्मिक समर्थक तथा उदारवादी स्वतन्त्रताओं के प्रेमी पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त ईरानी शाह के शासन के विरूद्ध कार्य कर रहे थे । इन दो परस्पर असंगत तत्वों के सम्मिलित प्रभाव से ईरान मे शाह के शासन के विरूद्ध असंतोष बढ़ता जा रहा था । 1 जनवरी 1979 को ईरान के सैनिक प्रधान मंत्री ने त्याग पत्र दे दिया । सोशल डेमोक्रेट पार्टी के डा0 शापुर वख्तियार ने नई नागरिक सरकार का निर्माण किया, शाह ने संवैधानिक राज्याध्यक्ष के रूप में कार्य करना स्वीकार किया, परन्तु स्थिति फिर भी बिंगड़ती गयी । तथा 16 जनवरी 1979 को शाह स्वदेश छोड़कर चले गये । 1 फरवरी 1979 को 14 वर्ष के निवार्सित जीवन के बाद आयतुउल्लाह खुमैनी वापिस ईरान लौट आये और सत्ता पूरी तरह उनके हाथ में आ गयी । 12 मार्च 1979 को ईरान 'सेन्टो' से अलग हो गया । पहली अप्रैल को ईरान एक इस्लामिक गणन्त्रत घोषित कर दिया गया।[1]

विश्व के गौरवशाली राजतंत्र के पतन और इस्लामिक गणराज्य के उदय के लिए जिम्मेदार शाहकालीन जन असन्तोष ही था तत्कालीन शासन के विरूद्ध उपजे असन्तोष का दायरा निरन्तर बढ़ता जा रहा था । जिसको नियत्रिंत करने के लिए सम्पूर्ण देश में मार्शल ला लागू कर दिया गया । दुकाने बन्द हो गयीं, कारखाने बन्द हो गये । हड़तालों को अनवरत सिलसिला प्रारम्भ हो गया । दुनिया का दूसरा बड़ा तेल पैदा करने वाला देश तेल के लिए मोहताज हो गया ।[2] यदि ईरान में चल रहे शाह विरोधी दंगों

1. पी.डी. कौशिक पृ.-574 पार्श्वोद्धृत
2. वहीं पृ. 574 पार्श्वोद्धृत

की पृष्ठिभूमि में गहराई से विचार करे तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन सारे प्रदर्शनों और दंगों के मूल में ईरान में व्याप्त जबरदस्त सामाजिक असन्तोष था जिसका मुख्य कारण आर्थिक था । ईरान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार उसका तेल उद्योग है । 1978 के प्रारम्भ में विश्व के कुल अशोधित तेल उत्पादन का 10% ईरान में होता था । हालांकि विश्व के तेल भण्डारों में ईरान का चौथा स्थान था लेकिन वह विश्व का दूसरा बड़ा निर्यातक देश था । ईरान को अपनी कुल विदेशी मुद्रा का 80% तेल के निर्यात से प्राप्त होता था । जाहिर है कि तेल ने ईरान को काफी समृद्ध बनाया है। निश्चित रूप में पेट्रो डालर के रूप में कमाई गई करोड़ो डालर की रकम ईरानियों के कल्याण और देश के विकास हेतु खर्च की जानी चाहिए थी । आय की असमानता यहाँ विश्व भर में सर्वाधिक थी ।[1] इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण शाह द्वारा हथियारों पर खर्च किया गया अन्धाधुन्ध धन था । ईरान में चल रहे आन्दोलन के नेताओं को कहना था कि शाह तेल की गाढ़ी कमायी को सैन्य उपकरण खरींदने में लुटा रहे थे । जबकि जरूरी था मुद्रास्फीर्ति से तिलमिलाते एक आम आदमी की मदद करना । 1978 के मध्य से ईरान में विरोध की आग अत्यन्त प्रबल हो गयी और यह निश्चय हो गया कि यह आग मोहम्मद रजाशाह पहलवी के शासन तन्त्र को झुलसा कर रख देगी । ईरानी शासन के अपना दमन चक्र चलाया, लेकिन दमन की कार्यवाहियों से विरोध का स्वर नहीं दबाया जा सका । शाह के 37 वर्ष के लम्बे शासनकाल में दमन चक्र शायद हीं कभी थमा हो अमेरिकी शास्त्रास्त्रो से सुसज्जित शाह की सात लाख सेना के आगे, हिम्मतपस्त उनके विरोधियों ने अपने संघर्ष को नया आयाम दिया और धार्मिक दंगों के रूप में वहाँ आतंकवादी कार्यावाहियाँ होने लगीं। ईरान में दंगो और हड़तालों का तांता लगा रहा, खजाना खाली हो चला और कारखाने बन्द हो चले । सेना के जवान भीं खुमैनी के चित्र लहराते हुए देखे गये । पहलवी प्रतिष्ठान को सार्वजनिक सम्पत्ति घोषित करने जैसे अनेक कल्याणकारी कदमों ने भी विरोध को कम नहीं किया ऐसी दशा में शाह को देश छोड़ देना पड़ा । विदेश जाने के पूर्व शाहपुर बख्तियार को प्रधानमंत्री नियुक्त किया । अपनी नामजदगी का मजलिस द्वारा अनुमोदनोपरान्त इन्होंने घोषणा की कि गुप्तचर पुलिस संगठन 'सावाक' जिसने देश भर को आतंकित कर

1. डी.एन. वर्मा पृ.– 471 पाश्र्वोद्धृत

रखा था, भंग कर दिया जाएगा । राजनीतिक बन्दियों को छोड़ा जाएगा प्रेस पर से प्रतिबन्ध हटा दिया लिया जाएगा । तेहरान विश्वविद्यालय को खोलने का आदेश दिया । 16 जनवरी को रजाशाह ने भी देश छोड़ दिया । इसके बाद भी धार्मिक नेता खुमैनी ने इस सरकार को मानने से इन्कार कर दिया । नयी सरकार के गठन की घोषणा की शाह के देश से बाहर चले जाने के बाद भी अनिश्चितता का वातावरण बना रहा ।

26 जनवरी को ईरानी धार्मिक नेता आयतुल्लाह खुमैनी ने ईरान लौटने की घोषणा की । शाह के देश छोड़ते ही खुमैनी की नीति बिल्कुल स्पष्ट हो गयी । राजवंश को उखाड़ फेंकना तथा अपनी शर्तो पर इस्लामिक गणतन्त्र की स्थापना करना । इन्होंने मजलिस के सदस्यों से इस्तीफा देने का अनुरोध किया जिसका बहुत से सदस्यों ने पालन करते हुए इस्तीफा दे दिया । सरकार विरोधी हमलों दंगों तोड़फोड़ का अनबरत क्रम जारी रहा । 1 फरवरी 1979 को खुमैनी पेरिस से तेहरान लौटे । खुमैनी को जनता का विपुल समर्थन प्राप्त था । 5 फरवरी को नये प्रधानमंत्री के रूप में डा0 वजरगन का नाम घोषित किया । जिसे भारत सरकार ने तत्काल मान्यता प्रदान कर दी ।[1] प्रधानमंत्री को संक्रमण कालीन सरकार गठित करने, संविधान सभा के सदस्यों के चुनाव की योजना बनाने, इस्लामिक गणराज्य के लिए संविधान का प्रारूप तैयार करने का अधिकार दिया । खुमैनी ने देशभक्ति के नाम पर सेना से अनुरोध किया कि वे विदेशी प्रभाव से मुक्त होकर ईरानी जनता का भला करें । इस अनुरोध का प्रभाव था कि सेना ने हलके विरोध के बाद अपने को तटस्थ घोषित कर दिया । ऐसी दशा में 11 फरवरी को डा0 बख्तियार ने इस्तीफा दे दिया । शासन तन्त्र पर क्रान्तिकारियों का कब्जा हो गया । यह घोषणा की गयी कि आयतुल्लाह खुमैनी राष्ट्रपति पद सम्हालेगे और उनके अनुयायी डा0 वजरगन के नेतृत्व ने स्थायी सरकार का विस्तार होगा।

खुमैनी शाह विरोध के प्रतीक अवश्य थे । इसमें जिन अन्य वर्गों का हाथ था उनमें छात्र, लेखक, बुद्धिजीवी, अध्यापक, राजनीतिक नेता, भूमिसुधार के नाम पर विस्थापित और शहरों में बसे लोग, मंहगाई के बोझ से दबे मजदूर, मध्यम वर्गी व्यापारी और मुल्ला जो दमन से उत्पन्न भावनाओं से सक्रिय सहयोग

1. India 1980 - प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रकाशन मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली

व सहानुभूति रखते थे ।[1] ईरान के इस्लामिक गणराज्य बन जाने के बाद सबसे बड़ी समस्या शाह समर्थकों से निपटने की थी । इस दृष्टि से खुमैनी द्वारा संचालित इस्लामिक अदालतों ने उन सेनापतियों को गोली से उड़वाना शुरू कर दिया जो राजवंश के पक्षधर थे । 'क्रान्तिकारी दल' के सशस्त्र सैनिकों ने गुप्तचर पुलिस संगठन सावाक तथा सेना के आदमियों, जनरलों को गोलियों से उड़ाना शुरू कर दिया। शाह के प्रति निष्ठावान बारह हजार सैनिकों की अंग रक्षक कमान विसार्जित कर दी गयी । नयी सरकार की तात्कालिक समस्या थी तहस–नहस हो चुकी अर्थव्यवस्था को संभालना, मंहगाई पर अंकुश लगाना, राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाना और समान्तर वितरण की व्यवस्था करना । इन्हीं के साथ देशव्यापी जनमत संग्रह की तैयारी होने लगी । 30 मार्च 1979 को ईरान में जनमत संग्रह हुआ और लोगों ने ईरान को एक इस्लामिक गणराज्य बनाने के पक्ष में अपनी राय दी । लेकिन कुछ ऐसे क्षेत्र भी थे जो शाह के जमाने से ही अपनी स्वायतत्रता की मांग कर रहे थे अपने को स्वायत्त बनाने को मांग की । संयुक्त राज्य अमेरिका ईरानी तेल की वजह से ईरान में 1955 से ही काफी दिलचस्पी ले रहा था । इसके अलावा ईरान में अमेरिकी रूचि का एक कारण सोवियत संघ की सीमा से ईरान का लगना भी था । अमेरिका ईरान को सोवियत संघ के हवाले किसी कीमत पर नहीं छोड़ सकता था । शाह के कारण अमेरिका और ईरान के सम्बन्ध निरन्तर विगड़त चले गये । शाह के प्रत्यर्पण के मसले पर तथा अमेरिकी राजनयिकी को बन्धक बनाये जाने से अमेरिका और ईरान के बीच दीर्घकालिक शत्रुता का धरातल तैयार हुआ । शाहकालिक ईरान का अच्छा दोष अमेरिका ईरान की नजरों में सबसे बड़ा शैतान बन गया ।[2]

अमेरिकी राजनयिको की रिहाई के प्रकरण पर राजनयिक एवं कूटनीतिक प्रयत्नों की विफलता के बाद अमेरिका ने ईरान से राजनयिक सम्बन्ध तोड़ लिया । रिहाई तक सैनिक सहायता एवं कलपुर्जो की अनुमति की बन्द कर दिया गया । अमेरिका ने ईरान के विरूद्ध कड़े आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिया । व्यापारिक सम्बन्ध एकदम तोड़ लिया गया । अमेरिका में गयी ईरानी पूंजी जब्तकर ली गयी । अमेरिका ने ईरानी तेल की खरीद बन्द कर दी । आयतुल्लाह खुमैनी ने 26 अगस्त को अमेरिका के विरूद्ध "पवित्र

1. डी.एन. वर्मा पृ.– 473 पार्श्वोद्धृत
2. प्रीति शंकर शर्मा –माया पत्रिका हिन्दी पाक्षिक 31 मार्च 1995 पृ.पृ. 52–53

युद्ध'' की घोषणा की । ईरान के प्रधानमंत्री ने ईसी समय इस्तींफा दे दिया । प्रधानमंत्री के इस्तीफे के बाद खुमैनी ने ''क्रान्तिकारी परिषद'' को सत्ता सभालने का आदेश दिया । जनमत संग्रह से नये संविधान का प्रारूप स्वीकार कर लिया गया । 25 जनवरी को नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव हुआ । अप्रैल 1980 में संसद का चुनाव हुआ ।[1] इसके साथ हीं ईरान के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जगत में दीर्घकालिक उलट फेरों के परिणाम स्वरूप दुनिया के सबसे वैभवशाली राजतन्त्र का अन्त और एक कट्टर इस्लामिक गणराज्य का उदय हुआ । इस्लाम की आक्रमक छवि प्रस्तुत करने वाले देश ईरान के कट्टरपंथियों के प्रमुख कार्यकर्ताओं में इस्लामिक वसूलों की रक्षा नैतिकता एवं अमेरिका विरोध प्रमुख था।[2]

राष्ट्रव्यापी जनमत संग्रह के द्वारा ईरान के इस्लामिक गणराज्य बनने के बाद वहॉ अनेकों परिवर्तन आये । समस्त प्रकार की कलाओं के विकास की प्रगति अवरूद्ध हो गयीं । शासकीय स्तर के सहयोग एवं प्रोत्साहन को बन्द कर दिया गया । अखबारों की आजादी समाप्त कर दी । अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गयीं । राजनीतिक दलों पर कड़ी पाबन्दी लगा दी गयीं ।[3] सामजिक स्तर पर अनेकों प्रकार के परिवर्तन आ गये । महिलाओं तथा पुरूषों के परिधानों में इस्लामिक रवायतों को कड़ाई से पालन किया जाने लगा । महिलाए काले, नीले तथा भूरे रंग की परिधान धारण करने लगी । पुरूषों एवं महिलाओं के वस्त्र आदि से सम्बन्धित नियमों का कड़ाई से पालन किया जाने लगा । क्रान्ति की सुरक्षा के लिए पॉच प्रकार की सुरक्षा सेनाएं कार्यरत थीं । इस्लामिक नियमों के परिपालनार्थ गुप्तचर सुरक्षा सेना, क्रान्तिरक्षक दलों का गठन किया गया । क्रान्ति रक्षकों का आतंक जनता में प्रायः छाया रहता था । सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में इस्लामिक रवायतों का कड़ाई से पालन किया जाने लगा। संगीत को नापाक मान लिया गया । जीवन के हर क्षेत्र में कट्टरपंथी टॉग अड़ाने को तथा इस्लामिक नियमों के परिपालनार्थ तैयार रहते थे ।[4] क्रान्तिकारी अदालतों द्वारा लोगों को बड़े पैमाने पर गोली से उड़ा देने के कारण ईरान के प्रधानमंत्री डा0 वजरगान को बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ा । ये आन्दोलन लगभग काबू के बाहर हो गया । इन अदालतों की कार्यवाहियों से उत्पन्न अराजकता की स्थिति की खबरें

1. डी.एन. वर्मा पृ.– 477 पाश्र्वोद्धृत
2. जितेन्द्र कुमार सिंह राष्ट्रीय सहारा लखनऊ 25 फरवरी 2000
3. जेम्स वाल्श–माया 15जून 1993 पृ. 45– पाश्र्वोद्धृत U.S. New & World Reporter 1993
4. लुईस लाइफ–माया 31 मई 1991 पृ.पृ. 97–98 U.S. New & World Reporter 1990

बहुत बढ़ाचढ़ा कर बतायी गयीं । जिन लोगों को मृत्युदण्ड दिया जाता है उन्हें अपनी बात (सफाई) देने का मौका नहीं दिया जाता । ईरान ने इस कार्यवाही को इस आधार पर उचित करार दिया कि प्रतिक्रियावादी ताकतों का सफाया होना ही चाहिए । शाह के शासनकाल में कोई आठ हजार हथियार बन्द सैनिक गुप्त रूप से शाह की रक्षा किया करते थे । जिन लोगों को मृत्युदण्ड दिया गया है, वे सभी किसी न किसी रूप में बहुत बड़े पैमाने पर लोगों की हत्या के लिए जिम्मेदार है। ईरान की क्रान्तिकारी अदालतों द्वारा लोगों को अन्धाधुन्ध मृत्युदण्ड दिये जाने की विश्व के देशों पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई । एक समाचार एजेन्सी के अनुसार पश्चिम जर्मनी सरकार ने ईरान की क्रान्तिकारी अदालतों से अपील की कि शाह के समर्थन के कारण लोगों को दण्ड देने में मानवाधिकारों का ख्याल रखा जाना चाहिए । ईरान ने भी मानवाधिकारों की बात अपने क्रान्ति के लक्ष्यों में कहीं थी । ईरान के भीतर भी क्रान्तिकारी अदालतों की इस अन्धेरगर्दी के खिलाफ आवाज उठाई जाने लगी । ईरान के तीन बड़े धार्मिक नेताओं में से एक आयतुल्लाह महमूद तालेगनी अपना कार्यालय बन्द करके तेहरान से चले गये । ईरान के लोगों का अधिकार छीनने के विरूद्ध उन्होंने यह कदम उठाया था । क्रान्तिकारी रक्षकों के कार्यो की अन्य धार्मिक नेताओं ने विरोध किया । ईरान के मार्क्सवादी दल एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं में क्रान्तिकारी अदालतों को चेतावनी दी।[1] ईरान के वासियों ने जिन लोगों के झण्डे के नीचे शाह की तानाशाही के विरूद्ध मुक्ति की लड़ाई लड़ी थी, उन लोगों और उनके समर्थकों की प्राथमिकताए वे नहीं निकली जिनकी उम्मीद की गयी थी । आयतुल्लाह और इनके समर्थकों ने अपने को बहुत ही सीमित दायरे में समेट लिया । इनकी केवल दो ही प्राथमिकताए थी – पहली– उन व्यक्तियों का सफाया जो शाह के समर्थक थे । मुल्लाओं और क्रान्तिकारी परिषदों ने जिस तरह सजा सुनाकर भूतपूर्व अधिकारियों को गोली से उड़ाया उससे एक नयी तरह की असहिष्णुता एवं जोरजबरजस्ती की स्थापना हुई । नये सत्ताधारियों का दूसरा लक्ष्य था इस्लामिक गणराज्य के नाम पर आयतुल्लाह समर्थकों का शासन स्थापित करना । आयतुल्लाह खुमैनी और उनके समर्थकों ने क्रान्तिकारी परिषदों के माध्यम से सारी सत्ता अपने हाथ में रखीं खुमैनी अपने समर्थकों के

---

1. दिनमान पत्रिका – पार्श्वोद्धृत पृ. 38

खिलाफ कोई तर्क नहीं सुनना चाहते थे ईरानी जनता को सत्ता के माध्यम से उभरती तानाशाही से सावधान रहने को कहा गया । अखबारों में नये संविधान की जो रूपरेखा प्रकाशित हुई । उसकी 160 धाराओं में जो मूल सिद्धान्त झलक रहा है, वह है धार्मिक नेताओं की सर्वोपरिता, जो पोषाक से मौलिक अधिकारो तक, राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षों को नियन्त्रित करेगी । संरक्षक परिषद के अनुमोदनोपरान्त समस्त नियम कानून अधिकार आदि इस्लामिक कानूनों के अनुरूप होगे ।[1] इस हद तक धर्म की सर्वोपरिता स्थापित करना बीसवीं सदी को आयतुल्लाह खुमैनी की अनोखी देन है ।

ईरान के इतिहास को देखे तो पता चलता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका की विदेश नींति का क्रीड़ा क्षेत्र बन गया परन्तु इस्लामिक क्रान्ति की वजह से ही ईरानी जनता की निगाह में अमेरिका की छवि इस्लाम विरोधी बनती गयी और शाह राजा की अमेरिकी दुमछल्ले की ।[2] 1979 से ही विश्व महाशक्ति अमेरिका का ईरान से छत्तीस का सम्बन्ध है । धोर अमेरिकी विरोध की लहर पर सवार ईरानी नेताओं ने कट्टरवादियों और रूढ़िवादियों के हवाले देश को छोड़ दिया । देश में नया संविधान लागू हुआ और 1980 में पहलीवार मजलिस का चुनाव हुआ और तब से पाँचवे चुनाव तक रूढ़िवादी जमात का बोल बाला रहा। अयातुल्लाह खुमैनी की क्रान्ति ने सम्पूर्ण विश्व को हिला दिया था, और आक्रमक इस्लाम का वह रूप पेश किया था । जिससे इस्लामी देशों के परम्परागत शासक भी हथप्रभ रह गये थे । ईरान के छात्रों ने अमेरिकी दूतावास को लगभग 444 दिन अपने कब्जे में रखा और अमेरिकी राजनयिकों बन्धक बनाये रखा। ईरानी हाजियों ने मक्का की मस्जिद को अपने कब्जे में ले लिया, जो एक भंयकर रक्तपात का कारण बना ।[3] इसी कट्टरता के कारण संसार के मुख्य देशों से कटता एवं उपेक्षित ईरान अपनी पुरानी पहचान खोता जा रहा था । धर्म और राजनीति के धालमेल से जिस व्यवस्था का निर्माण हुआ उसने ईरानी विदेशनीति को इस्लामिक जगत से भी अलग–थलग कर दिया । ज्यादातर इस्लामिक देशों में शाह और अमीरो का शासन है, जो ईरान को इस्लामिक क्रान्ति के बाद अपना दुश्मन समझने लगे । एशिया अफ्रीका के मुस्लिम जनसंख्या के तमाम देशों से भी इस क्रान्ति के बाद ईरान की दूरी बढ़ी । अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का दायरा

1. दिनमान हिन्दी संस्करण 27 मई. 2 जून 1979 पृ.पृ. 31–32 पार्श्वोद्धृत
2. जितेन्द्र कुमार सिंह, पार्श्वोद्धृत
3. वही – पार्श्वोद्धृत

सीमित होता गया । इससे विभिन्न क्षेत्रों की आपसी आदान-प्रदान से सम्भावित विकास की गति अवरूद्ध सी हो गयी । लगभग 21 वर्षों तक मजहबी उन्माद की छाया में रहने के कारण ईरान की अर्थव्यवस्था पर कभी भी वहाँ के शासकों ने पूरी तरह ध्यान नहीं दिया । जिससे वहाँ की अर्थव्यवस्था लगातार डावांडोल होती गयी । ईरानी मुद्रा रियाल का 15 वर्षों में जबरजस्त अवमूल्यन हुआ ।[1] कट्टर इस्लामी रवायतों को मानने का दावा करने वाले ईरानी शासकों ने उन्हीं राष्ट्रों से सम्बन्ध विकसित करना उचित समझा जो उनकी नजरों में इस्लामी रवायतों के उनके समान ही पक्षधर थे । इसके परिणाम स्वरूप पिछले दो दसकों के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय मन्चों पर ईरान की उपस्थिति लगातार कम होती गयी । मरहूम अयातुल्ला खुमैनी के अमेरिका को 'सबसे बड़ा दुश्मन' घोषित करने से दोनों के सम्बन्धों का विगड़ता स्तर संयुक्त राष्ट्रसंघ में भी जा पहुँचा जहाँ अमेरिका ईरान के विरूद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लागू कराना चाहता था पर सोवियत संघ के वीटो करने से अमेरिका का प्रस्ताव पास न हो सका ।[2] राष्ट्रपति लियोनद व्रिजनेव ने ईरान की घटनाओं को साम्राज्यवादी दखलवाजी का परिणाम बताया उनका मानना था कि ईरान की जनता अपने अधिकारो के लिए लड़ रही है और विदेशियों को उसमे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । अमेरिका ने बहुत सा ईरानी धन जो अमेरिका में था जब्त करने की घोषणा की थी लेकिन अपने बन्धक राजनयिको की रिहाई हेतु उसे यह प्रतिबन्ध भी उठाना पड़ा । इस समूचे घटनाक्रम पर भारत की नीति तत्कालीन द्विध्रुवी विश्व राजनीति के अनुरूप सोवियत संघ के अनुरूप रही । भारत भी इसे ईरान का घरेलू मामला मानता था तथा उसमें किसी नीतिगत हस्तक्षेप का हामी नहीं था । इसके पीछे दो प्रमुख कारण थे । एक तरफ भारत के सामने ईरान पर सोवियत संघ के दृष्टिकोण का सम्मान करना था तो दूसरी ओर भारत की मुस्लिम जनसंख्या का मान रखना था ।

इसी बीच ईरान और इराक की सीमा गर्म हो उठी 21 सितम्बर 1979 को उसने धमासान रूप धारण कर लिया । तीन द्वीपों की वापसी को लेकर इराक द्वारा छेडी गयी इस जंग ने सोवियत संघ समेत सम्पूर्ण विश्व को नीतिगत बयानवाजी करने पर विवश कर दिया । भारत ने उस लड़ाई को विश्व सद्भाव

1. विनय पाठक – अमर उजाला हिन्दी दैनिक 29.02.2000 लखनऊ
2. डी0एन0 वर्मा पेज सं0– 476 पाश्वोंद्धृत

का माहौल बिगड़ने वाली एवं अर्थ हीन लड़ाई बताया । गुट निरपेक्ष देशों के विदेश मंत्रियों ने इस दिशा में कदम उठाया । ब्रेजनेव ने दिसम्बर 1980 में भारतीय संसद के सामने ईराक–इरान युद्ध को एक अर्थहीन युद्ध बतांया । परन्तु सोवियत संघ और अमेरिका दोनों के लिए यह युद्ध इस सारे इलाके में अपनी शक्ति का नवीन सिरे से बंटवारा करने का साधन था । ईरान की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था ईरान पर लगाये गये तमाम प्रतिबन्धों और उनसे उपजी समस्याओं से दो चार हो रहीं थीं लेकिन ज्यादातर जन सामान्य का ध्यान उस तरफ धार्मिक उन्माद की वजह से नहीं गया । इस तरफ ध्यान न जाने का कारण एक यह भी था कि क्रान्ति के पूर्व संघर्ष का सामाना करते सम्पूर्ण ईरान संकटापन्न जीवन का आदी सा हो गया था ।

उग्रवादी छात्र संगठनों, इस्लामी कर्मचारी संगठनों, कट्टर पंथी अखबारों और सरकार में धुसे क्रान्तिकारी प्रतिनिधियों के अपने–अपने शक्तिशाली गुट थे । इसका उदाहरण है हुसेनशेखउल इस्लाम, इन्होंने हीं 1979 में तेहरान स्थित अमेरिकी दूतावास पर धावे का नेतृत्व किया था, वाद में अरब और अफ्रीकी मामलों के विदेश उपमंत्री बने है । इसके अलावा क्रान्ति की बहाली पर नजर रखने वाला 'इस्लामिक मार्गदर्शक मंत्रालय' किताबों फिल्मों और अन्य प्रकाशनों को सेन्सर करने के साथ साथ गैर इस्लामी समझी जाने वाली सभी परियोजनाओं, उत्पादनों डिजाइनो और ट्रेडमार्को तक पर आज भी प्रतिबन्ध लगा रहा है ।[1] यहीं वजह है कि रफसंजानी को जिन्होंने तमाम प्रतिबन्धों को ढ़ीला करना एवं विकास योजनाओं को अपनाना शुरू किया, को क्रान्तिकारियों से निपटने के लिए तमाम दॉवपेचों को अपनाना पड़ा । इस्लामिक क्रान्ति तथा उसकी स्वायतों और उनके अनुपालन के तरीकों एवं संगठन का ईरान की जनता पर ऐसा जुनून चढ़ा जो जल्दी उतरने का नाम ही नहीं लिया । सच तो यह है कि आज के पूर्णतयः परिवर्तित एवं परिमार्जित ईरान में भी थोड़े बहुत बदले स्वरूप में यह जुनून चढ़ा ही है । ईरानी राजनीति में कुछ चीजे तो स्याह और सफेद की तरह एकदम साफ नजर आती है । इस्लामिक कट्टरवाद भी उनमें से एक है । यही वजह है कि एक समय जिन लोगों ने रफ़संजानी के आर्थिक सुधारोने का दिल

1. लुइस लाइफ, ईरान से पार्श्वोद्धृत संस्करण 31 मई 1991

खोलकर समर्थन किया था, वे भी महज कुछ ही दिनों बाद इस बात पर नाक–भौ चढ़ाते नजर अपने लगे कि ईरानी महिलाओं के दुपट्टे से सिर के बालों की एकाध लट क्यों बाहर झाकती नजर आती है ? 1992 की गर्मियों तक हालात कुछ इस हद तक काबू से बाहर हो गये कि सड़कों पर फिर से ऐसे कट्टरपंथियों के दस्ते आम हो गये जिनका काम वेपर्दा महिलाओं को सरेआम लबे–सड़क सजा देना रह गया था ।[1] इसी कट्टरता का परिणाम था कि ईरान में आज न तो कला को कोई प्रोत्साहन दिया जाता है और न अखबारों–रिसालों को उस आजादी का एक जर्रा हासिल है, जिसके लिए दुनिया भर के लोग हर तरह की कुर्बानी देने के लिए कमर कसे नजर आते है । राजनीतिक दलों पर एक अर्सा हुआ कड़ी पाबन्दियाँ लगा दी गयी है । ईराक के साथ जंग के जमाने में मरहूम इमाम खुमैनी ने कट्टरपंथियों को न केवल संरक्षण दिया बल्कि उनकी अर्धसमाजवादी सरकार को काफी ताकत वख्शी । उन्होंने इस जंग के दौरान सत्ता के तीनों अंगों मजलिस (संसद) सरकार (कार्यपालिका) और अदालत (न्यायपालिका) पर अपनी पकड़ काफी मजबूत कर ली थीं । रफसंजानी तब संसद के अध्यक्ष हुआ करते थे । लेकिन वाद में हालत तेजी से बदले और जंग खत्म हो गयी । इमाम खुमैनी का इन्तकाल हो गया और जंग व इंकलाब के दोहरे थपेडे झेलती ईरान की अर्थ अर्थव्यवस्था अस्त–व्यस्त हो गयी ।[2]

क्रान्ति के वाद 'इस्लामिक क्रान्ति दल' रिवोल्यूशनरी गार्डस का गस्ती दल कारों में बैठकर सड़कों पर निकलता, उसका काम हुआ करता था, ऐसी मुस्लिम औरतों को पकड़ना जो अपनी पोषाकों के बारे में पर्दे के इस्लामी तौर तरीको की अनदेखी किया करतीं थी । ये महिला गार्डस यानी आपाये ऐसी औरतों के चेहरे पर तेजाब फेंक दिया करतीं थीं या कहतीं थीं कि ''लाओ मैं तुम्हारी लिपस्टिक साफ कर दूँ।'' इसी क्रम में अपने कपड़ों में बड़ी सावधानी से छिपाकर रखे गये अस्तुरे निकाल कर वे एक ही झटके में उनके रंगे होठों को काट लिया करतीं थीं ।[3] क्रान्ति का ही असर है कि पुरूष गहरे रंगों की ढ़ीली–ढ़ाली शलवारों और पूरी आस्तीनों वाली बन्द गले की कमीजों में ही लम्बी दाढ़िया रखे दिखायी देते है और महिलाये भी कई तहो वाले हिजाब पहन कर पूरा बदन ढ़के रहती है । इस्लामिक क्रान्ति का आलम यहाँ

---

1. जेम्स वाल्स–माया पत्रिका हिन्दी संस्करण 15 जून 1993
2. वही – पृ. सं0–45
3. माया डेस्क माया पत्रिाक पृ. 43 पार्श्वोद्धृत

तक पहुँच गया कि क्रान्तिकारी इस्लामिक रक्षकों के भय से सामान्य जनमानस आतंकित हो जाया करता था । क्रान्तिकारी अदालते काबू के बाहर हो गयी । अदालतों के नियमित फैसलों से, नित नयी कहानियाँ बनने लगी । इन अदालतों में उन्हीं मुकदमों का विचारण होता था जिनमें इस्लामिक नियमों एवं रवायतों को तोड़ने या पालन न करने व उल्लंघन का आरोप होता था । क्रान्तिकारी अदालतों द्वारा लोगों को बड़े पैमाने पर गोलियों से उड़ाने का अनवरत सिलसिला प्रारम्भ हो गया ।[1] 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के वाद वहा जो संविधान लागू किया गया, उसमें सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न धर्मगुरू या आध्यात्मिक नेता का पद था । जिसे ''विलायत-ए-फकीह'' कहा गया । फरवरी 1979 में इस पद पर आयतुल्लाह खुमैनी आये और जीवन पर्यन्त इस पद पर रहे । उन्होंने मुल्लाओं की ऐसीं सरकार स्थापित की जो इस्लामिक नियमों का कठोरता से पालन कराने के लिए प्रतिबद्ध थीं । आध्यामिक नेता ही सर्वशक्तिमान था । उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता था । राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री आध्यात्मिक नेता आयतुल्लाह खुमैनी की आज्ञा से ही काम करते थे ।[2] इस्लामिक क्रान्ति से जन्मे 'इस्लामिक गणराज्य ईरान' में कड़े इस्लामिक नियमों कानूनों रवायतों का जो स्वरूप सामने आया । कट्टर इस्लामिक विचारधारा के समर्थक भारतियों के लिए एक आदर्श बन गया । जिससे भारतीय इस्लामिक विचारधारा का प्रभावित होना, उसके अनुयायियों का मुतासिर होना असम्भव नहीं था बल्कि कहा जाय तो स्वाभाविक था । वास्तव में ऐसा हुआ भी, भारतीय समाज मे कड़ी रवायतों के अनुपालन का स्तर अपेक्षाकृत सुदृढ़ हुआ । वैसे भी सामाजिक रूप से एक दूसरे से प्रभावित होने की भारत और ईरान की एक दीर्घकालिक परम्परा भी रही है । ईरान में कट्टरता का इतना विशुद्धतम स्वरूप अस्तित्व में आते समय अनेक देशों द्वारा आलोचना का विषय भी बना, जिसका मुख्य आधार मानवाधिकार रहा, परन्तु भारत द्वारा ईरान का आन्तरिक मामला होने के कारण मौनता ही प्रकट की गयी । वैसे भी भारतीय विदेश नीति का यह एक व्यवहारिक सत्य रहा है कि जिन विषयों से भारत का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता उस पर भारत की टिप्पणी प्रायः नहीं ही आती। जहाँ तक भारत और ईरान के आपसी सम्बन्धों की रहीं बात, विशेष कर क्रान्तियोत्तर ईरान में, तो यह

---

1. दिनमान 22-27 अप्रैल 1979 पृ. 38 पार्श्वोद्धृत
2. जगमोहन माथुर -हिन्दुस्तान टाइम लखनऊ दि0 29 फरवरी 2000

अवश्य ही सीमित दायरे की तरफ मुखातिब हुआ था । अयातुल्ला खुमैनी के काल में सम्बन्धों का कोई प्रभावी स्वरूप नहीं था । इसका प्रमुख कारण ईरान का स्वयं का सीमित दायरे का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध होना ही था । इस्लामिक क्रान्ति ने विशेष रूप से भारत को तीन क्षेत्रों में प्रभावित किया । प्रथम–सामाजिक क्षेत्र द्वितीय–धार्मिक क्षेत्र तृतीय–राजनीतिक क्षेत्र । प्रथम में अगर सामाजिक संरचना का स्वरूप प्रभावित हुआ तो द्वितीय में धार्मिकता की विशुद्धता का स्तर ठीक हुआ, तृतीय में राजनयिक पहल का दायरा सीमित हुआ ।

ईरान में मार्च के प्रथम सप्ताह में इस्लामिक गणतन्त्र की स्थापना के उपलक्ष्य में आयोजन हुआ करते है। इस्लामिक गणतन्त्र की स्थापना 1979 में एक क्रान्तिकारी जनमत संग्रह के जरिये हुई थी । हर साल गणतंत्र की बरसी पर तेहरान के इमाम हुसैन चौराहे पर हजारों औरत मर्द हाथों में फूलों के अलकंरण लिए इकट्ठे होते है । इस मुकारक मौके पर भाषणवाजी के बाद अमेरिका मुर्दाबाद, इजाइल मुर्दाबाद का आकाश भेदी नारा बुलन्द किया जाता है ।[1] तेहरान विश्वविद्यालय एवं अन्य बड़ी मस्जिदों में आज भी जुमे की नमाज के बाद अमेरिका मुर्दाबाद के नारे उसी जोर शोर से लगाये जाते है जैसे कि मरहूम अयातुल्ला खुमैनी के जमाने में लगाये जाते थे।[2]

असल में इस्लामिक सरकार के 12 वर्षीय शासनकाल और आठ साला जंग के बाद ईरान में क्रान्ति की उमंगे ठंड़ी पड़ने लगीं । 1989 में हठीले अयातुल्ला खुमैनी के निधन के बाद उनके उदार शिष्य हाशमी रफसंजानी ने सत्ता की बागडोर संभाली, तो भड़कीले भाषणों का दौर थमने लगा । प्रतिबन्धों, बन्दियों का शिकन्जा ढ़ीला पड़ने लगा । ईरान अब वह ईरान नहीं रह गया, जो वह इमाम खुमैनी के जमाने में था । ईरान में जिन क्रान्तिकारी संस्थाओं की हुकूमत फिलहाल चल रही थी, उनका कोई वस्तुवादी विकल्प भी तुरन्त दिखाई नहीं दे रहा था । फिलहाल ईरान भी पश्चिम के सांस्कृतिक एवं लोकतांत्रिक खिंचाव को महसूस कर रहा था । ईरानी जनता भी उसी सुख समृद्धि के लिए लालायित थी जो पश्चिमी देशों में दिखायी देती है ।

1. लुईस लाइफ– माया 31 मई 1991 पार्श्वोद्धृत
2. प्रीतिशकर शर्मा माया पृ.पृ. 95–96 पार्श्वोद्धृत

ईरान एक प्राचीन देश है, जो अपनी वीरता और सभ्यता के लिए विख्यात है । पहलवी वंश के अन्तिम शासक मोहम्मद रजा को देश व्यापी विद्रोह के कारण ईरान छोड़कार भागना पड़ा। इस्लाम के धर्मगुरू अयातुल्लाह खुमैनी देश के भाग्य विधाता बने । 1979 में ईरान को इस्लामिक गणराज्य घोषित कर दिया गया । यहीं से शुरू हो होतीं है ईरान के विकास व इस्लामिक कट्टरता की कहानी ।[1] ईरान में राष्ट्रपति सर्वोच्च नहीं है । वहाँ के संविधान में, जो 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के बाद लागू किया गया था, सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न धर्मगुरू अथवा आध्यामिक नेता का पद है, जिसे 'विलायत–ए–फकीह' कहा गया है । फरवरी 1979 में इस पद पर अयातुल्लाह खुमैनी थे । उन्होंने मुल्लाओं की ऐसी सरकार स्थापित की थी, जो इस्लामी नियमों का कठोरता से पालन कराने के लिए प्रतिबद्ध थी । आयतुल्लाह खुमैनी जून 1989 में अपनी मृत्यु तक सर्वशक्तिमान बने रहे । उनकी अनुमति के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता था । अब तक पूरे विश्व में ईरान की छवि एक कट्टर मुस्लिम देश की रही है । वर्ष 1979 में शाह को अपदस्थ किये जाने एवं इस्लामिक क्रान्ति के बाद जो शासन स्थापित हुआ, उसका विशेष बल इस्लाम के नियमों का कठोरता से पालन कराये जाने पर था । इस कट्टरपंथ का नेतृत्व ईरान के तत्कालीन धार्मिक नेता आयतुल्लाह खुमौनी के हाथों में था ।[2] 1979 में हुई इस्लामिक क्रान्ति के बाद मजहबी नेता अयातुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में पिछले दो दशकों में ईरान में मजहबी उन्माद को बढ़ावा दिया गया था, उसके कारण देश अन्य मोर्चो पर काफी पिछड़ गया था । इराक के साथ लम्बे समय तक युद्ध करने के कारण ईरान का यह मजहबी उन्माद उसके नेताओं के लिए काफी बेहतर रहा था । जून 1989 में खुमैनी के निधन के बाद कट्टरपंथ का दबाव लगातार कम होता गया । इसे ईरान के भविष्य के लिए एक बेहतर बात समझा जाना चाहिए कि अयातुल्लाह अली अकबर हाशमी रफसंजामी के बाद होजातोलेस्सलाम सैय्यद मोहम्मद खातमी के रूप में एक ऐसा राष्ट्रपति मिला जो उदारवादी मानसिकता को प्रश्रय देता था और हर तरह के सुधारों का पक्ष धर था लेकिन सिर्फ राष्ट्रपति के ही सुधारवादी होने की मंशा से ही ईरान का कोई भला होने वाला नहीं था क्योंकि ईरान की 290 सदस्यीय मजलिस (संसद) में कट्टरपंथियों का बहुमत

1. संजय कुमार श्रीवास्तव– आलेख – चर्चा में, हिन्दुस्तान, लखनऊ
2. सिविल सर्विसेज क्रानिकल, लघु आलेख – अगस्त 1997

और उनकी इच्छा के बिना पूर्व संस्कृति मंत्री और तत्कालीन राष्ट्रपति खातमी के लिए कुछ भी कर पाना सम्भव नहीं था ।[1] लगभग 21 वर्षो तक मजहबी उन्माद की छाया में रहने के कारण ईरान की अर्थव्यवस्था पर कभी भी वहा के शासकों ने पूरी तरह से ध्यान नहीं दिया, जिससे वहाँ की अर्थव्यवस्था लगातार डावाडोल होती गई ।

उल्लेखनीय है कि 1989 तक ईरान के राष्ट्रपति का पद औपचारिक कार्यो के निर्वहन के ही लिए ही होता था । इसके पहले आध्यात्मिक गुरू यानी 'बली फकीह' ही सर्वोच्च शक्ति होता था, जैसे कि अयातुल्ला खुमैनी । लेकिन 1989 में कराये गये मत संग्रह के बाद संविधान में किये गये संशोधन से राष्ट्रपति को कार्यकारी प्रमुख बना दिया गया । जुलाई 1989 में इस पद पर हाशमी रफसंजानी (ईरानी संसद के पूर्व अध्यक्ष) चुने गये । वैसे तो रफसंजानी अयातुल्ला खुमैनी के ही समर्थक थे, लेकिन उनका दृष्टिकोण उदारवादी था । इसलिए रफसंजानी के राष्ट्रपति बनने के साथ ही ईरान में उदारवाद के एक नये युग का शुभारम्भ हो गया ।[2] लोगों का विकास था कि रफ़संजानी देश की राजनीति एवं अर्थनीति को नई दिशा देंगे । स्वयं रफ़संजानी ने राष्ट्रपति की शपथ लेने के बाद अपने प्रथम वक्तव्य में कहा था कि ''मेरा विश्वास है कि हर आदमी स्वतन्त्रता के वातावरण में अच्छा काम कर सकता है । स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाने से ऐसा करने वालों का ही अन्ततः अधिक नुकसान होता है ।[3] जून 1993 में श्री रफसंजानी दूसरे कार्यकाल के लिए चुन लिए गये । सुधारवादी और उदारवादी ईरानी आन्दोलन के प्रणेता ईरानी गोर्वाचेव कहे जाने वाले हाशमी रफसंजानी के ईरान के राष्ट्रपति चुने जाने पर भारत का बधाई सन्देश तेहरान सम्प्रेषित किया गया उसमें उनके उदारवादी व्यक्तित्व को ध्यान में रखे कर सुधारवादी अन्दोलन को गति देने और सफलता की सीमायें पारकर जाने की कामनाओं का सन्देश प्रेषित किया गया था । 1989 के शुरूवाती दौर के कार्यकाल से शुरू हुआ सुधारवादी आन्दोलन जिसकी पृष्ठभूमि खुमैनी के काल से ही रफसंजानी जैसे नेताओं के संरक्षण में दवी जुबान से ही सही तैयार की जा रही थी, रफसंजानी के राष्ट्रपति बनते ही सरकारी नतियों में दिखाई देने लगी । जिसका भारत सहित विश्व के तमाम हलको मे

1. विनय पाठक–उमर उजाला लखनऊ 29 फरवरी 2000
2. सिविल सर्विसेज क्रानिकल, पृ. 33 पार्श्वोद्धृत
3. जगमोहन माथुर– ईरान में उदारवादियों की जीत नवभारत टाइम्स लखनऊ–29.02.2002

स्वागत किया गया। रफ़संजानी खुलेपन की भावना लाने में कोई खास काम नहीं कर सके । उनका योगदान यहीं था कि वह अर्थव्यवस्था में नई जान फूंकने में अवश्य सफल रहे । आम जनता में घुटन का वातावरण बना रहा । लोग सरकार और इस्लामी नेताओं की आलोचना करने से डरते थे । इस्लामी नियमों का कठोरता से पालन कराने के लिए एक विशेष निगरानी दल सक्रिय रहता था। वह निगरानी रखता था कि औरते पूरा शरीर ढककर ही बाहर निकले । उनके हाथ-पांव के पंजे तक ढके रहने चाहिए अगर कोई महिला इस नियम का उल्लंघन करती पायी जाती तो उसकी पिटाई की जाती थी । बुर्के और पर्दे का नियम ईरानी महिलाओं पर ही नहीं, ईरान आने वाली अन्य धर्मावलम्बी महिलाओं पर भी लागू किया जाता था। 1993 में भारत के राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्म उक्रेन की राजकीय यात्रा पर जाते हुए कुछ देर के लिए तेहरान रूके थे तो राष्ट्रपति रफ़संजानी ने हवाई उड्डे पर उनकी विशेष अगवानी की और अदार सत्कार भी किया और आपसी दोस्ती बढ़ाने पर बातचीत भी की । राष्ट्रपति शंकर दयाल की पत्नी विमला शर्मा विमान से नीचे नहीं उतरी, क्योंकि हवाई अड्डे पर उतरते ही इस्लामी नियमानुसार बुर्का पहनना जरूरी हो जाता। 1986 से 1990 के दौरान मै (जगमोहन माथुर) खाड़ी सवांददाता था और जब भी दुबाई से तेहरान जाता तो हवाई जहाज के उड़ान भरते ही यह एलान हो जाता था कि यात्रीगण तेहरान उतरते समय इस्लामी नियमों का पालन करें, यानी महिलाए बुर्का पहनें ।[1] उदारवाद का यह सिलसिला रफसंजानी के दूसरे कार्यकाल में भी चलता रहा । उदारवादी आन्दोलन इस हद तक पहुँच गया कि रफसंजानी के दुबारा 1993 में राष्ट्रपति चुने जाने पर आलम यह हो गया कि मरहूम इमाम खुमैनी के बनाये नियम कानूनों को कौन कहाँ और किस हद तक तोड़ रहा है इसके बारे में हर किसी के पास एक न एक कहानी सुनाने के लिए मौजूद है ।[2] ऐसे में इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि ईरान में इस्लाम के प्रति आस्था कम हुई है सत्य नहीं होगा। ईरानियों की इस्लाम में आस्था तो बरकरार है, लेकिन इस्लामी क्रान्ति से उन्होंने खुद को अलग कर लिया है । इस्लामी जीवन पद्धति से भी वे कुछ-कुछ हटने लगे है । हो सकता है कि उनके इस मोहभंग के पीछे क्रान्तिकारियों के लिए तय की गयी कठोर जीवन पद्धति, उनके वर्तमान

---

1. जगमोहन माथुर-ईरान में उदारवादियों की जाति नवभारत टाइम्स 29.02.2000
2. माया डेस्क – माया पत्रिका, 15 अगस्त 1995, पृ. 44

नेतृत्व में गहराई तक पैठा हुआ भ्रष्टाचार, और सबसे अधिक क्रान्ति के चलते गड़वड़ाई देश की अर्थव्यवस्था जैसे कुछ कारण भी हो सकते है लेकिन इससे बेपरवाह सुधारवादी आन्दोलन भारत सहित विश्व की शुभकामनाओं के अनुरूप रफसंजानी के नेतृत्व में अनवरत चलता रहा जो मोहम्मद खातमी के नेतृत्व में कायाकल्प की हद तक पहुँच चुका है। सुधारो और उदारवाद का सकारात्मक प्रतिफल ही ईरान को नहीं मिला है बल्कि इसका नकारात्मक रूप भी देखने को ईरान विवस हुआ है । पोशाको, रहन–सहन, खान–पान में भी पश्चिमी सभ्यता ने अपनी जगह बनायी है । भ्रष्टाचार, सामाजिक दुर्व्यवस्था, भीषण दंगों आदि अनेक उदारवादी सभ्यता जनित समस्याओं से ईरान को रूबरू होना पड़ रहा है । ईरान में यदि लोग इस्लामिक क्रान्ति के मूल्यों की तरफ से लापरवाह होने लगे है तो देश का अधिकांश अधिकारी वर्ग भी भ्रष्टाचार के दलदल में गले तक डूबा हुआ है । और समाज में तेजी से इसका फैलाव जारी है तेहरान में चाहे आप को हवाई जहाज में स्थान आरक्षित कराना हो, चाहे विदेशों में कस्टम से माल छुड़ाने के लिए मात्र फैक्स सन्देश ही भेजना हो, बिना सम्बन्धित कर्मचारी की मुट्ठी गर्म किए आप कुछ भी नहीं करा सकते, और तो और नैतिक नियम लागू कराने के लिए नियुक्त रिवोल्युशनरी गार्ड को भी सुविधा शुल्क देकर आप कोई भी सुविधा वैध या अवैध प्राप्त कर सकते है । यद्यपि तेज संगीत बजाने और शराब परोसने के लिए अब भी पार्टियों में रिवोल्यूशनरी गार्ड के छापे पड़ते है । अब भी महिलाएं बेपर्दगी के जुर्म में पकड़ी जाती है और अविवाहित जोड़ों को सार्वजनिक स्थानों पर तथाकथित अश्लील व्यवहार करते पकड़ा जाता है, लेकिन इसमें से कुछ ही मामले क्रान्ति अदालतों में पहुँच पाते है ।[1] अधिकांश मामलों में गार्ड को ही कुछ ले दे कर रफा–दफा करा लिए जाते है, जो कायदे कानून कभी समाज में नैतिकताा लागू कराने के लिए बनाये गये थे वे आज के ईरान में सिर्फ कुछ लोगों के लिए खासी कमाई का जरिया बनकर रह गये थे । तेहरान के अखबारों में हर रोज़ भ्रष्टाचारी बैंककर्मियों, तेल कम्पनी के अधिकारियों, अथवा नागरिक प्रशासन के अधिकारियों की गिरफ्तारी की दर्जनों खबरे छपती है । लेकिन इनमें से कितने लोगों को सजा मिल पाती है यह एक अलग शोध का विषय हो सकता है । कारण ''घूस लेते पकड़े गये रिश्वत

1. माया डेस्क – माया पत्रिका, 15 अगस्त 1995, पृ. 44

देकर छूट गये'' यहाँ का अलिखित विधान बन चुका है । रिश्वतखोरी का तो यह आलम है कि लोगों को दंगे फसाद में मारे गये अपने निकट सम्बन्धियों की लाशे प्राप्त करने के लिए लाखो रियाल की रिश्वत देनी पड़ती है । यही वजह है कि ईरान में आज भ्रष्टाचारी धनी से और धनी तथा सीधे सच्चे रास्ते पर चलने वाले गरीब से और गरीब होते चले जा रहे हैं । ईरान के शक्ति पुरूष [1] मरहूम इमाम खुमैनी की छठी वरसी पर जब एक सामान्य घरेलू महिला हफीजा उनके मकबरे पर पहुँची तो उसने ईरान की मुस्लिम महिलाओं के लिए जरूरी रस्मी चादर के नीचे पश्चिमी ढ़ग की नीली जींसं और चमकीले फिरोजी रंग का ब्लाउज ही पहन रखा था । उदारवाद का नकारात्मक प्रतिफल ही है कि आज ईरान सांस्कृतिक विभाजन के स्तर तक पहुँच चुका है । एक तरफ क्रान्ति के कट्टर समर्थक पुरूष जहां आज भी गहरे रंगों की ढीली-ढाली शलवारों और पूरी आस्तीनों वाली बंद गले की कमीजो में ही लम्बी दाढ़िया रखे दिखाई देते है और महिलायें भी कई तहो वाले हिजाब पहन कर पूरा बदन ढ़क रहती है । वहीं दूसरी तरफ पश्चिमी हवा में बह रहे युवक जिन्हें स्थानीय लोग हिकारत से गर्बजादे कहते है, तंग जीन्स और आधी बाहो की शटर्स पहन कर घूमते है । नयी पीढ़ी की लड़किया भी इनसे कुछ खास पीछे नहीं है क्योंकि वे भी अब बरसाती की तरह एक ढीला-ढाला पहनावा पहनती है जिसको वे मंतो कहती है और सिर पर भी खाना पूरी के लिए एक स्कार्फ बांध लेती है । तेहरान में तो चादरधारी महिलाओं से कई गुना संख्या इन्हीं 'मंतोधारी' महिलाओं की दिखाई देती है ।[2] फैशन में ही नहीं शैक में भी यहाँ की युवा पीढ़ी तमाम पश्चिमी देशों में प्रचालित तथाकथित गैर इस्लामी चीजों को अंगीकार और आत्मसात करती जा रही है । अमिताभ बच्चन, शाहरूख खान, अक्षय कुमार, श्रीदेवी, करिश्मा कपूर और ए.आर.रहमान जो यहाँ के युवा दिलों के धड़कन बने हुए है । यहाँ के नौजवान भारतीय फिल्में देखने का कोई मौका नहीं चूकते । भारतीय फिल्मों के गाने लड़के-लड़कियां आप को टूटी-फूटी हिन्दी में सुना सकते है । ईरानी युवा एक बहुत बड़ी ताकत है, हर क्षेत्र में राजनीति में भी । ईरानी छात्रों ने ईरानी शाह खानदान की सत्ता पलटने और इस्लामिक क्रान्ति को सफल बनाने में जो भूमिका निभाई थी, वह ईरानी युवाओं के अदम्य उत्साह, और पौरूष की अमर गाथा

---

1. सिविल सर्विसेज क्रानिकल पत्रिका अगस्त 1997-पार्श्वोद्धृत
2. माया डेस्क – माया पत्रिका – हिंन्दी संस्करण, 15 अगस्त 1995

है । हाल के सालों में युवा वर्ग को कुछ ज्यादा नौकरियां मिलने लगी है और यही उन बजहों में शामिल है जिनसे वे सुधारों की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहते है वे दिन अब लद गये जब ईरानी महिलाओं को सार्वजनिक रूप से मेकप लगाकर चलने की इजाजत नहीं थी, अब तो मेकप भी है और सड़कों पर हाथों में हाथ डालकर चलने वाले युवा युवातियाँ आसानी से देखे जा सकते हैं । हाँ यह जरूर है कि महिलाओं के लिए यह लाजमी है कि सिर से पॉव तक अपने को ढककर चले । इसीलिए जीन्स और नाइके का जूता पहनाने वाली लड़कियों को ऊपर से बुर्का पहनना पड़ता है इस वन्दिस के अलावा महिलाओ को पूरी आजादी है । वे हर तरह की नौकरी कर सकती है । कही भी धूम फिर सकती है और अपना कैरियर बनाने के लिए पूरी पढ़ाई लिखाई कर सकती है । एक स्कूल टीचर कहती है कि यहाँ महिलाए सब काम करती है । कई तो अब ड्राइवर का भी काम करतीं है ।

ईरान में रफसंजानी को सुधारों का प्रणेता कहा जाता है पर यह भी सत्य है कि राष्ट्रपति खातमी की तुलना में रफसंजानी की गणना रूढ़िवादी नेताओं में होती है रफसंजानी ने ईरान में सुधारों की गति तेज करने का वादा अपने द्वितीय कार्यकाल में किया था । इराक के साथ 8 वर्षों के युद्ध से जर्जर हो चुकी अर्थव्यवस्था को भी सुधारने का वचन भी दिया था, लेकिन वे अपना वाद पूरा न कर सके, उनके कार्य काल के दौरान ईरानी समाज में खुलापन भी, न आ सका ।[1]

1997 के चुनाव में ईरान में रूढ़िवादियों को गहरी शिकस्त मिली, जिस तरह वहाँ सुधारवाद का परचम फहरया उससे पूरी दुनिया को सुखद आश्चर्य हुआ । उल्लेखनीय है कि अयातुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में सम्पन्न क्रान्ति के वाद से ही मजलिस (निम्न सदन) में रूढ़िवादियों का बोलवाला था । लेकिन इस बार संसद का समीकरण बदल गया । रूढ़िवादी नेता अली अकबर हासमी रफसंजानी ने समय की नजाकत को पहचाना, मतदाताओं को धन्यवाद दिया और भद्रता के साथ हार स्वीकार कर लिया । ईरान के चुनाव पर सारी दुनिया की निगाहे लगी थीं । विश्व महाशक्ति अमेरिका और पश्चिमी देशों के लिए यह चुनाव महत्वपूर्ण था । फ्रांस को छोड़कर किसी भी पश्चिमी देश की विश्वसनीयता 1979 की इस्लामी

1. सिविल सर्विसेज क्रानिकल पत्रिका अगस्त 1997 – पार्श्वोद्धृत
2. जितेन्द्र कुमार सिंह – राष्ट्रीय सहारा 25.02.2000 पार्श्वोद्धृत

क्रान्ति के वाद से आज तक ईरान में नहीं रही है ।[1]

ईरान का यह चुनाव दो तरह के विचारों की जंग वन चुका था, जिसमें एक तरफ सुधारवादी और उदारवादी थे तो दूसरी तरफ कट्टरवादी और रूढ़िवादी थे । अन्ततः खातमी के नेतृत्व में सुधारवादियों की विजय हुई । भारत सहित दुनिया के तमाम देशों से भेजे गये बधाई सन्देशों एवं शुभकामनाओं की जैसे तेहरान में बारात सी आ गयी । नेय राष्ट्रपति खातमी ने चुनाव के दौरान कई विवादित मसलों, जैसे कि प्रेस और लेखन की स्वतन्त्रता, महिलाओं के अधिकारों को मान्यता तथा युवा वर्ग की समस्याओं का समाधान तत्काल करने का वादा किया, उन्होंने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र और कानून का शासन लागू करने का वचन दिया । खातमी सुशिक्षित व्यक्ति होने के साथ ही साथ एक धार्मिक नेता भी रहे है तथा सैय्यद होने के कारण धर्मनिष्ठों के साम्मनीय भी है ।[2] 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के पूर्व वे हैम्बर्ग में ईरानी सांस्कृति केन्द्र के अध्यक्ष भी रहे । वे इस्लाम और दर्शन शास्त्र के ज्ञाता होने के साथ अंग्रेजी, जर्मन और अरबी भाषा के भी अच्छे जानकार है । वे पश्चिम व पूर्व में समन्वय के प्रतीक है । वे 1982 से 1992 तक ईरान के सांस्कृतिक मंत्री रहे । 1997 के पूर्व इस्लामिक नियमों का जिस कठोरता से पालन करवाया जाता था, उससे युवावर्ग व महिलाए बहुत परेशान थे । वे नाच गाने वाले सिनेमा नहीं देख सकती थीं । खुले में लड़कों के साथ धूम नहीं सकती थी । अखबार बहुत कम थे और वे वही लिखते थे जो सत्ताधीशो, विशेषकर कठमुल्लाओं के प्रतिकूल न हो । मई 1997 में खातमी के राष्ट्रपति बनने के बाद सबसे महत्वपूर्ण घटना प्रेस की आजादी थी । कई नये अखबार निकलने लगे । अब लोग आध्यामिक नेता खमनेई की (जो खुमैनी के बाद इस पद पर आरूढ़ हुए थे) खुलकर आलोचना करते थे । खुमैनी के जमाने में ऐसा दुस्साहस कोई नहीं कर सकता था । आध्यामिक नेता ही नहीं, रूढ़िवादी कठमुल्लाओं के रंग ढंग की भी दफ्तरों, होटलों, रेस्तराओ में आलोचना होने लगी । लोग विशेषकर युवावर्ग और महिलाएं खातमी के पक्के समर्थक बन गये । वे चाहते है कि ईरान का अन्तर्राष्ट्रीय जगत से अलगाव खत्म हो । बाहर के लोग ईरान आये और ईरान के लोग विदेश जाएं मिले जुले वैचारिक आदान–प्रदान हो ।[3] इन सब

---

1. जितेन्द्र कुमार सिंह – राष्ट्रीय सहारा 25.02.2000 पार्श्वोद्धृत
2. सिविल सर्विसेज क्रानिकल पत्रिका अगस्त 1997 पार्श्वोद्धृत
3. जगमोहन माथुर पार्श्वोद्धृत

के वाद भी इस सच्चाई को भी स्वीकार करना होगा कि दशको से कट्टरता में जकड़े समाज में खुलापन लाना कोई आसान काम नहीं है । सायद इसी कारण विजय के बाद खातमी ने विभिन्न विचारो, अलग-अलग दृष्टिकोण रखने वालो तथा तरह-तरह के कार्य कौशल से सम्पन्न सभी लोगों से गौरवशाली ईरान के निर्माण में भागीदार बनने का आह्वान किया पर उदारपंथी राष्ट्रपति चुनने के बाद भी कुछ आसान न था । आध्यामिक नेता तीनों सेनाओं का सर्वोच्य सेनापति होता था । पुलिस पर भी उसका नियंत्रण हो सकता है । इस्लामिक अदालते उसके नियंत्रण में होती है । उन अदालतों का क्या रूख है यह 'खोरदाद' समाचार पत्र के प्रबन्ध संपादक अब्दुल्ला नूरी पर चलाये गये मुकदमें से स्पष्ट हो गया । नूरी ने इस्लामी नियमों के नाम पर चलाये गये सभी प्रतिबन्धों पर कड़ा प्रहार किया । नूरी पर इस्लाम विरोधी झूठे प्रचार का आरोप लगाकर उन्हें पांच साल के लिए जेल में डाल दिया गया । यही नहीं उनके पत्रकार के रूप में काम करने पर भी रोक लगा दी गयी । अदालत के निर्णय पर छात्रों व कई नागरिक संगठनों ने रोष प्रकट किया । उदारवादी अखबार को बन्द किए जाने का विरोध करने वाले छात्रों पर कट्टरपंथियों के सशस्त्र बल 'अन्सार-ए-हिज्बुल' ने हमले किए । तेहरान विश्वविद्यालय के अहातें में घुसकर पुलिस ने छात्रों की पिटाई की । आध्यामिक नेता खमनेई ने इस ज्यादती की निन्दा नहीं तारीफ की । इस प्रकार ईरान में उदारवादियों एवं कट्टरपंथियों के बीच टकराव बढ़ता गया ।[1]

आयातुल्ला खुमैनी के प्रभा मण्डल में धार्मिक कट्टरता और रूढ़िवाद को बढ़ावा मिला । वर्तमान धार्मिक नेताओं के पास खुमैनी का व्यक्तित्व नहीं है । ईरान की जनता के संस्कार में धार्मिक कट्टरता नहीं है क्योंकि पहलवी वंश के शासकों ने स्त्री स्वतन्त्रता और समाज में पश्चिमी रहन-सहन को अपना पूरा समर्थन दिया था । 20 वर्षों के शासन के बाद ही धार्मिक जेहाद अब अपना उसर खो चुका है । सुधारवादी राजनीतिक सुधार चाहते हैं । जिसे समाप्त करने के लिये कट्टरपंथी आर्थिक सुधार को पहले लागू करना चाहते है । युवाओं और महिलाओ की शक्ति रूढ़िवादियों पर भारी पड़ी है । 1979 से ही विश्व की महाशक्ति अमेरिका का ईरान से छत्तीस का सम्बन्ध रहा है अन्य पश्चिमी देश भी अब सुधार की आशा

1. जगमोहन माथुर- पाश्वोद्धृत

कर सकते है खाड़ी क्षेत्र और मध्यपूर्व शन्ति प्रक्रिया पर भीं सुधार परिणाम अपना असर डालेगा । ईरान तमाम सन्धियों का विरोधी रहा है । नमरपंथियों की विजय, सुधारवादियो का सत्तासीन होना पश्चिम एशिय शान्ति प्रक्रिया को नया जीवन देगा । अफगानिस्तान के गृहयुद्ध पर भी ईरानी सुधारवादी आन्दोलन का असर दिखाई देने लगा था । अफगानिस्तान पर अमेरिकी आक्रमण के पूर्व रब्बानी के उत्तरी गठबन्धन को ईरान का सर्मथन प्राप्त होता रहा है । सुधारवादी आन्दोलन के इन तमाम वाह्य परिणामों के सुखद एहसास के साथ हीं आन्तरिक परिणाम इससे कम सुखद नहीं रहे हैं । सांविधानिक व्यवस्था को भी सुधार की परिकल्पनायें के अनुरूप संशोधित एवं परिमार्जित किया गया । ईरानी संविधान के अनुसार प्रत्येक चार वर्षवाद होने वाले चुनाव में 15 वर्ष के ऊपर के युवा मतदान कर सकते है । लड़के और लड़किया संविधान में संशोधन चाहते है, वे खुला समाज चाहते है । जिसमें सहशिक्षा की व्यवस्था हो और लड़का–लड़की एक साथ समारोह में इकट्ठा हो सके । सुधार वादियों को युवा वर्ग का पूरा समर्थन मिला। तीन करोड़ अस्सी लाख मतदाओं में दो तिहाई युवा है । ये लोग खुलापन मॉग रहे है और देश भर में सैटेलाइट चैनलों पर से प्रतिबन्ध हटाने की मांग कर रहे है । सिनेमा घरों में नर–नारी के साथ जाना चाह रहे है । पर्दा प्रथा को समाप्त करना चाहते है ।[1] सुधारवादी आन्दोलन का ही परिणाम रहा है कि इस चुनाव में पहली बार 400 से ज्यादा महिला उम्मीदवार थीं । नारी स्वतन्त्रता उनका नारा था । स्वाभाविक रूप से उनकी पसन्द सुधारवादी ही हो सकते थे, सुधारवादियों को विजय का यहीं रहस्य है। ईरानी संविधान में यह प्रावधान है कि मजलिस की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की पहले संरक्षण परिषद जॉच करेगी और उसकी अनुमति के बाद ही उम्मीदवार घोषित होगे इस परिषद में अधिकतर कट्टरपंथी भर दिये गये है । इस परिषद ने इसके पूर्व के मजलिस चुनावों में 576 उम्मीदवारों के पर्चे रद्द किये इसमें अधिकांश उदारवादी ही थे । उदारवादियों ने इस स्थिति को पहले ही भाप लिया था और इसीलिए एक से ज्यादा उम्मीदवारों ने आवेदन पत्र भरे थे । ईरान की कुल 6 करोड़ की जनसंख्या में 3 करोड़ 80 लाख लोगों को वोट डालने का अधिकार था । देश भर में मतदान के 36,046 केन्द्र बनाये

1:जितेन्द्र कुमार सिंह– पाश्र्वोद्धृत 25.02.2000

गये थे । यहाँ चुनाव प्रचार के लिए बड़ी-बड़ी सभा या रैली नहीं की जाती । केवल नुक्कड़ सभाएं होती है । दिवारों पर पोस्टरों पर उम्मीदवारों के नाम छपे होते है ।[1] युवावर्ग आर-पार की लड़ाई के लिए जुट गये । ईरान की 60 प्रतिशत आबादी 25 वर्ष से कम आयु की है । खातमी की अपील और सुधारो के प्रति लोगों की प्रतिबद्धता का असर मतदान में स्पष्ट दिखायी दिया । सुधारों के प्रति प्रतिबद्ध उत्साही मतदाता बड़ी संख्या में अपने घरों से वोट डालने के लिए निकले । 80प्रतिशत मतदान पर लोकतन्त्र पर उनकी गहरी आस्था का भी खुलासा होता है । कई जगह मतदान देर रात तक चला । ईरान में एक क्षेत्र से एक मात्र उम्मीदवार भेजने की परम्परा नहीं है । उस क्षेत्र में जितने उम्मीदवार चुने जाने है मतदाता को उतने ही नाम मतपत्र पर स्वयं लिखने होते है, उदाहरणः तेहरान के मतदाता को 30 नाम मतपत्र पर लिखने थे । भारत की तरह मतपत्र पर उम्मीदवार के नाम छपे नहीं होते । सुधारवदियों का ईरानी जनता के दिलों में कितना सम्मान है इसका अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि तेहरान चुनाव क्षेत्र से 30 उम्मीदवार चुने जाने थे जिनमें 27 सुधारवादी थे, चुनावों का एक आश्चर्यजनक परिणाम यह था कि हाशमी रफ़संजानी जो 8 वर्ष तक स्पीकर थे और 8 वर्ष के दो कार्यकाल तक राष्ट्रपति रहे, 27वें स्थान पर उतरे यानी करीब-करीब बिल्कुल नीचे । समय का तकाजा है कि ईरान में सुधारवाद को शुरू करने वाले रफ़संजानी का नाम कट्टरपंथियों की सूची में है ।[2] सुधारवादी आन्दोलन के अभ्युदय तथा सफलता का एक कारण लगभग 21 वर्षों तक मजहबी उन्माद की छाया में रहने के कारण ईरानी अर्थव्यवस्था का चौपट होना था ईरानी मुद्रा रियाल का 15 वर्षों में जबरजस्त अवमूल्यन हो गया । जिसके कारण ईरान में विकास की गति लगातार कम होती गयी और इसके कारण मजहबी उन्माद कम होता गया । सुधारवादियों का लगातार वर्चस्व बढ़ता चला गया । ईरानी समाज एवं शासन में इस बदलाव का आकांक्षी तो भारत पहले ही से था । इन सुधारों से भारतीय एवं ईरानी समाज में एकरूपता अवश्य आयी साथ ही सत्य का एक पक्ष यह भी है कि भारत सहित अन्य उदारवादी समाज में व्याप्त इसकी तमाम बुराइयां भी धुँआ की तरह फैलनी लगी है । देश का अधिकांश अधिकारी वर्ग भ्रष्टाचार के दलदल में गले तक डूबा हुआ है, नैतिक

---

1. जगमोहन माथुर – पार्श्वोद्धृत
2. वहीं

नियम लागू कराने के लिए नियुक्त रिवोल्यूशनरी गार्डस तक को सुविधा शुल्क दिया जाने लगा है । रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार चरम पर पहुँचता जा रहा है सुधार एवं विकास के नाम पर विदेशों से आये कर्ज का अधिकाशं भाग भ्रष्टाचार की भेट चढ़ता जा रहा है । मंहगाई चरम सीमा पर पहुँच चुकी है नैतिकता का सामाजिक जीवन में निरन्तर हास्व होता जा रहा है । सुधारवादी आन्दोलन का परिणाम ही है कि ईरान में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में व्यापक स्तर पर सुधार आया है । राष्ट्रपति खातमी ने इसी परिवर्वित दृष्टिकोण के चलते 37 वर्षीय श्रीमती मसामा इब्तेकार को उपराष्ट्रपति नियुक्त किया । श्रीमती इब्तेकार सहित छः व्यक्तियों को देश का उपराष्ट्रपति नियुक्त किया गया है ।1979 के बाद पहली बार किसी महिला को इतने उच्च पद नियुक्त किया गया है । श्री खातमी महिलाओं की आजादी के प्रबल समर्थक है । इसी कारण युवाओं सहित महिलाओं का इन्हें जबरदस्त समर्थन प्राप्त है ।[1] संयुक्त राष्ट्र की नयी रिपोर्ट के अनुसार–ईरान में राष्ट्रपति मो0 खातमी के शासनकाल में मानवाधिकारों की स्थिति में सुधार हुआ है । संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिनिधि–मेरिय कोपीथोर्न द्वारा तैयार की गयी यह रिपोर्ट ईरान में बढ़ती स्वतंत्रता को मान्यता देती है । खातमी के सत्ता में आने के बाद से कानूनो में सुधार हुए है और खुले प्रेस को बढ़ावा दिया गया है । रिपोर्ट के अनुसार ईरान में इन सुधारों का श्रेय श्री खातमी को दिया जाना चाहिए । ऐसे सुधारो को लाने के लिए कट्टरपंथियों का सामना करना पड़ा, इसलिए इस प्रगति को महत्वपूर्ण माना जा सकता है । रिपोर्ट के अनुसार ईरान में महिलाओं की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है । महिलाओं के पहनावे के बारे में शक्त कानून, असमान उत्तराधिकार कानून, उपेक्षित स्वास्थ्य स्थिति का भी सामना करना पड़ रहा है । रिपोर्ट में कहा या है कि पहनावा संहिता का पालन नहीं करने पर युवा महिलाओं का तेहरान पुलिस द्वारा उत्पीड़न जारी है । रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ईरान में धार्मिक अल्पसंख्यकों विशेषकर ईसाई जरथ्रुष्टवादी और सुन्नी महिलाओं का उत्पीड़न जारी है । रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ऐसी समस्याओं के बावजूद ईरान में प्रशासन की सहिष्णुता और लोगों की स्वतंत्रता में वृद्धि हुई है । रिपोर्ट के अनुसार विवादस्पद मुद्दों पर ईरान में सार्वजनिक बहस

1. क्रानिकल –ईयर बुक 1998 पृ. 155

करायी जा रही है और अन्य न्यायिक सुधार भी लाये जा रहे है । रिपोर्ट में ईरानी जेल कानूनों एवं व्यवस्था की भी प्रसंशा की गयी है । कड़ी सजाओं जैसे पत्थर मारना अंग विच्छेदन आदि को कम किया जा रहा है परन्तु फांसी पूर्वरूप में ही जारी है ।[1]

एक नरम और सहिष्णु ईरान का अभ्युदय संसार का प्रत्येक देश चाहता है । इस्लाम की आक्रामक छवि को प्रस्तुत करने वाला देश क्रान्ति से क्यों दूर हुआ, यह जानने के लिए उसकी घरेलू और विदेश नीति की सीमाओं में देखा जा सकता है । संसार के मुख्य देशों से कटा और उपेक्षित ईरान अपनी पुरानी पहचान खोता जा रहा था जो रजा खाँ एवं अन्य पूर्ववर्ती शासकों ने स्थापित किया था । धर्म और राजनीति के घालमेल से जिस व्यवस्था का निर्माण हुआ उसने ईरानी विदेश नीति को इस्लामिक जगत में भी अगल थलग कर दिया । ज्यादा तर इस्लामिक देशों में शाह और अमीरो का शासन है जो ईरान को अपना दुश्मन समझने लगे ।[2] रूस, चीन, भारत एवं अन्य एशिया और अफ्रीका के देश ईरान से एक दूरी बनाने रखने में ही अपना भला देखते थे । इसका सबसे बड़ा कारण इन देशों में बड़ी संख्या में इस्लाम के अनुयायी रहते है। इन्हीं तमाम विवाध्यताओं के चलते विश्व रंगमंच पर अपनी भूमिका नये अन्दाज मे अदा करने की गरज से ईरानी शासन ने जनमानस को भापते हुए सुधारो की तरफ अग्रसर हुआ जिसका भारतीय हल्को में स्वागत किया गया । यह ध्यान देने की बात है कि ईरान में अर्थव्यवस्था की हालात ठीक नहीं है । मुद्रास्फीति, बेरोजगारी, वाक्स्वात्रंत्य जैसे क्षेत्रों में बहुत कुछ किया जाना अभी शेष है । नौकरिंया और काम मिलने से ही सुधारवाद सही सिद्ध होगा, अन्यथा यही युवा समाज, जो आज कल खातमी जिन्दाबाद के नारे लगा रहा है, निराश हो जाने पर मुर्दावाद के नारे गुजाने में देर नहीं लगायेगा ।[3]

1. राष्ट्रीय सहारा– खातमी के शासनकाल में मानवाधिकारों की स्थिति में सुधार – 26 अक्टूबर 2002 लखनऊ ।
2. जितेन्द्र कुमार सिंह – 25.02.2000 पार्श्वोद्धृत
3. जगमोहन माथुर – 29.02.2000 पार्श्वोद्धृत

अध्याय – 3

भारत और ईरान की विदेश नीति के मूल तत्व

भारतीय विदेश नीति अन्य देशों की विदेशनीति की भांति विकसित, पल्लवित, पुष्पित और परिपक्कव हुई है । भारत के सन्दर्भ में देखा जाय तो विदेशनीति देश के राष्ट्रीय आन्दोलन, ऐतिहासिक पृष्टभूमि, सांस्कृतिक मूल्यों, राजनीतिक परिस्थितियों, स्थानीय विशेषताओ, नेतृत्व व्यक्तित्व, भौगोलिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं से प्रभावित रही है और उनका संचयी प्रभाव इसके निर्माण, शिक्षा, प्रतिमानो एवं स्वरूप पर पड़ा है । भारत जैसे बहुधार्मिक, विविध जातियताओं, विविध संस्कृतियों एवं धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक देश में विदेशनीति का निर्माण एक जटिल मामला था ।[1] विदेशनीति को 'संभव की कला' (Art of Possible) की संज्ञा दी गयी है । यदि हम इस वाक्यांश को गहराई से विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि विदेश नीति कितनी जटिल, गम्भीर, विकट एवं समस्यायुक्त है । यह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के विविध पक्षों से इस प्रकार जुड़ी है कि हम उसके स्वरूप को स्पष्ट रूप से प्रकट नहीं कर सकते। यदि यह मानव मस्तिक एवं ह्रदय से जुड़ी हुई है तो इतनी ही बिखरी हुई है । भारत 1947 में एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना, इसलिए इसके वैदेशिक सम्बन्धों की शुरूआत भी इसी के साथ हुई और प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू भारत की विदेश नीति के प्रथम पुरोधा माने गये । ऐसा नहीं कि नेहरू ने विदेश नीति को मनचाही दिशा दी, लेकिन तब पर भी विश्व सम्बन्धों के लिए उन्होंने जिस ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की परिकल्पना की वह हमारी सांस्कृतिक परम्परा से हटकर नहीं थी । इस सम्बन्ध में नेहरू का सिद्धान्त देश की समुन्नत सांस्कृतिक परम्परा, गाँधी के दर्शन और स्वयं उनकी अवधारणाओं का सुखद मिश्रण था ।[2] किसी भी देश की वैदेशिक नीति का निर्धारण तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सापेक्ष और राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है, किन्तु भारत की वैदिशिक नीति के निर्धारण में इस अवधाराणात्मक पहलू

1. वी.एम.जैन– प्रमुख देशों की विदेश नीतियाँ – पृ. 271, जयपुर
2. अनिल कुमार द्विवेदी आवरण आलेख– सिविल सर्विसेज कॉनिकल, जनवरी 1996 पृ. 9

के अलावा इस देश की प्राचीन परम्पराओं और स्वाधीनता आन्दोलन के उच्च आदर्शों का भी ध्यान रखा गया है । भारतीय चिन्तन एवं दर्शन की उत्कृष्ट परम्पराओं, जिसका स्वभाव सहिष्णुता एवं सहअस्तित्व रहा है, के कारण ही भारत की वैदेशिक नीति में गुटनिरपेक्षता एवं विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के तत्वों को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया गया है। हजारों वर्ष से भारत के वैदेशिक सम्बन्ध शन्ति, समता पर आधारित एवं सहकार की भावना से ओत-प्रोत रहे है । यह सत्य है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत अपनी इच्छानुसार विदेश नीति का निर्धारण करने लगा, लेकिन यह समझ लेना कि ब्रिटिश काल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत ने कोई हिस्सा नहीं लिया, एक गलत दृष्टिकोण होगा । वस्तुतः स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठधारा है, और अपनी विदेश नीति से सम्बन्धित वक्तव्यों में पंडित नेहरू ने कई बार इस तथ्य की ओर संकेत दिया था ।[1] डा० वी०पी० दत्त के अनुसार ऐतिहासिक परम्पराओं, भौगोलिक स्थिति, और भूतकालीन अनुभव भारतीय विदेश नीति के निर्माण में प्रभावक तत्त्व रहे है ।[2] अतः इसे मात्र संयोग नहीं कहा जा सकता कि – पं० जवाहर लाल नेहरू ने स्वतन्त्र भारत की वैदेशिक नीति की आधारशिला अशोक एवं बौद्ध के शाश्वत सिद्धान्तों एवं दर्शन पर रखी है । हमारे वैदेशिक नीति के अन्तर्गत उपनिवेशवाद, जातिवाद, फासीवाद आदि का विरोध सन्निहित है । जिसे स्वाधीनता संघर्ष के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अपने अनेक प्रस्तावों द्वारा स्पष्ट कर चुकी थी । मार्च 1950 में लोकसभा में पं० नेहरू ने कहा था कि– "यह नहीं समझना चाहिए कि हम विदेश नीति के क्षेत्र में सर्वथा नयी शुरूआत कर रहे है । यह एक ऐसी नीति है, जो हमारे अतीत के इतिहास से और हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित है । इसका विकास उन सिद्धान्तों के अनुसार हुआ है, जिनकी घोषणा अतीत मे हम समय-समय पर करते रहे है ।"[3]

भारतीय विदेश नीति के अध्येता प्रो० जे० बंधोपाध्याय (The making of India's Foreign Policy 1979) ने लिखा है कि किसी भी राष्ट्र की विदेशनीति किसी एक कारक (Factor) या कराको के एक समुच्चय द्वारा निर्धारित नहीं होती, वरन् यह अनेक कारकों के मध्य अन्तः किया का परिणाम होती

1. डी.एन. वर्मा –अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पृ. 275
2. V.P. Dutt, Indias Foreign Policy (New Delhi) 1989& P. 3, और डा. वी.एल. फडिया–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पृ. 303 साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 1999 अगरा
3. J.L. Nehru, Selected Speeches Volume-I, 1950 New Delhi.

है। यह कारक विदेश नीति के निर्माण को भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रभावित करते है । इनमें से कुछ कारक अपेक्षाकृत स्थिर होते है । इनमें परिवर्तन करना सम्भव नहीं होता है । अतएवं इन्हें अन्य कारकों की तुलना में अपरिवर्तनशील और अपेक्षाकृत अधिक मूलभूत कारक माना जाता है, परन्तु अपेक्षाकृत परिवर्तनशील और संस्थात्मक कारक (Institutional Factor) भी वैदेशिक नीति के निर्धारण में उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है, उल्लेखनीय है कि विदेशनीति के मूलभूत निर्धारक तत्वों का सापेक्षिक महत्त्व स्थितियों के अनुसार बदलता रहता है । अतः निर्णय निमांणकर्ताओ (Decision Maker's) के लिए इन कारकों का कोई प्राथमिकता–क्रम (Priority Order) स्थाई रूप से निर्धारिक कर पाना कठिन है ।[1]

विदेश नीति की परम्परा का विकास

दो विश्व युद्धों के काल में राष्ट्र संघ का सदस्य होने के नाते अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत हिस्सा लेने लगा, लेकिन इस काल में भारत सरकार की विदेश नीति स्वतन्त्र नहीं थी । इस कारण इस काल में भारत सरकार की विदेशनीति का स्वरूप मूलतः साम्राज्यवादी था । जिसको भारत की जनता एकदम पसन्द नहीं करतीं थीं । भारतीय राष्ट्रीयता की प्रवक्ता कॉग्रेस ने इस नीति का हमेशा विरोध किया और विश्व की घटनाओं पर स्वतन्त्र रूप से अपना विचार प्रकट करना शुरू किया । कॉग्रेस ने विश्व की समस्याओं का अध्ययन राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से करना प्रारम्भ किया । 1919 के बाद से प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रियाओं को बताने के लिए उसने प्रस्ताव स्वीकार करना शुरू किया । इन्हीं प्रतिक्रियाओं और प्रस्तावों ने स्वतन्त्र भारत की विदेशनीति की परम्परा का निर्माण किया ।[2] कॉग्रेस द्वारा इस प्रकार की नीति के निर्धारण में पंडित नेहरू ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण हिस्सा लिया । वस्तुतः कॉग्रेस के अन्दर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति रूचि पैदा करना और उसके लिए एक विदेशनीति के निर्धारण करने की परम्परा के निर्माणकर्ता पंडित नेहरू ही थे और इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस परम्परा का निर्माण करके उन्होंने स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति का शिलान्यास किया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत ने पंडित नेहरू के नेतृत्व में अपनी विदेश नीति में इन सारे तत्वों का समावेश करने का यत्न किया ।[3]

1. प्रो. जे. बंद्योपाध्या – The Making of India Foreign Policy - 1979
2. डी.एन. वर्मा पार्श्वोद्धृत पृ. 278
3. N.V. Raj Kumar - The Background of Indian Foreign Policy P.P. 9-15

भारत की वैदेशिक नीति कोई आकस्मिक उपज नहीं, बल्कि इसके ऐतिहासिक आधार हैं । विश्व शान्ति, गुटनिरपेक्षता व निःशास्त्रीकरण का समर्थन साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद व नस्लवाद का विरोध, अफ्रो–एशियाई एकता का आह्वान तथा संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों में आस्था भारत की वैदेशिक नीति की नींव के पत्थर है। भारत की स्वतन्त्रता को सार्थक बनाने तथा विकास की गति को तीव्र करने के लिए भी विश्व शान्ति अनिवार्य थी । इसीलिए नेहरू जी ने अपनी विदेश नीति नियोजन में विश्व शान्ति को प्राथमिकता दी । गुटनिरपेक्षता की अवधारणा विश्वशान्ति की स्थापना के लिए एक आवश्यक पहल थी । द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त युद्ध विराम तो हो गया, किन्तु शन्ति नहीं लौटी । मित्र राष्ट्रों में फूट पड़ गयी और शीतयुद्ध का आविर्भाव हुआ । इसी समय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दृश्य पटल पर गुटनिरपेक्षता नामक एक नयी विश्व व्यवस्था का उदय हुआ । वस्तुतः गुटनिरपेक्ष आन्दोलन शीतयुद्ध एवं द्वि–ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के विरुद्ध नव स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक ऐसा अभियान था, जिसमें विश्वशान्ति, सद्‌भावना एवं आर्थिक विकास के साथ–साथ उनके राष्ट्रीय हितों एवं महात्वाकांक्षाओं का अद्‌भुत सामंजस्य विद्यमान था । गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य निष्क्रिय उदासीनता, तटस्थता या अवसरवादिता नहीं था, बल्कि स्वविवेक के अनुसार अपने राष्ट्रहित के अनुकूल विकल्प चुनना ही वास्तविक गुटनिरपेक्षता थी । नेहरू जी ने किसी महाशक्ति का शिविरानुसार न बनकर इस आन्दोलन के बहाने मिस्र, युगोस्लाविया, इंडोनेशिया और कम्बोडिया जैसे देशों से धनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करके अफ्रो–एशियाई भाईचारे और विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रबलता प्रदान की । देखते ही देखते यह संयुक्त राष्ट्रसंघ के बाद विश्व का दूसरा बड़ा संगठन बन गया । इसीलिए कई विद्वान गुटनिरपेक्षता को भारतीय विदेश नीति का एक प्रमुख सिद्धान्त कहने की अपेक्षा उसे विदेश नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाई गयी राजनीति कहना बेहतर समझते है । 'पंचशील' को गुटनिरपेक्षता की सैद्धान्तिक व्याख्या माना गया ।[1]

सितम्बर 1946 में अन्तरिम सरकार की स्थापना के बाद से ही भारतीय विदेशनीति विकसित होने लगी । 26 सितम्बर को एक प्रेस सम्मेलन में बोलते हुए पण्डित नेहरू ने इसकी रूपरेखा निर्धारित की ।

1. अनिल कुमार द्विवेदी, आवरण आलेख कानिकल पत्रिका जनवरी 1996 पृ0 10

सरकारी तौर पर भारत की विदेशनीति से सम्बन्धित यह पहली महत्वपूर्ण घोषणा थी । पं0 नहेरू ने कहा स्वतन्त्र भारत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक स्वतन्त्र नीति का अवलम्बन करेगा और किसी भी गुट में शामिल नहीं होगा । भारत संसार के किसी भी भाग से उपनिवेशवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध करेगा और विश्वशान्ति के समर्थक देशों के साथ सहयोग करेगा । पं0 नेहरू ने भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बढ़ाने पर भी जोर दिया । उन्होंने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्थान प्राप्त कर लेने के बाद यह आवश्यक हो गया है कि भारत दुनिया के सभी देशों के साथ दौत्य सम्बन्ध स्थापित करें । इसके बाद भारत ने संसार के समस्त देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने तथा एशियाई देशों के साथ धनिष्ठता बढ़ाने का प्रयास किया । पं0 नेहरू के उक्त वक्तव्य के आधार पर ही स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति विकसित हुई।[1]

अभी तक की भारतीय विदेशनीति के अध्ययन के आधार पर हम उसमें निम्नलिखित विशेषताएं पातें है :-

(1) वर्तमान गुटबन्दियों की विश्व राजनीति में असलंग्नता की नीति का अवलम्बन करना ।

(2) शान्तिपूर्ण सहजीवन के सिद्धान्त में विश्वास करते हुए विश्वशान्ति कायम रखने में यथा सम्भव सहयोग देना ।

(3) साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद (Racial discrimination) का विरोध करते हुए पद्दलित राष्ट्रों की सहायता करना ।

(4) पारस्परिक आर्थिक तथा जनहितों के रक्षार्थ एशियाई-अफ्रीकी देशों को संगठित करना तथा

(5) संयुक्त राष्ट्र संघ तथा उससे सम्बद्ध उसकी अन्य संस्थाओं का समर्थन तथा उनसे सहयोग करना ।[2]

जिस प्रकार गुटनिरपेक्षता विश्वशान्ति से जुड़ी हुई है, उसी प्रकार निःशस्त्रीकरण का मुद्दा गुटनिरपेक्षता से अन्तर्सम्बन्धित है । जब तक शस्त्रास्त्रों की अन्धी दौड़ जारी रहेगी, तब तक विश्वशान्ति

1. डी.एन. वर्मा पार्श्वोद्धृत पृ. 281
2. वहीं

को निरापद नहीं समझा जा सकता, वस्तुतः शस्त्रीकरण की प्रक्रिया अनिवार्यतः युद्ध की मानसिकता की पुष्टि करती है । अतः विश्वशान्ति के लिए पूर्ण निःशस्त्रीकरण आवश्यक है । जिसकी मांग भारत ने प्रायः प्रत्येक अर्न्तराष्ट्रीय मंच से की है, क्योंकि एक प्रकार से विश्वशान्ति और निरशस्त्रीकरण अलग–अलग मुद्दे नहीं है । इन सबके अतिरिक्त भारत की वैदेशिक नीति के सिद्धान्तों में साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं नस्लवाद का कट्टर विरोध भी शामिल है, वैसे विदेश नीति का निर्माण केवल सिद्धान्तों के आधार पर नहीं होता, बल्कि वह राष्ट्रीय हितों के व्यवहारिक विश्लेषण का परिणाम होती है । भारत की विदेश नीति में भी राष्ट्रीय हित को सर्वोपरि महत्व दिया जाता रहा है । भारत की विदेश नीति प्रायः एक पारदर्शी शीशे की भॉति स्पष्ट रही है । भारत न किसी साम्राज्य की आकांक्षी है न ही उसे अपने किसी उपनिवेश की रक्षा करनी है और भारत ने न ही किसी विचारधारा अथवा शासन प्रणाली के विरोध में कोई सैनिक संगठन स्थापित किया है । अतीत से ही भारत सहिष्णु और शान्तिप्रिय देश रहा है । यह ऐतिहासिक परम्परा भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण तत्व है । स्वाधीन भारत ने पिछले पॉच दशकों में सभी देशों के साथ समानता एवं मित्रता की नीति निभाई है ।[1] आज के युग में विदेशनीति का निर्धारण किसी भी देश के प्रशासक के लिए बड़ी ही कठिन समस्या है । सैनिक और आर्थिक दृष्टि से कमजोर देश के लिए तो यह कठिनाई कई गुना बढ़ जाती है । भारत इस सिद्धान्त का उपवाद नहीं हो सकता था । 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ, उस दिन से भारत स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी विदेश नीति का निर्धारण करने लगा, लेकिन यह एक अत्यन्त कठिन कार्य था । स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति के निर्माण में अनेक कठिनाइया थीं । सबसे विकट समस्या युद्धोपरान्त विश्व का दो गुटों में विभाजित होना था । अभी द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त भी नहीं हुआ था कि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ में मन मोटाव पैदा हो गया । यह मन मोटाव बढ़ते–बढ़ते शीतयुद्ध के रूप में परिवर्तित हो गया । संसार दो गुटों में बट गया । एक का नेता सोवियत संघ और दूसरे का संयुक्त राज्य अमेरिका हुआ । इन गुट बन्दियों में स्वतन्त्र भारत का क्या स्थान हो, भारत के विदेश मंत्री के सामने यह प्रमुख प्रश्न था ?[2]

1. अनिल कुमार द्विवेदी –पार्श्वोद्धृत पृ0 10
2. डी.एन. वर्मा पार्श्वोद्धृत पृ. 279

भारतीय विदेश नीति के मुख्य निर्धारक तत्व या कारक निम्नवत् है :-

भौगोलिक कारक (Geographical Factors)

भारत की भौगोलिक स्थिति इस समस्या को और भी जटिल बना रहीं थी । उत्तर में भारत साम्यवादी गुट के दो प्रमुख देशों (सोवियत संघ और चीन) के बिल्कुल समीप है । इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए पश्चिमी गुट की मर्जी पर आश्रित था । भारत दक्षिण पूर्व और दक्षिण पश्चिम में समुद्रों से घिरा हुआ है । इतने लम्बे समुद्र तट की रक्षा के लिए बहुत बड़ी नौ सेना आवश्यक है और इस दृष्टि से हम पूर्ण रूप से ब्रिटेन पर आश्रित थे । भारतीय विदेश नीति के निर्धारण में एक तीसरी बात का भी समावेश होना था । पराधीन भारत में कांग्रेस के विश्वशान्ति और शान्तिपूर्ण सह-जीवन तथा साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का विरोध जैसे आदर्शो को भी स्थान देना था । महात्मा गाँधी के अहिंसा और विश्व बन्धुत्व का भी ख्याल रखना था ।[1]

किसी राज्य की वैदेशिक नीति के निर्धारक के रूप में भौगोलिक कारक को यद्यपि प्राचीन काल से महत्व दिया जाता रहा है, तथापि बीसवीं शताब्दी में विभिन्न देशों में ख्यातिलब्ध विद्वानों की एक पूरी श्रेणी है, जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भौगोलिक कारक को सर्वाधिक महत्व देती है । इनमें सामान्यतया राष्ट्र की भौगोलिक एवं सामारिक स्थिति, राष्ट्र के आकार और सीमाओं को सम्मिलित किया जाता है । दक्षिण एशिया में अपनी विशिष्ट सामरिक स्थिति के चलते भारत एशिया में केन्द्रीय महत्व का राष्ट्र बन गया है, इन्हीं वास्तविकताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में भारत को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । विदेश नीति के भौगोलिक कारकों में सर्वाधिक महत्व कदाचित राष्ट्र की सीमा रेखा और उन पर अवस्थित अन्य राष्ट्रों को दिया जाता है ।[2]

आर्थिक कारक (Economic Factors)

आर्थिक विकास के लिए भारत में राष्ट्रीय साधन और जनशक्ति का कोई अभाव नहीं था । वे सब चीजें प्रचुर मात्रा में थी । असल प्रश्न था इन साधनों का अधिक से अधिक उपयोग करना और इनका

1. J.C. Kundra- Indian Foreign Policy P.P. 43-49 and K.P. Karunakran Indian and World Affairs P. 26
2. नन्दलाल - पार्श्वोद्धृत पृ. 1549

उपयोग विदेशी सहायता से ही सम्भव था । भारत विदेशी सहायता का इच्छुक था । दुनिया के सभी उन्नत राष्ट्रों से यथासम्भव मद्द प्राप्त करके भारत अपनी उन्नति चाहता था । इस दृष्टिकोण में भारत के लिए सभी देशों के साथ मैत्री का बर्ताव रखना आवश्यक था ।[1] किसी राष्ट्र की विदेश नीति की निर्धारक इकाई के रूप में इस राष्ट्र की आर्थिक स्थिति का महत्व और दोनों के मध्य अन्तर सम्बन्ध की चर्चा करते हुए पण्डित नेहरू ने 4 सितम्बर 1947 को संविधान सभा में कहा था कि ''अन्तिम रूप से विदेश नीति आर्थिक का परिणाम होती है और जब तक भारत आर्थिक नीति सुनिर्मित नहीं होती है, तब तक उसकी विदेश नीति अपेक्षाकृत अस्पष्ट, अपूर्ण और दिशाहीन होगी ।''[2] समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विदेश नीति के आर्थिक कारकों को कदाचित अन्य कारकों की तुलना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है । जे. बन्धोपाध्याय ने अपनी पुस्तक –''दि मेकिंग ऑफ इण्डियाज फारेन पॉलिसी'' में भारतीय विदेश नीति के आर्थिक आयाम बताये है, जिसके तीन प्रमुख सूचक है– सुरक्षा, विदेशी सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ।[3] किसी राष्ट्र की विदेश नीति के आर्थिक आधार को भली प्रकार समझकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उस राष्ट्र की आकांक्षाओं उसकी विदेश नीति के अभीष्ट लक्ष्यों, उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उस राष्ट्र के पास उपलब्ध सामर्थ्यताओं तथा उसके द्वारा अपने वैदेशिक सम्बन्धों में लिये गये निर्णयों को भली प्रकार से समझा जा सकता है । किसी भी देश की राजनीतिक शक्ति उसकी आर्थिक सामर्थ्य के सन्दर्भ में ही मापी जा सकती है, इसीलिए विदेश नीति बनाने में आर्थिक तत्त्वों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है । यदि किसी देश का औद्योगिक आधार कमजोर है तो उसकी विदेश नीति भी प्रभावी नहीं हो सकती ।4 विदेश नीति के आर्थिक कारक या आधार का विश्लेषण, भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों के सन्दर्भ में और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है । क्योंकि विकास की समस्याओं से जूझते इन राष्ट्रों द्वारा निर्मित विदेश नीति का एक मुख्य उद्देश्य विकास के विभिन्न क्षेत्रों में समुचित अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण की प्राप्ति, अपने यहाँ चलायी जा रही विभिन्न विकास योजनाओं के लिए विशेष तकनीक तथा विशिष्ट वैज्ञानिक परामर्श की प्राप्ति होती है । जे वंद्योपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि

1. डी.एन. वर्मा पार्श्वोद्धृत पृ. पृ. 280–81
2. नन्दलाल–आलेख प्रतियोगिता दर्पण, मई 1995 पृ. 1549
3. वी.एल.फडिया–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पृ. 304, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स 1999 आगरा

विकासशील राष्ट्र की आर्थिक विकास की गति इस बात की संकेतक होती है कि कितनी अवधि में वह आर्थिक दृष्टि से विश्व का एक प्रमुख राष्ट्र बन सकता है अथवा कितनी अवधि में अपनी सुरक्षा के अनुकूल सैनिक सामर्थ्यता का विकास कर सकेगा अथवा यह कि उसका राजनैतिक व्यवस्था तन्त्र कितना मजबूत है ।[1] भारतीय जनसंख्या का एक बड़ा भाग ब्रिटेन अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों, दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक राष्ट्रों में रह रहा है । ऐसे राष्ट्रों के प्रति अपनाई जा रही विदेश नीति में किसी गुणात्मक बदलाव के समय, भारतीय विदेश नीति के निर्माताओं को इस पक्ष को भी ध्यान में रखना होता है ।

प्राकृतिक संसाधन राष्ट्रीय शक्ति का एक प्रमुख्य तत्व है और इस अर्थ में विदेशनीति का आर्थिक कारक का एक अनिवार्य घटक है । अमेरिका और सोवियत संघ जैसे राष्ट्रों को आर्थिक और सैनिक शक्ति में प्राकृतिक संसाधनों का वृहद् योगदान है । भारत के पास भी प्राकृतिक संसाधनों का एक विशाल भण्डार है, परन्तु इसका समुचित दोहन और उपयोग अनेक अन्य तथ्यों यथा पूँजी, श्रम, संगठन और तकनीक आदि के समन्वय पर निर्भरकरता है और भारत जैसे विकासशील देश को अपने प्राकृतिक संसाधनों के समुचित प्रयोग की क्षमता विकसित करने में काफी समय लगेगा । अतः यह निश्चितता से कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में भारत की विदेश नीति पर प्राकृतिक संसाधनों की बहुलता का कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है । निकट भविष्य में भी इस बात की कम ही सम्भावना है कि भारत तमाम प्रयासों के बावजूद विश्व मानचित्र पर एक सशक्त आर्थिक शक्ति के रूप के उभर सकेगा । तकनीक के क्षेत्र में भारत अभी भी काफी कुछ हद तक पश्चिमी राष्ट्रों पर निर्भर है, विशेष रूप से उच्च तकनीक के क्षेत्र में । वैसे यह अपने में कोई बुरी बात नहीं है, क्योंकि विकास की एक निश्चित अवस्था में अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ, जापान और चीन जैसे राष्ट्र भी किसी न किसी रूप में विदेशी तकनीक पर निर्भर रहे है । जिस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत ने एक विशिष्ट नीति का अनुशरण किया है, उसी प्रकार से भारत ने आर्थिक विकास के लिए भी एक विशिष्ट प्रतिमान का अनुसरण किया है, जो आर्थिक विकास

1. प्रो. जे. बंद्योपाध्या – The Making of India Foreign Policy - 1979 P. 48

की पूँजीवाद प्रक्रिया और समाजवादी प्रक्रिया के कहीं मध्य में अवस्थित है और दोनों के श्रेष्ठ गुणों के सम्मिश्रण पर आधारित है । इस विशिष्ट स्थिति को देखते हुए भारत के लिए वह वाक्षनीय होगा कि वह किसी एक स्रोत के स्थान पर विभिन्न स्रोतों से वैदेशिक सहायता प्राप्त करने का प्रयास करें । इसका यह तो लाभ होगा हीं कि उसे किसी एक राष्ट्र पर आवश्यकता से अधिक नहीं निर्भर रहना पड़ेगा, बल्कि इससे उसे अधिक मात्रा में सहायता और उच्चकोटि की तकनीकी जानकारी भी प्राप्त हो सकेगी । इससे भारत को अपना गुट निरपेक्ष चरित्र भी बनाये रखने सुविधा होगी इसके साथ हीं भारत को अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं यथा विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व स्वास्थ्य संगठन और युनेस्को आदि के माध्यम से सहायता प्राप्त करने में अधिक रूचि प्रदर्शित करनी चाहिए । भारत ने विश्व बैंक से भी बहुमूल्य सहायता प्राप्त की, परन्तु किसी भी देश के साथ ऐसी सन्धि नहीं की जिससे हमारा स्वतन्त्र निर्णय करने का अधिकार समाप्त हो जाता ।[1]

राजनीतिक कारक (Political Factors)

किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति निर्धारण में राजनीतिक कारकों का यथेष्ठ महत्व होता है । यह तथ्य भारत जैसे राष्ट्रों के विषय में और सही हो जाता है, जिन्हें हाल ही में स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है । राजनीतिक कारकों से हमारा तात्पर्य सम्बन्धित राज्य की राजनीतिक व्यवस्था अथवा राजनीतिक मूल्यों से उतना नहीं है, जितना की उसकी राजनीतिक परम्परा अथवा उसके राजनीतिक कर्णधारों की विचाराधारा से है । जहां तक भारत की राजनीतिक विचाराधारा की परम्परा का प्रश्न है, इसमें आदर्शवादी और यर्थाथवादी दोनों प्रकार की विचारधारायें सम्मिलित है । हमारा उद्देश्य भारतीय राजनीतिक परम्परा के मात्र उन पक्षों की चर्चा करना है, जिन्होंने प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः भारतीय विदेश नीति को प्रभावित किया है, अतएवं भारतीय विदेशनीति के राजनीतिक कारकों का विश्लेषण राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से हीं किया जा सकता है । 1942 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें यह स्पष्ट कहा गया कि .. 'भावी शान्ति सुरक्षा और व्यवस्थित विकास के लिए स्वतन्त्र राष्ट्रों के लिए एक विश्व संघ

1. वी.एन. खान–लिपाक्षी अरोड़ – पार्श्वोद्ध पृ. 32

आवश्यक है । इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी आधार पर आधुनिक विश्व की समस्याओं का निराकरण नहीं हो सकता इस प्रकार के संघ में सदस्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी, एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा शोषण रूक जायेगा, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों की सुरक्षा हो सकेगी, पिछड़े क्षेत्रों और लोगों की उन्नति हो सकेगी और समस्त राष्ट्रों के सामान्य लाभ के लिए विश्व के संसाधनों का उपयोग हो सकेगा । यथार्थ में विश्व विजय और विश्व समुदाय के मध्य कोई विकल्प नहीं प्रतीत होता ।''[1] अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विभिन्न प्रस्तावों, भारतीय विदेश नीति के प्रथम पुरोधा पं0 नेहरू के अलग-अलग भाषणों एवं लेखों में विदेश नीति का स्पष्ट स्वरूप विदेश सम्बन्ध शुरू होने से पूर्व ही निखर कर सामने आ गया था। जिसमें उन्होंने स्पष्ट कहा क 'एक विश्व' (One World) का आदर्श भारतीय विदेश नीति के प्रमुख आधारों में एक है ।[2]

एक विश्व की इसी अवधारणा से भारतीय विदेशनीति में उपनिवेशवाद और रंगभेद वाद के विरोध का तत्व आया है । इन दोनों ही तत्वों का भारतीय विदेशनीति में समावेश भारत के ब्रिटिश शासन काल में अपने अनुभवों के कारण हुआ ।

भारतीय राष्ट्रीय पुनर्जागरण ने लोकतन्त्र और अहिंसा, उपनिवेशवाद विरोध, रंगभेद विरोध, एशियाई एकता तथा सहकारी अन्तर्राष्ट्रीयवाद जैसे राजनीतिक आदर्शों को जन्म दिया । इससे राजनीतिक जनमानस में तार्किकता का विकास हुआ । इस तार्किकता से जिस नई राजनीतिक मनोवृत्ति का विकास हुआ, वह पाश्चात्य प्रजातांत्रिक मूल्यों और आधुनिक विचाराको एवं राजनेताओं जिनमें-महात्मा गॉधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, बल्लभ भाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और जय प्रकाश नारायण प्रमुख थे, जो न्युनाधिक मात्रा में पश्चिमी प्रजातंत्र और साम्यवाद के विरोधी थे, की सोच थी कि-भारत एक स्वतन्त्र विचारधारा का विकास करें, जिसमें राजनीति स्वतन्त्रता, आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय का समन्वय हो । स्वतन्त्रता के बाद आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के परिप्रेक्ष्य में इस राजनीतिक परम्परा में कुछ बदलाव भी आया है, परन्तु मूलरूप में भारत की विदेश नीति को निर्धारित करने

---

1. पं. जवाहर लाल नेहरू – द स्किबरी ऑफ इण्डिया – 1945
2. J.L. Nehru- Selected Speaches Volume- I 1950 New Delhı

वाले राजनीतिक कारक आज भी यही है ।

सैनिक कारक (Military Factors)

किसी राष्ट्र की सैनिक शक्ति अंतिम विश्लेषण में उसकी आर्थिक शक्ति पर आधारिक होती है और इसीलिए इसे विदेश नीति का अवलम्बित कारक माना जाता है । एक विकासशील देश को अपने संसाधनों का बड़ा भाग प्रतिरक्षा की तुलना में विकास कार्यों में निवेशित करना होता है, क्योंकि समानुपातिक प्रतिरक्षा व्यय दीर्घकाल में न केवल इसके राष्ट्रीय विकास वरन् आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा में भी अवरोधक बन सकता है । नेहरू के समय में ही भारत के नीति निर्धारक इसी अवधारणा पर कार्य करते रहे है । भारत की सैनिक शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन उन राष्ट्रों के सापेक्षिक परिप्रेक्ष्य में किया जाय जो भारत के सामारिक बाह्य वातावरण मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है । अमेरिका, चीन और पाकिस्तान इस प्रकार के तीन प्रमुख राष्ट्र है । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि किसी समग्र युद्ध की स्थिति में भारत पाकिस्तान के विरूद्ध तो अपनी रक्षा कर सकता है, परन्तु अमेरिका और चीन के सन्दर्भ में यह सम्भव नहीं होगा, इसके आधार पर यह सहज ही निष्कर्ष निकलता है कि अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा हेतु भारत के लिए सैनिक शक्ति पर निर्भर रहने के स्थान पर राजनीति, आर्थिक और सांस्कृतिक कूटनीतिक का सहारा लेना ही अधिक श्रेयष्कर होगा ।[1] नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार भारत की सैन्य मानव शक्ति (Mility Manpower) पाकिस्तान की लगभग ढाई गुना,चीन को एक तिहाई तथा अमेरिका की आधी है, लेकिन अकेले मानव शक्ति के आधार पर ही किसी राष्ट्र की सैनिक शक्ति का सही आंकलन नहीं किया जा सकता है । नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के ही अनुसार भारत का सैनिक व्यय (Military Expenditure) पाकिस्तान के सैन्य व्यय का लगभग साढ़े तीन गुना, चीन के सैन्य व्यय का लगभग 1/6 तथा अमेरिका के सैन्य व्यय का लगभग छियालिसवाँ भाग है । प्रतिव्यक्ति सैन्य व्यय की दृष्टि से यह स्थिति और भी दैनीय है । नवीनतम उपलब्ध ऑकड़ों के अनुसार अमेरिका 417 चीन 21.5 पाकिस्तान 10 डालर प्रतिव्यक्ति सैन्य व्यय करता है जबकि भारत का प्रतिव्यक्ति सैन्य व्यय 4 डालर

1. नन्दलाल – पार्श्वोद्धृत पृ. पृ. 1551–52

के लगभग है ।

अन्तर्राष्ट्रीय कारक (International Factors)

किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति एक निश्चित समय पर तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण से अनिवार्यतः प्रभावित होती है । कदाचित यह एक राष्ट्र की विदेश नीति को प्रभावित करने वाला प्रमुख तत्व है । इसके दो कारण है। प्रथम–किसी भी राष्ट्र की विदेशनीति का अनिवार्य कार्य स्थल अन्तर्राष्ट्रीय जगत होता है, ऐसी स्थिति में कोई राष्ट्र यदि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को मद्देनजर रखते हुए अपनी विदेशनीति का निर्माण करता है, तो इस बात की अधिक सम्भावना है कि वह अपने राष्ट्रीय हितो की सम्पूर्ति कर सके। दूसरे–अन्तर्राष्ट्रीय कारकों के प्रति संवेदनशीलता किसी राष्ट्र की वैदेशिक नीति को सक्रिय और व्यवहारिक बनाती है । अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश विदेशनीति के निर्धारक तत्वों में से एक प्रमुख तत्व है । कुछ भी हो विदेशनीति उन सभी निर्णयों का योग होता है, जो एक राज्य अन्य राज्यों के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए करता है । दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का किसी समय जो रूप होता है उसका विदेशनीतियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है ।[1] द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व बहुत कम राष्ट्र ऐसे थे, जिनकी सही अर्थो में विदेशनीति जैसी कोई नीति थी । जो विदेशनीति थी भी उसका उद्देश्य सैनिक प्रभुत्व की स्थापना और भू–क्षेत्र के अधिग्रहण से अधिक और कुछ नहीं था, परन्तु द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर विश्व में जो विकास हुए है, उससे अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण या यो कहें कि किसी राष्ट्र की विदेशनीति को प्रभावित करने वाले कारकों में गुणात्मक बदलाव आ गया है । अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण कारक किसी राष्ट्र की वैदेशिक नीति को किस सीमा तक प्रभावित करेंगे, यह काफी कुछ सम्बन्धित राष्ट्र के वैचारिक आधार, सैनिक स्थिति आन्तरिक स्थिति और आर्थिक शक्ति एवं क्षमता पर निर्भर करता है। शीत युद्ध की राजनीति विश्व को द्वि–ध्रुवीकृत बना दिया । गुटबन्दी की राजनीति के इस युग में सैनिक संगठनों की बाढ़ सी आ गयी । इस प्रकार की स्थिति लाने में न तो भारत की कोई भूमिका थी और न ही इसे नियंत्रित कर सकना भारत के वश में था । इन्हीं कारकों के मद्देनजर भारत को अपनी वैदेशिक नीति का निर्धारण करना था, भारत जैसे

1. वी.एन. खान– लिपाक्षी अरोड़ा– पार्श्वोद्धत पृ. 15

नव स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए दो विकल्प थे । शीतयुद्ध की राजनीति में भाग लेना या उससे अलग रहना । भारतीय विदेशनीति के तीन मौलिक उद्देश्यों सुरक्षा, राष्ट्रीय विकास और शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था की स्थापना को ध्यान में रखते हुए भारत के लिए दूसरा विकल्प ही सवोत्तम था और भारतीय नीतिनिर्धारकों ने इसे ही अपनाया भी ।[1] परमाणु अस्त्रों की क्षमता रखने वाले राष्ट्रों में द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त क्रमशः वृद्धि होती गयी है। भारत परमाणु अस्त्रों और परमाणु अस्त्र दौड़ (Nuclear Arms-Race) का शुरू से ही विरोध करता रहा है । भारतीय दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में गाँधी और नेहरू की दार्शनिक विचारधारा तो है ही कतिपय व्यवहारिकता भी है । अपनी इसी सोच के तहत भारत द्वारा परमाणु क्षमता का प्रयोग शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए करने का निर्णय किया गया । इस निर्णय पर भारत आज भी यथावत कायम है । शांति के प्रति भारत की प्रतिबद्धता ने पूरे अन्तर्राष्ट्रीय जगत और पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति भारतीय विदेशनीति के निर्धारण में मुख्य भूमिका निभाई है । 50 और 60 के दशक में सैनिक संगठनों में पाकिस्तान की सहभागिता और 1962 के भारत–चीन युद्ध के उपरान्त चीन के साथ पाकिस्तान के घनिष्ठ सम्बन्धों ने भारत को अपनी रक्षा व्यवस्था के समुन्नयन के लिए प्रेरित किया है । इससे भारत के आर्थिक विकास की गति को धक्का लगा है। चीन के साथ भारत शुरू से ही मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का इच्छुक रहा है। यह भारत का दुर्भाग्य ही है कि शान्ति की स्थापना के लिए इसके द्वारा की गई सकारात्मक कार्यवाही को इसके प्रभुत्व स्थापन के प्रयास समझा जाता रहा है । विदेश नीति निर्धारकों ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में समय–समय पर हुए परिवर्तनों को भली प्रकार से समझा है तथा इन परिवर्तनों का राष्ट्रीय हित सम्बर्धन के लिए समुचित उपयोग भी किया है । परन्तु जहाँ तक विदेश नीति को निर्मित करने का सवाल है, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की भूमिका निर्विवाद है ।[2]

राष्ट्रीय चरित्र (National Character)

सामान्यतः विदेशनीति की चर्चा करते समय हम यह भूल जाते है कि इसका निर्माण राष्ट्रों के सन्दर्भ में किया जाता है न कि व्यक्तियों के, क्योंकि आखिर में जो नीतिकार है वह, एक दूसरे के हितों को ध्यान

1. नन्दलाल–पार्श्वोद्धृत पृ. 1552
2. वी.एम. जैन– प्रमुख देशों की विदेश नीतियाँ पृ.पृ. 25–26 जयपुर

में रखते हुए अपनी नीतियों का निर्माण करते है, न कि अमूर्त अर्थ में । राज्य एक अमूर्त अवधारणा है जबकि व्यक्ति एक मूर्त तथ्य है। अतः राज्यों की विदेशनीति का निर्माण व्यक्ति करते है न कि राज्य स्वयं हॉ यह सही है कि व्यक्ति एक नीतिकार के रूप में राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए नीतियों का निर्माण एवं उनका क्रियान्वयन करता है, परन्तु यह व्यक्तिगत न होकर राष्ट्र की नीति कहलाएगी । यही कारण है कि हम सामान्यतः विदेशनीति को व्यक्ति विशेष की विदेशनीति कहकर पुकारते है जैसे नेहरू की विदेशनीति, डिगाल की विदेशनीति, चर्चिल की विदेशनीति, ख्रश्चेव की विदेशनीति, माओ की विदेशनीति इत्यादि ।[1]

सामान्यतः विद्वतजनों द्वारा विदेशनीति के निर्धारक तत्व के रूप में राष्ट्रीय चरित्र को अहमियम नहीं दी जाती, परन्तु डेविड ह्यूम (David Hume) और वर्टेण्ड रसेल (Bertrand Russel) जैसे अनुभव वादियों अर्नाल्ड टॉयनबी (Arnold Toyanee) जैसे इतिहासकारों लार्ड कीन्स (Lord Keynes) जैसे अर्थशास्त्रियों और हेन्स मॉग्रेन्थो (Hans Morgenthau) जैसे यथार्थवादियों ने वैदेशिक नीति के निर्धारक तत्व के रूप में मान्यता दी है । उदाहरणार्थ एक आम अमेरिकी धन और शक्ति का उपासक है । ऐसा स्वयं अमेरिकी विश्लेषक भी मानते है, अतएवं इसी के अनुरूप अमेरिकी विदेशनीति का अपने स्वरूप में विश्व परक (Globel) और प्रसारवादी होना स्वाभाविक है । चूँकि शांति और सहिष्णुता हमेशा से ही भारतीय मानस और परिवेश का आदर्श रहा है । अतएवं गुटनिरपेक्षता की नीति का भारतीय विदेशनीति को आधार स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया गया, क्योंकि भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर विश्व में दोनों ही महाशक्तियों की नीतियॉ आंशिक रूप से गलत थी ।[2] पंचशील के पांच सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी भारत की शान्ति प्रियता का द्योतक है । 1954 के बाद से भारत की वैदेशिक नीति को पंचशील के सिद्धान्तों ने एक नयी दिशा प्रदान की है । इसे भारतीय विदेशनीति की आधारशिला भी कहा जाता था।

पंचशील बौद्धधर्म का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका सर्वप्रथम प्रयोग महात्मा गौतम बुद्ध ने किया

1. वी.एम. जैन– पार्श्वोद्धृत पृ. पृ. 25–26,
2. नन्दलाल–पार्श्वोद्धृत पृ. पृ. 1552

था । बौद्ध धर्म स्वीकार करके व्यक्ति भिक्षु बनता था । उसको पाँच व्रतों को धारण करना पड़ता था । जिसे पंचशील कहा जाता था । इसका शब्दिक अर्थ है– "आरचरण के पाँच सिद्धान्त" । जिस प्रकार बौद्ध धर्म में ये व्रत एक व्यक्ति के लिए होते थे, उसी प्रकार आधुनिक पंचशील के सिद्धान्त के द्वारा राष्ट्रों के लिए एक दूसरे के साथ आचरण के सम्बन्ध निश्चित किए गये । ये सिद्धान्त निम्नलिखित है –

(1) सभी राष्ट्र एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और सम्प्रभुता का सम्मान करें ।

(2) कोई राज्य दूसरे राज्य पर आक्रमण नहीं करें और दूसरों की राष्ट्रीय सीमाओं का अतिक्रमण न करें । किसी राज्य सीमा को दूसरा राज्य भंग नहीं करें ।

(3) कोई भी राज्य एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्ताक्षेप नहीं करें ।

(4) प्रत्येक राज्य एक दूसरे के साथ समानता का व्यवहार करे तथा पारस्परिक हित में सहयोग प्रदान करें । अर्थात् सभी देश समान है । कोई न बड़ा है और न कोई छोटा । सब को इसी सिद्धान्त के आधार पर आचरण करना चाहिए ।

(5) सभी राष्ट्र शांतिपूर्ण सहजीवन के सिद्धानत में विश्वास करें तथा सिद्धान्त के आधार पर एक दूसरे के साथ शान्ति पूवर्क रहे तथा अपनी अलग–अलग सत्ता एवं स्वतन्त्रता कायम रखे ।[1]

विदेशनीति को प्रत्यक्षतः या परोक्षतः प्रभावित एवं निर्धारित, निर्देशित और नियंत्रित करने वाले पूर्वविवेचित आधारों से ईरानी विदेशनीति भी पूर्णतया आच्छाछित रही है। भारतीय विदेशनीति की तरह ईरानी विदेशनीति भी कोई आकस्मिक उपज नहीं है, बल्कि इसके व्यापक ऐतिहासिक आधार है । भारतीय विदेशनीति और ईरानी विदेशनीति में निरन्तरता एवं परिवर्तन की दोनों धारायें साथ–साथ चलती रही है। सैनिक, राजनैतिक, आर्थिक, अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय चरित्र जैसे कारक ईरानी विदेशनीति को निरन्तर प्रभावित एवं निर्देशित करते रहे है । 1953 में अमेरिका ने ईरान को 45 मिलियन की आपत् आर्थिक सहायता प्रदान की । दिसम्बर 1953 में ब्रिटेन और ईरान में पुनः कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया ।

1. डी.एन. वर्मा पार्श्वोद्धृत पृ. पृ. 292–93

एंग्लो–ईरानी तेल विवाद का समाधान हो गया । ईरान पश्चिमी गुट में सम्मिलित हो गया । 11 अक्टूबर, 1955 को वह बगदाद पैक्ट में सम्मिलित हो गया । मार्च 1957 में ईरान ने आइजनहावर सिद्धान्त का दृढ़ समर्थन किया तथा 5 मार्च, 1959 को ईरान ने अमेरिका के साथ एक द्विपक्षीय प्रतिरक्षा समझौते पर भी हस्ताक्षर कर दिये ।[1] अमेरिकी नीति निर्धारकों ने ईरान की सेना को आधुनिक हथियारों से लैस करना शुरू कर दिया । 1970 और 1978 के बीच ईरान के शाह ने 10 अरब डालर मूल्य के हथियार अमेरिका से खरीदें । इन 8 वर्षों के दौरान अमेरिकी हथियारों की कुल बिक्री का 25 प्रतिशत भाग अकेले ईरान ने खरीदा ।[2] पहलवीवंश के अन्तिम शासक मो0 रजा शाह के सत्ताच्युत होकर देश से पलायन करने तथा 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के बाद राजनीतिक एवं चारित्रिक कारकों का ऐसा असर ईरानी विदेशनीति पर हुआ कि उसकी दिशा और दशा पूर्णतया विपरीतोन्मुखी हो गयी । जिस अमेरिका से उसके दृढ़ मैत्री सम्बन्ध थे, 77 वर्षीय ईरानी धार्मिक नेता आयातुल्लाह रोहल्लाह खुमैनी (Ayatollah Rohullan Khoemeini) के नेतृत्व वाला ईरान 12 मार्च, 1979 को सेन्टो से अलग हो गया । शाह को शरण देने के विरोध में अमेरिकी दूतावास के तेहरान स्थित 60 कर्मचारियों को बन्धक बना लिया गया । अमेरिका और ईरान के बीच तनाव अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया । अमेरिकी बन्धकों को लेकर अमेरिकी प्रशासन 1980 के पूरे वर्ष परेशान रहा । अप्रैल में कार्टर प्रशासन ने इन बन्धकों को जबरदस्ती छुड़ाने का एक प्रयास किया, लेकिन वह पूरी तरह असफल रहा । कुछ दिनों के पश्च्यात पुनः राजनैतिक स्तर पर वार्ताए शुरू हुई । मध्यस्थ का काम अल्जीरिया ने किया । आशा और निराशा की निरन्तर ऑख–मिचौली के बाद 20 जनवरी 1981 को ईरान ने 52 अमेरिकी बन्धकों को 444 दिनों के बाद रिहा कर दिया । आयातुल्लाह खुमैनी ने 26 नवम्बर, 1979 को अमेरिका के विरूद्ध "पवित्र युद्ध" की घोषणा की ।[3] संयुक्त राज्य अमेरिका और ईरान के सम्बन्धों में इतना व्यापक परिवर्तन विदेश नीति के उन्हीं निर्देशक कारकों के यथार्थ प्रतिफलों का प्रकटीकरण है, जिनका उल्लेख भारतीय विदेशनीति के परिप्रेक्ष्य में किया जा चुका है । हम किसी देश की विदेशनीति का अध्ययन करते समय प्रायः उसकी सांस्कृतिक एवं एतिहासिक पृष्ठभूमि,

1. पी.डी. कौशिक– अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पृ.पृ. 573–74
2. डी.एन. वर्मा–पार्श्वोद्धृत पृ. 469
3. वही पृ. 475–76

आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितिया मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, बौद्धिक स्तर और बुद्धिजीवी वर्ग की वचनबद्धता एवं उसके देश की आर्थिक राजनैतिक एवं सामाजिक तथा धरेलू परिस्थितियों को विदेशनीति विश्लेषण में गम्भीरता से नहीं लेते हैं जबकि विदेशनीति का आधार धरेलू नीति है यदि धरेलू परिस्थितिया एवं सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण सबल एवं उपयुक्त होगा तो विदेशनीति का आधार भी सम्भवतः सुदृढ़ होना लगभग निश्चित है ।[1]

किसी भी सम्प्रभु राष्ट्र का बाह्य व्यवहार विभिन्न कारकों द्वारा निर्देशित होता है, जिनमें आर्थिक आवश्यकता, राजनीतिक विचारधारा, क्षेत्रीय एवं वैश्विक राजनीतिक प्रणाली जिससे वह देश संचालित होता है, भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अनुभव आदि ।[2] ईरान इन सामान्य अनुदेशों का अपवाद नहीं है । ईरान की बाह्य नीति के निर्धारक तत्वों में वहाँ की सभ्यता, लोग, भौगोलिक स्वरूप आदि ध्यान देने योग्य है । इन्हीं कारकों से ईरान की क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय नीतियाँ प्रभावित एवं निर्देशित होती रही है साथ ही क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिघटनाओं से ये कारक भी प्रभावित, निदेशित एवं परिवर्तित होते रहे है । यही कारण है कि कभी ईरान अमेरिकी खेमे में खड़ा दिखाई देता है, तो कभी उसके रूस से प्रगाढ़ मैत्री सम्बन्ध होते है । शाह के जमाने के ईरान जो अमेरिकी हमसफर था, में सत्ता परिवर्तन एवं इस्लामिक गणतन्त्र बनने पर तेहरान विश्वविद्यालय एवं अन्य बड़ी मस्जिदों में अब भी प्रतिसप्ताह की नमाज के बाद अमेरिका मुर्दाबाद के नारे लगाये जाते है ।[3] इस प्रतिकूल परिवर्तन के पीछे राजनीतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र (आयतुल्लाह खुमैनी) जैसे कारक ही उत्तरदायी है । असल में इस्लामिक सरकार के तीन दशक के शासनकाल तथा आठसाला जंग के बाद जब हम ईरान की विदेशनीति पर ध्यान केन्द्रित करते है, तो हमें फौरी तौर पर ही मामूली बदलाव ही दिखाई देता है । जिसके पीछे उत्तरदायी कारक रूप में राजनीतिक, आर्थिक (विशेष रूप से तेल व्यापार) और सैनिक आवश्यकतायें ही जिम्मेदार रही है । ईरान की विदेशनीति कभी भी रोमांचकारी नहीं रही है । यह शान्त वातावरण में गुप्त रूप से इस्लामिक आदर्शोन्मुखी होकर चलती रही है ।[4] ईरान, जो एक प्राचनी एवं महान देश है, जो अपनी सभ्यता में एवं संस्कृति के विख्यात

---

1. वी.एम.जैन–पार्श्वोद्धृत पृ. पृ. 21–22
2. नसीर सगाफी अमेरी–ईरान की विदेश नीति के तत्व–इनकन्टेम्प्रेरी ईरान इमर्जिग इण्डो–ईरान रिलेशन्स
3. माया (राजनीतिक पत्रिका) 31 मार्च 1995 पृ. 52

है, ने 1978 में हवाना सम्मेलन से अपने को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से जोड़ लिया । ईरानी विदेशनीति निर्धारण में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के आदर्शों की भी छाप दिखाई देती रही है । यह सत्य है कि यह सैद्धान्ति आदर्श कभी-कभी सैनिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक कारकों की प्रतिपूर्ति में बेअसर दिखाई देते है । यह भी एक सत्य है कि ईरानी विदेशनीति गुटनिरपेक्षता के आदर्शों से सर्वथा उन्मुक्त नहीं रही है

गुटनिरपेक्ष देशों की बड़ी-बड़ी उपलब्धियों में से एक यह है कि उन्होंने अमेरिका और सोवियत आदर्श अपने ऊपर थोपे जाने का विरोध किया और अपनी राष्ट्रीय प्रकृति के अनुसार विकास के अपने राष्ट्रीय सांचो और पद्धतियों का आविष्कार किया इस तरह भारत ने अपने समाज के समाजवादी ढ़ांचे का आविष्कार किया और अरब राष्ट्रों ने "अरब समाजवाद" का । भारत और ईरान की विदेशनीतियाँ भी गुटनिरपेक्षता के आदर्शों के अनुप्रकाश में निर्मित एवं तत्निर्देशन से संचालित होती रही है ।[1] डा0 वेद प्रताप वैदिक गुटनिरपेक्षनीति के प्रखर आलोचक है । इन्होंने इस नीति को भारत जैसे विशाल देश के लिए अतर्कसंगत तथा यथार्थ दृष्टिकोण पर खरी नहीं उतरने वाली नीति के रूप में विवेचित किया है । अपने बहुपक्षीय तर्कों के आधार पर गुटनिरपेक्षता की नीति को भारत के लिए सर्वथा अनुपयुक्त कहा है।[2] इन आलोचनाओं के बावजूद यह एक सच्चाई है कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने गुटनिरपेक्ष नीति को आदर्श के मायाजाल से निकाल कर उसे राष्ट्रीय हित के यथार्थ की धरोहर प्रदान की । डा0 वी0पी0 दत्त ने अपनी पुस्तक "इण्डियाज फॉरेन पालिसी" में लिखा है कि -'गुटनिरपेक्षता" का सिद्धान्त विदेशनीति का दिशा सूचक रहा है, क्योंकि इससे राष्ट्रीय हितों का संवर्द्धन हुआ है ।[3]

उभय देशों में सत्ता परिवर्तन के साथ-साथ विदेशनीति का बुनियादी ढाँचा कभी नहीं बदला । जहाँ ईरानी विदेशनीति का मूल स्वरूप मूलतः इस्लामिक रहा, वहीं भारतीय विदेशनीति का मूल स्वरूप नेहरूवादी ही रहा । इस तथ्य को उभयदेशों के परिप्रेक्ष्य में एक निरपेक्ष निष्कर्ष के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए । अब तक भारत और ईरान की विदेशनीति में भले ही परिवर्तन की अपेक्षा निरन्तरता की धारा अधिक प्रबल रही हो, किन्तु अब यह धारा किनारे काटकर दूसरी दिशा तलाश करने लगी है । वास्तविकता

1. वी.एल.फडिया-पार्श्वोद्धृत पृ. 217
2. वेद प्रताप वैदिक-भारतीय विदेशनीति-नये दिशा संकेत 1980 नई दिल्ली अध्याय-9, वी.एल.फडिया-पार्श्वोद्धृत पृ.312

तो यह है कि पिछले कुछ वर्षों में दुनिया काफी बदल चुकी है और इसमें भारत और ईरान दोनों देशों की विदेशनीति यथार्थ के धरातल की खोज पूरी तन्मयता से करने लगी है । विदेशनीति के निरन्तर विकास होने के स्तर पर भी दोनों देशों में समानता है। भारत और ईरान दोनों की विदेशनीतियाँ एक गतिहीन विदेशनीति न होकर गतिशील (Dynamic) विदेशनीति है । जैसे जैसे राष्ट्रीय हितों आन्तरिक व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में परिवर्तन आया, विदेशनीति का स्वरूप भी बदल गया । नेहरू के समय भारत तटस्थता और गुटनिरपेक्षता को अत्याधिक महत्व देता था तो इन्द्रिरा गाँधी के समय भारत ने सोवियत संघ से सन्धि करना उचित समझा । जनता शासन में असली गुटनिरेपक्षता पर जोर दिया जाने लगा तो राजीव गाँधी ने श्रीलंका में भारतीय शंति सेना भेजकर विदेशनीति को नवीन आयाम प्रदान किया । पी0वी0 नरसिंह राव ने नैतिकता और मूल्यों पर आधारित नीति पर अधिक बल न देकर आर्थिक पहलू पर अधिक ध्यान देने की चेष्टा की ।[1] इसी प्रकार शाहकालीन ईरानी विदेशनीति पर अमेरिकी प्रशासन की छाप स्पष्ट रूप से निर्णायक व निर्देशक स्तर की रही तो क्रान्तियोत्तर (इस्लामिक) ईरानी विदेशनीति इसके सर्वथा प्रतिकूल इस्लामिक राष्ट्रवाद से प्रभावित रहीं ।

सोवियत संघ के पतन के बाद आज विश्व दो ध्रुवीय नहीं रह गया है । शीतयुद्ध समाप्त हो चुका है तथा सैनिक संगठन व सन्धियाँ पहले की भांति महत्वपूर्ण नहीं रहीं । इसलिए गुटनिरेपक्षता अब अपना अर्थ खोती नजर आ रहीं है। उधर दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के अन्त के साथ बहुसंख्यक अश्वेतों की सरकार स्थापित हो चुकी है, और लगभग पूरे अफ्रीका में जनतन्त्र का उदय हो चुका है । ऐसे में उभय देशों की विदेशनीति को नस्लवाद और उपनिवेशवाद उतना प्रभावित नहीं करता । आज उदारीकरण और अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के दबावों ने सामरिक शब्द का अर्थ अप्रत्यासित रूप से बदल दिया है और दो देशों या गुटों के बीच के सम्बन्ध आर्थिक मुद्दों से प्रधानमंत्री, विदेशमंत्री की विदेश यात्रा होती है, तो आर्थिक समझौते ही अधिक होते है । पश्चिम के देशों द्वारा गढ़ा गया पूँजीवादी ढाँचा आज हर विकासशील देश के लिए अनुकरणीय माडल बन गया है । यह मान लिया गया है कि अर्थव्यवस्था का भूमण्डलीयकरण

1. वी.एल. फडिया – पार्श्वोद्धृत पृ. 318

हर राष्ट्र की एक निश्चित नियति है । जब तक सोवियत संघ अपने जलवे में था, तब तक अर्थ व्यवस्था का भूमण्डलीयकरण अनिवार्य नहीं ठहराया गया था । सोवियत संघ की साम्यवादी व्यवस्था के विघटन के बाद अब इसके पुराने समर्थक देश भी इस माडल की चर्चा करते शरमाते है । माडल की अप्रसांगिकता को और भी उजागर कर दिया है । साम्यवाद की असफलता को पूँजीवाद की सफलता का प्रमाण मानकर आज सभी विकासशील देश अपने यहाँ आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण का सैलाब लाकर निर्धनता और पिछड़ेपन के सभी चिन्ह डुबाने के लिए आतुर है । अन्य विकासशील देशों की तरह भारत और ईरान भी भूण्डलीय करण की इस दौड़ में शामिल हो गये है । नेहरू का समाजवादी चोला अब भारत को भारी पड़ने लगा है । भारत में सभी सार्वजनिक उद्योगों का ताबड़तोड़ तरीके से अब जो निजीकरण किया जा रहा है, ईरान इस रास्ते पर अर्से पूर्व से ही अग्रसर रहा है । इतना ही नहीं, किसी देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के निवेश में दिलचस्पी और लेनदेन की स्थिति राष्ट्रों की विदेशनीति को भी प्रभावित करने लगी है ।[1] भारत और ईरान इसके अपवाद नहीं है ।

जाहिर है कि इन बदलती हुई परिस्थितियों में भारत और ईरान को अपनी विदेशनीति में परिवर्तन करना लाजिमी हो गया था और दोनों देशों ने आवश्यक वांछनीय परिवर्तन किये भी है । परमाणु अप्रसार और निरशस्त्रीकरण के मुद्दे आज भी प्रासांगिक है, जबकि भारत अपने चमत्कारिक परमाणु परीक्षण से विश्वमान्य परमाणु राष्ट्र बन चुका है और ईरान परमाणु प्रकरण पर अर्से से अमेरिका और पश्चिमी राष्ट्रों की अंगुली के निशाने पर है । अमेरिका ने ईरान की परमाणु बम बनाने की आकांक्षा का ढोल पीटकर उस पर आर्थिक प्रतिबन्ध 1995 में ही जड़ दिये थे ।[2] इसीलिए भारत और ईरान को इन मुद्दों को लेकर विश्व की पहली पंक्ति में खड़े होकर अपने स्पष्ट रूख पर अड़े रहना होगा । प्रायोजित आतंकवाद आज एक नई अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गया है, जिसकी मार भारत को भी झेलनी पड़ रही है तथा पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा जिसके लिए ईरान को भी समय-समय पर दोषी करार दिया जाता रहा है । प्रायोजित आतंकवाद दोनों देशों की विदेश नीति का एक यथार्थ है, फर्क केवल इतना है कि इस मुद्दे पर भारत एक भुक्त भोगी राष्ट्र

1. अनिल कुमार द्विवेदी -पार्श्वोद्धृत पृ. 18
2. माया (राजनीतिक पत्रिका) 15 जुलाई 1965

है, जबकि ईरान पश्चिमी राष्ट्रों की निगाह में एक प्रायोजक राष्ट्र । निष्कर्षतः दोनों देशों को नवीन परिस्थितियों में इन मुद्दों को अपनी विदेशनीति मे समाकलित कर के विश्व रंगमंच पर विचाराधारा और रणनीतिक के क्षेत्र में रचनात्मक पहल करनी होगी, विशेषकर भारत को ताकि इसकी विदेशनीति पूर्व की भांति तीसरी दुनिया के बहुत सारे देशों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके ।

अध्याय – 4

भारत और ईरान के बीच राजनीतिक सम्बन्ध

खण्ड– (अ)
सामान्य राजनीतिक सम्बन्ध

एतिहासिक स्रोतों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सिन्धु सभ्यता से ही दोनों महान देशों के आपसी सम्बन्ध थे, पर यह स्पष्ट नहीं है कि ये सम्बन्ध सिर्फ व्यापारिक थे या अन्य स्तरों पर भी पारस्पारिक सम्बन्ध रहे । इस काल में ईरान से सीसा आयात किया जाता था । सन् 77 में ईरानी आक्रमण हुआ ।[1] आक्रान्ताओं के स्तर के सम्बन्धो का एतिहासिक साक्ष्य इसके पूर्व भी उपलब्ध है । ईरानी साम्राज्य के संस्थापक युग पुरूष साइरस प्रथम (लगभग 558 से 530 ई0 पू0) ने हिन्दुकुश पर्वत तक अपने साम्रज्य की सीमा बढा दी और गान्धार उसके प्रदेश का एक अंग हो गया । डेरियस ने भी पंजाब के एक भाग को अपने राज्य में मिला लिया। मौर्य कालीन कला व संस्कृति के अलावा राजनीतिक व्यवस्था पर भी ईरानी प्रभाव रहा । मेगस्थनीज के अनुसार मौर्य सम्राट ईरानी प्रणाली से रहते थें । सिकन्दर का जिस समय भारतीय हल्को पर अधिपत्य था उसके पूर्व ईरान सिकन्दर के प्रदेशों में सामिल था । दोनो की शासकीय संचालन व्यवस्था सिकन्दर के मातहतो द्वारा की जाती थी ।[2] शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य के बाद महाराज हर्ष के शासन काल में भी भारत एवं ईरान के बीच राजनयिक सम्बन्धों के एतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हैं ।[3] राजपूत कालीन भारत में जहाँ दोनों देशों के सम्बन्ध नही के बराबर रहा तो सल्तनत कालीन एवं मुगल कालीन भारत एवं ईरान के राजनयिक सम्बन्ध अपने चर्मोत्कर्ष पर रहे। दिल्ली के सुल्तानों ने फारसी भाषा को अपनी राजभाषा बनाया । साहित्य एवं कला के क्षेत्र में व्यापक समन्वयात्मक सम्बन्धों के साथ राजनयिक सम्बन्धों की भी स्थापना के साक्ष्य उपलब्ध हैं । ईरानी राजनयिक सुल्तानों के दरबारों में

---

1. ए0के0 मित्तल, भारत का इतिहास साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा
2. भारत का इतिहास – N.C.E.R.T. पेज सं0–114
3. ए0के0 मित्तल – पार्श्वोद्धृत

समय–समय पर आते रहे । जिनका पूर्ण राजकीय सम्मान किया जात रहा । भारतीय सुल्तानों के दरबारों से भी राजनयिक स्तर पर आना जाना रहा । 1539 ई0 में कन्नौज तथा 1540 में चौसा के युद्ध में शेरशाह से पराजित हुमायूँ ने ईरान में ही जाकर शरण ली थी ।[1]

शाहजहाँ ने ईरान के लिए राजनयिक सम्बन्धों की बारीकियों के समाधानार्थ विशेषरूप से ईरान नीति का निर्माण किया था ।[2] मुगल काल में मुद्राओं का आदान– प्रदान का भी साक्ष्य मिलता हैं, गौर तलब है कि ईरानी शासको को पाँचवी शदी में भी स्वर्ण मुद्राओं के प्रदान किये जाने का साक्ष्य मिलता हैं।[3] मुगलकालीन शासन व्यवस्था पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता हैं । जैसा कि विविद है, मुगलो का मूल प्रदेश एशिया था, मुगल राज व्यवस्था का आधार फारस एवं अरब की राजसंस्थाऐं थी । तत्कालीन मुगल सरदार अपने दरबार ईरानी तरीके से लगाते थे। उस समय के विशेषाधिकार प्राप्त वर्गो मे, जो मुगल सरदार थें, उनमें ईरानी भी थें । मुगल कालीन शासन व्यवस्था भारतीय एवं विदेशी तत्वों का मिश्रण थी।[4]

भारत में अंग्रेजो के शासन काल में राजनयिक सम्बन्ध पूर्णतयः स्थगित ही रहे । स्वतंत्र भारत एवं ईरान के राजनयिक सम्बन्धों में ब्रिटिश कालीन सम्बन्ध अवरोध धीरे–धीरे टूटना प्रारम्भ हुआ परन्तु कोई विशेष उल्लेखनीय प्रगति नही हुई । साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर ही विशेष ध्यान दिया गया । जो ज्यादातर गैर सरकारी प्रयत्न ही था । 1979 की ईरान की इस्लामिक क्रान्ति के जनक अयातुल्लाह खुमैनी ने गैर इस्लामिक राष्ट्रो को सम्बन्धों की परिधि से पूर्णतयः बाहर रखा । 1989 में खुमैनी के निधन के बाद हासमी रफसंजानी की अगुवाई में ईरान में सुधारवाद का एक नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ । भारत एवं ईरान के सम्बन्धों की अवरूद्ध व बाधित दीर्घकलिक सम्बन्धों की परम्परा में एक नवीन स्फूर्ति सी आ गयी। बहुआयमी सम्बन्धों की प्रतिस्थापना दोनो देशों के राजनेताओं के आपसी आवाजाही से पुनः हुई ही नही निरन्तर विकसित भी होती गयी ।

राजनयिक सम्बन्धों की दिशा और दशा परराष्ट्रनीति द्वारा अवधारित व क्रियान्वित होती हैं । इन सम्बन्धों का असली रूप परराष्ट्रनीति के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनो का समन्वयात्मक रूप होता हैं।

---

1. ए0के0 मित्तल –पार्श्वोद्धत
2. वही
3. भारत का इतिहास – N.C.E.R.T. पेज सं0–184
4. ए0के0 मित्तल साहित्य –पार्श्वोद्धत

इस्लामिक गणराज्य ईरान की घरेलू एवं विदेश नीतियों तथा आर्थिक व राजनैतिक व्यवहार इन्हीं सिद्धान्तो पर आधारित हैं । उन्ही स्रोत्रों से लोगों की आंकाक्षाओं को प्रेरणा मिलती हैं , क्योंकि विश्व की अधिकतम सरकारें पश्चिमी नमूने के आधार पर सगठित है । जो शक्तियाँ किन्हीं प्रश्नों पर इस्लामिक गणराज्य ईरान से मतभेद रखती है । वे उन प्रश्नों को अलग रखते है । ईरान ने अपनी विदेशनीति का निर्माण क्षेत्रीय सुरक्षा व स्थिरता के प्रोत्साहन व विकास एवं देशों में आपसी राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व वैज्ञानिक सहयोग के विस्तार के लिए बिना किसी विदेशी ताकत के हस्तक्षेप के किया है । फारस की खाड़ी की समस्या के दौरान, ईरान द्वारा अख्तियार किया गया सैद्धान्तिक रवैया, क्षेत्र में हिंसा के फैलाव को हमारे द्वारा रोका जाना, अफगानिस्तान और तजाकिस्तान में हमारे द्वारा आपसी सुलह व समझौता पर बल देना, कौकासस में शांति पूर्ण समझोता व विश्व में सर्वाधिक शरणार्थियों को पनाह देना तथा खाड़ी युद्ध के शिकार लोगों को मानवीय सहायता देना, हमारी स्थिरता को मजबूत करने, तनाव रोकने और मानवीय दुःखों को कम करने की गति से मेल खाता है । हमें दृढ़ विश्वास है कि इस विषय से सम्बन्धित देशों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के बीच आपसी परामर्श और सहयोग के साथ इस प्रयासों का हमारा अनुशरण, इन मतभेदों को दूर करने व आगे न बढ़ने देने के लिए तथा आगे आनेवाली मानवीय दुःखद घटनाओं को कम करने के लिए आवश्यक है ।[1] देशों के आपसी राजनयिक, संव्यवहार संस्थापन व संचालन स्वयं के हित व नीति के अनुरूप हुआ करता है। जिसमें उनके शासन के स्वरूप सत्तासीनों की राजनैतिक विचार धारा, देश की अर्थव्यवस्था, प्रश्नगत विषय की महत्ता आदि अनेक कारक निर्णायक की भूमिका निभाते है । भारत एवं ईरान के राजनयिक इतिहास का अवलोकन करने से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि इन आधारभूत सिद्धान्तों के अनुप्रकाश में ही इन दो महान देशों के राजनीतिक सम्बन्धों की संस्थापना हुई तथा इन्हीं आधारों पर सम्बन्धों का विकास भी हुआ । प्रमुख कारकों में किसी भी प्रकार का बदलाव सम्बन्धों पर अपना असर अवश्य दिखाता रहा है ।

भारत और ईरान को औपनिवेशक शक्ति ब्रिटेन के कुप्रशासन का अनुभव रहा है । जिसने दोनों देशों

1. ए0 शेखअख्तार – इस्लामिक गणराज्य ईरान– पृ.पृ. 1–15, Incontemporary Iran and Emerging INDO-IRANIAN Retations Girijesh Pant.- J.N.U., New Delhi

के सम्बन्धों के लिए उपागम की समानता का कार्य किया है । कभी-कभी एकदम विपरीत नीतियों के पीछे साम्राज्यवादी शक्तियों का हाथ रहा है । जैसे पचास और साठ के दशक में ईरान ने पश्चिमी संगठन व्यवस्था को अपनाया जैसे 'सेन्टो' जिसे बगदाद पैक्ट भी कहा जाता है । पाकिस्तान भी इसका सदस्य था । ईरान ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के उद्देश्य से इसकी सदस्यता ग्रहण की थी । भारत से इसका कोई विवाद नहीं था, लेकिन भारत में इसको सन्देह से देखा गया । सत्तर के दशक में पाकिस्तान ने ईरान का परिचय चीन से करवाया । ईरान पाकिस्तान चीन का उभरता हुआ संगठन भी भारत में सन्देह के घेरे में रहा । इसी तरह ईरान की इस्लामिक क्रान्ति को भारत की अखण्डता के लिए भारी खतरे के रूप में देखा गया कि इसका विस्तार भारत में इस्लाम पसन्द ताकतों को बढ़ावा देगा ।[1]

भारत-ईरान सम्बन्ध उतार-चढ़ाव से गुजरते हुए वर्तमान स्थिति में आये है । ईरानी विदेश नीति का द्वंद रहा है कि वह इस्लामिक राज्यों का समर्थन आन्तरिक घटकों के लिए करेगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सही सम्बन्ध भी स्थापित करेगा । पहले ईरान से बड़ी मात्रा में तेल की सप्लाई भारत को हुई है । मद्रास रिफाइनरी की स्थापना में ईरान ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्राकृतिक गैस के क्षेत्र में ईरान के साथ समझौते के दूरगामी लाभ प्राप्त होंगे । ईरान खाड़ी क्षेत्र में गैस की सप्लाई करने वाला एक महत्वपूर्ण देश है । 1993-95 के बीच दोनों देशों के मध्य मंत्री स्तर पर वार्ता हुई, परन्तु पाकिस्तान के रवैये के कारण समझौता साकार नहीं हो पाया ।[2] ईरान की पाकिस्तान के साथ गैस के सम्बन्ध में बिक्री वार्ता 1989 से शुरू हुई, जबकि भारत के साथ 1993 से । ईरान के भारी उद्योग मंत्री नेजद हुसेनयार की यात्रा अप्रैल 1993 में ईरान के पेट्रोलियम मंत्री ने भारत का दौरा किया ।[3]

भारत-ईरान सम्बन्धों में उभय राष्ट्रों के राष्ट्रीय नेताओं के विभिन्न समयो के राजकीय भ्रमणों, यात्राओं तथा उस दरम्यान किये गये समझौतो से गुणात्मक सुधार होता आया है । 9 फरवरी 1981 को नई दिल्ली में गुटनिरपेक्ष देशों के विदेश मंत्रियों का सम्मेलन आरम्भ हुआ । 11 फरवरी 1981 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की 20वीं जयंती के उपलक्ष्य में विशेष आयोजन तथा 13 फरवरी को सम्मेलन समाप्ति की

---

1. K.R. Singh- INIDO-IRANIAN Relations in the Nnteen : Dejing Parameters and Frames work' Incontemporay Iran Emerging INDO-IRANIAN Reltaions - Girijesh Pant P.P. 103-104
2. वही- पृ.पृ. 104-109
3. K. R. Singh - पार्श्वोद्धृत

घोषणा की गयी । भारत के तत्कालीन विदेशमंत्री पी0वी0 नरसिम्हाराव तथा ईरानी विदेशमंत्री की मुलाकातों ने दोनों देशों की पारस्परिक मैत्री की दिशा में सकारात्मक पहल की दिशा को नई गति प्रदान की ।[1] 11 नवम्बर 1981 को भारत और ईरान ने 1982 में कच्चे तेल के आयात के लिए तेहरान में एक करार पर हस्ताक्षर किये ।[2] 1982 में ईरानी मजलिस के अध्यक्ष, विदेशमंत्री, उपविदेशमंत्री तथा उनके साथ एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डल भारत आया तथा भारत का भी एक आर्थिक एवं वाणिज्यिक प्रतिनिधि मण्डल भी ईरान गया ।[3] वाणिज्यिक एवं आर्थिक सहयोग के एक समझौते पर हस्ताक्षर हुआ। ईरान के विदेशमंत्री अली अकबर विलायती 28 अप्रैल 1982 को 5 दिन की भारत यात्रा पर आये इनके साथ एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डल भी आया ।[4] दोनों देशों के मध्य बहुपक्षीय सम्बन्धों के विकास से सम्बद्ध विविध सम्भावनाओं पर वार्ता की गयी । 30 अप्रैल 1982 को ईरान ने ईरानी इस्पात उद्योग के विकास के लिए भारत से सहयोग की इच्छा जाहिर की ।[5] 2 मई 1982 को भारत ईरान संयुक्त आयोग के गठन पर सहमति व्यक्त की गयी । 10 अगस्त 1982 को ईरान का एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डल 7 दिन की यात्रा पर दिल्ली पहुँचा । 16 अगस्त को ईरानी संसद के अध्यक्ष ने भारत से ऊर्जा के क्षेत्र में परमाणु बिजली में सहयोग प्रदान करने की इच्छा जाहिर की । भारत ईरान संयुक्त आयोग की बैठक 10 जनवरी 1986 को हुई । 21 अगस्त 1986 को एक व्यापार एवं उद्योग सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर हुआ ।[6]

नवम्बर 1991 में भारत ईरान संयुक्त आयोग की पाँचवीं बैठक में उभय राष्ट्रों के विदेशमंत्री तेहरान में मिले । दोनों देशों के मध्य सांस्कृतिक आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी, वैज्ञानिक तथा कृषि सम्बन्धी अनेकों समझौतो पर हस्ताक्षर हुआ ।[7] 21 से 23 सितम्बर 1993 को भारत के प्रधान मंत्री पी0वी0 नरसिम्हाराव तीन दिन की सरकारी यात्रा पर ईरान गये । राव की ईरान यात्रा द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत बनाने के उद्देश्य से अत्यन्त महत्वपूर्ण यात्रा साबित हुई । इसके पूर्व सितम्बर 1992 में भी गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में राव तथा राफसंजानी मिले थे आपसी सम्बन्धों में सुधार एवं विकास की सम्भावनाओं पर वार्ता भी हुई थी । राव की इस ईरान यात्रा में एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि मण्डल भी गया।

---

1. भारत –1982 पृ. 632, पार्श्वोद्धृत
2. वहीं पृ. 667
3. India -1986 P. 603 पार्श्वोद्धृत
4. वहीं पृ. 702
5. दैनिक जागरण लखनऊ– 1 मई 1982

कश्मीर समस्या, उद्योग, तेल तथा ऊर्जा सम्बन्धी विषयों पर वार्ता भी हुई । ईरान के चैम्बर्स आफ कामर्स का एक प्रतिनिधि मण्डल भी प्रधान मंत्री से वार्ता किया ।[1] ईरान की यात्रा करने वाले राव भारत के तीसरे प्रधानमंत्री है, इसके पूर्व जवाहर लाल नेहरू तथा श्रीमती इन्दिरा गॉधी ईरान की यात्रा कर चुकी है । 23 सितम्बर को दो करारो पर हस्ताक्षर हुआ– आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने पर सहमति तथा आर्थिक व्यापार सम्बन्धी समझौता हुआ । परिवहन तथा पारगमन करार पर भी प्रणव मुखर्जी तथा विलायती ने हस्ताक्षर किया । विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित करार पर भी हस्ताक्षर हुआ । विभिन्न क्षेत्रों में आपसी आदान–प्रदान पर भी सहमति व्यक्त की गयी । संयुक्त घोषणा में अलगाव बाद तथा आतंकवाद की निन्दा की गयी । श्री राव ने ईरानी मजलिश को भी सम्बोधित किया । ऐसा करने वाले श्री राव भारत के पहले प्रधानमंत्री है। सम्बोधन में भारत ईरान के दीर्घकालिक सम्बन्धों के विविध पक्षों को उद्घाटित करते हुए श्री राव ने कहा कि भारत ईरान की भाषा एक ही परिवार की है ।[2] राव की यह यात्रा 1979 में हुई इस्लामिक क्रान्ति के बाद किसी भारतीय प्रधानमंत्री की पहली ईरान यात्रा थी ।[3]

1993 में ही राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने भी ईरान की राजकीय यात्रा की । राष्ट्रपति रफसंजानी से इनकी वार्ताओं से भी दोनों देशों के सम्बन्धों में सुधार एवं निखार आया ।[4] मार्च 1994 में भारत के विदेशमंत्री की ईरान यात्रा भारत ईरान संयुक्त आयोग की 7वीं बैठक में भाग लेने के उपलक्ष्य में हुई । राष्ट्रपति रफसंजानी की प्रस्तावित भारत यात्रा कश्मीर पर पाकिस्तानी प्रचार के कारण रद्द कर दी गयी लेकिन यात्रा रद्द किये जाने का जो कारण प्रचारित किया गया वह यह था कि उस समय भारत प्लेग रोग की चपेट में था । वैसे भी ईरान के राजनयिक सव्यवहार की हकीकत यह है कि ईरान नेता अपने आर्थिक विकास में भारत के सहयोग को आवश्यक मानते है तो दूसरी ओर रफसंजानी और उनके सलाहकार मुल्ला पाकिस्तान का विरोध करके इस्लामिक पुनर्जागरण का मुखिया होने का नारा नहीं छोड़ना चाहते । रफसंजानी की प्रस्तावित यात्रा रद्द होने पर 2 जनवरी 1995 विदेश मंत्री विलायती ने भारत की यात्रा की। विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग के विभिन्न मुद्दों पर प्रधानमंत्री राव से वार्ता की । 5 जनवरी 1995 को भारत

1. दैनिक जागरण लखनऊ– 20 सितम्बर 1993
2. दैनिक जागरण तथा जनसत्ता लखनऊ – 23 सितम्बर 1993
3. जगमोहन माथुर–आलेख– नवभारत टाइम्स लखनऊ
4. हिन्दुस्तान टाइम्स लखनऊ– 29 फरवरी 2000

ईरान संयुक्त आयोग की 8वीं बैठक हुई ।[1]

विदेश नीति राजनयिक सम्बन्धों की आधार शिला होती है । भारत-ईरान सम्बन्धों को भी इसी परिधि में देखना होगा । ईरान अपनी विदेशनीति के निर्माण में तीन दृष्टिकोण अपनाता है[2] –

(1) इस्लामिक आन्दोलन के अगुआ के रूप में –

(2) तीसरी दुनिया के देशों में नव उपनिवेश बाद के विरूद्ध आवाज उठाने वालों में –

(3) विश्व तेल राजनय के महत्वपूर्ण नेता के रूप में –

बहुप्रतीक्षित और दो बार टलने के बाद अन्ततः ईरान के राष्ट्रपति अली अकबर हाशमी रफसंजानी ने महत्वूपर्ण भारत यात्रा 17-19 अप्रैल 1995 को सम्पन्न की । इस यात्रा को राजनीतिक एवं कूटनीतिक दृष्टि से गम्भीर बनाने के लिए भारतीय प्रधानमंत्री ने प्रोटोकाल के विपरीत स्वयं हवाई अड्डे पर आकर ईरानी राष्ट्रपति की अगवानी की । 1995 में सोलह वर्ष पूर्व हुई इस्लामिक क्रान्ति के बाद भारत की यात्रा पर आने वाले रफसंजानी पहले ईरानी राष्ट्रपति है । उनके साथ विदेश मंत्री अली अकबर विलायती और तेल मंत्री गुलाम रजा सहित एक सौ सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल था । राष्ट्रपति रफसंजानी ने अपनी भारत यात्रा का उद्देश्य आपसी सम्बन्धों को और मजबूत करना बताया । इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी मुद्दों पर बातचीत हुई ।[3] सरकारी स्तर पर बातचीत करने के पूर्व दोनों देशों के राष्ट्रपतियों ने अपनी वार्ता में इस बात पर सहमति व्यक्त की कि -भारत और ईरान को राजनीतिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आपसी सहयोग बढ़ाना चाहिए । भारतीय राष्ट्रपति डा0 शंकर दयाल शर्मा ने कहा कि – दोनों देश एक दूसरे के अनुभव और विशेषज्ञता के हस्तान्तरण का लाभ उठा सकते है । उन्हें अपनी संस्कृति एवं परम्परा बनाये रखते हुए आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए ।

ईरानी राष्ट्रपति की इस भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों के मध्य ईरान से भारत को प्राकृतिक गैस आपूर्ति हेतु पाइप लाइन बिछाने की साढ़े तीन अरब डालर की एक परियोजना, उर्वरक संयंत्र स्थापना रेल

1. जनसत्ता लखनऊ- 2, 4, 5 जनवरी-1995
2. श्रीधर-Factor Leading to India, Iran, China Praposal bv Iran" incontemporary Iran------- पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 112-113
3. India-1996 P. 550 पार्श्वोद्धृत

परियोजनाओं और मादक पदार्थों की तस्कारी रोकने सम्बन्धी समझौते हुए । इसके अतिरिक्त जो एक अन्य महत्वूपर्ण समझौता हुआ वह मध्य एशियाई देशों से भारत के व्यापर को सहज बनाने के लिए ईरान में खुश्की के रास्ते से माल के आवागमन की सुविधा प्रदान करना है । भारत ने पहली बार इस तरह के किसी समझौते पर हस्ताक्षर किया । इससे भारत मध्य एशियाई देशों से ईरान के रास्ते थल मार्ग से जुड़ गया ।[1]

कश्मीर विवाद, भारत में सीमापार से संचालित आतंकवादी और अलगाव वादी गतिधियों पर भी चर्चा हुई । रफसंजानी ने कहा कि कश्मीर को दोनों देश द्विपक्षीय आधार पर सुलझायें । यदि दोनों देश तैयार हो तो ईरान मध्यस्तता के लिए भी तैयार है 18 अप्रैल 1995 को भारत और ईरान के मध्य पारगमन समझौता हुआ ।[2] ईरानी राष्ट्रपति की इस भारत यात्रा के पिछले 15 वर्षों के भारत ईरान सम्बन्धों का फौरी तौर पर अवलोकन करने से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि पारस्परिक राजनयिक गतिविधियों के परिचालन से उभय राष्ट्रों के सम्बन्धों में निरन्तर सुधार व परिष्कार होता आया है । 1995 की रफसंजानी की भारत यात्रा जितनी महत्वूपर्ण थी लगभग उसी प्रकार की व्यापक प्रभावों वाली सितम्बर 1993 की भारतीय प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिम्हाराव की ईरान यात्रा भी थी । इससे भारत–ईरान सम्बन्धों में जो गुणात्मक परिवर्तन देखने को मिला है उसके कई कारण बताये जाते है ।[3]

(1) मानवाधिकारों के सम्बन्ध में ईरान का अपने अल्पसंख्यकों के साथ रवैया सन्तोषप्रद नहीं है । जिसके कारण जेनेवा में पाकिस्तानी प्रस्ताव का समर्थन ईरान ने नहीं किया ।

(2) मध्य एशिया में पाकिस्तान–अमेरिका के प्रभाव से ईरान चिन्तित है ।

(3) सोवियत रूस के विघटन के बाद अमेरिकी खतरा–ईरान के लिए ज्यादा गम्भीर हो गया है। भारत ईरान की दृष्टि से इस क्षेत्र में अमेरिकी दबाव को टालने में मद्दगार हो सकता है ।

(4) इसी प्रकार ईरान यह नहीं चाहेगा कि भारत और पाकिस्तान करीब आये ।

सोवियत यूनियन के बिखरने के कारण ईरान मध्य एशिया के सब–सिस्टम Sub-System का

---

1. यूनीक सामान्य अध्ययन–1996 पृ. एल/12 यूनीक पब्लिकेशन्स दिल्ली ।
2. वही – पृ. एल/13
3. कलीम बहादुर –पाकिस्तान एज फैक्टर इन इण्डिया–ईरान रिलेशन्स पृ. 123

एक महत्वपूर्ण भाग गया । अब तक इरान को अरब–उपव्यवस्था में एक गौण स्थान प्राप्त था किन्तु पर्सियन गल्फ फारस की खाड़ी पर स्थित होने के कारण ओमान की खाड़ी एवं होरमुज पुंज पर ईरान की गहरी नज़र है और यह क्षेत्र विश्व के तैल ऊर्जा का सर्वाधिक महत्वूपर्ण स्रोत है । फारस की खाड़ी की सुरक्षा ईरान के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है । विदेश मंत्री डा0 बिलायती ने इस तथ्य को अहमियत देते हुये कहा –

"हमारी सबसे महत्वूपर्ण एवं सामरिक सीमा हमारी दक्षिणी तटीय रेखा है अर्थात् फारस की खाड़ी, होरमुज पुंज और ओमान सागर । यह क्षेत्र हमारे लिये बहुत अहम है ..... हम इसके भाग्य के प्रति उदासीन नहीं रह सकते"[1] इस प्रकार ईरान की विदेश एवं रक्षा नीति के लिये यह क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण है।

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद जबकि सोवियत युनियन का विघटन हो गया ईरान को क्षेत्रीय स्तर पर मध्य एशिया के नव–स्वतंत्र राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने तथा क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के लिये संगठन बनाकर विश्व व्यापार में अपनी भागीदारी बढ़ाने का अवसर मिला । अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों में विस्तार सहित इरान को भारत के साथ एतिहासिक पृष्ठभूमि वाले सम्बन्धों को भी बढ़ाने के लिये पहल करनी चाहिये । भारत ने भी अपने आर्थिक राजनय का सक्रियता से प्रयोग करते हुए जहाँ पश्चिमी राज्यों तथा Look East Policy अर्थात दक्षिण पूर्व एशिया के साथ आर्थिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने का प्रयास किया वहीं परम्परागत एतिहासिक रिश्त को भी मजबूत करने का प्रयास किया । इस सम्बन्ध में पहली भारत एवं ईरान के नेताओं की भेंट जकार्ता में हुई जहाँ सितम्बर 1992 ई0 में गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सम्मेलन में राष्ट्रपति रफसंजानी तथा प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव मिले । भारत–ईरान सम्बन्धों में वृद्धि के लिये 3 महत्वपूर्ण घटक हैं ।

(1) अफगानिस्तान में सोवियत सेनाओं के द्वारा आक्रमण के समय भारत एवं ईरान की नीतियों में विरोध पैदा हुआ था इसलिये अब सम्बन्धों को सृदृढ़ करने की आवश्यकता थी–इसी के साथ शीत युद्ध के बाद विश्व व्यवस्था ने दोनों देशों का करीब आने का मौका दिया कि दोनों गुटनिरपेक्ष

---

1. नासिर सग़ाफी अमेरी – "ईरान इलीमेन्टस ऑफ फारेन पाल्सिी" पार्श्वोद्धृत पृ. 72

आन्दोलन को और प्रांसगिक बनाते हुए पश्चिमी राज्यों के नये प्रभुत्व से बच सके तथा विकास शील राज्यों को बचा सकें ।

(2) मध्य एशिया के राज्यों के साथ भारत के प्राचीन एतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों ने तथा इस तथ्य ने कि ईरान का इस क्षेत्र के साथ मधुर सम्बन्ध है, भारत को ईरान के साथ अच्छे सम्बन्धो के लिये प्रेरित किया है ।

दूसरी, हिन्द महासागर के राज्यों के बीच आपसी सहयोग की सम्भावनाओं ने ईरान को भारत के करीब आने के लिये प्रेरित किया ।

इसी प्रकार ईरान ने सैनिक समझौतों से हटकर आर्थिक एवं वाणिज्य व्यापार को बढ़ावा देने की दृष्टि से भारत–ईरान–चीन सहयोग पर दिया ।

(3) प्रत्यक्ष सम्बन्ध जिससे आर्थिक एवं वाणिज्यिक सहयोग को बढ़ावा दिया जा सके जैसे

(अ) फारस की खाड़ी से भारत को पाइप लाइन बिछाकर प्राकृतिक गैस की सप्लाई का प्राविधान ।

(ब) ईरान में एक उर्वरक प्लान्ट की स्थापना के लिए समझौता

(स) भारत के सहयोग से ईरान की रेल व्यवस्था में व्यापक सुधार की योजना भारत की सहायता से जिससे फारस की खाड़ी को मध्य एशिया के साथ जोड़ा जा सके ।[1]

खाड़ी के पहले अरब देशों के साथ ईरान के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे । विशेषकर हज की समस्या को लेकर सऊदी अरब के साथ सम्बन्ध काफी खराब हो गये थे । कुवैत पर इराकी आक्रमण के बाद अरब और खाड़ी के देशों को ईरान की तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाना पड़ा । ईरान के लिये यह अच्छा अवसर था । ईरान ने जहाँ एक ओर इराक के कुवैत पर आक्रमण को नकारा वहीं बाहरी शक्तियों के इस क्षेत्र में मौजूद होने पर शकां व्यस्त की तथा विरोध किया । संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कतर, बहरीन, कुवैत हर देश ने ईरान का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया । ईरान के द्वारा विदेशी सेनाओं की

---

1. इस सम्बन्ध में 6–9 नवम्बर 1993 को भारत के रेल मंत्री श्री सी.के.जाफर शरीफ द्वारा ईरान में रेल विस्तार के लिए एक मेमोरैन्डम ऑफ आण्डर स्टैडिंग (MOU) पर हस्ताक्षर किए गये जिसके माध्यम से IRCON को उस प्रोजेक्ट पर काम करने का मौका किया ।

उपस्थिति का विरोध किया जाने के बावजूद खाड़ी सहयोग परिषद के देश इस बात से सन्तुष्ट थे कि ईरान ने इराकी आक्रमण की निन्दा किया था ।[1] परन्तु ईरानी विदेश नीति के सामने यह एक समस्या थी । इरान ने हर अवसर पर खाड़ी क्षेत्र में विदेशी सेनाओं की उपस्थिति का विरोध किया । ईरान को खाड़ी के देशों के रवैये पर भी आपत्ति थी खाड़ी के देश अपनी सुरक्षा के लिये व्यक्तिगत रूप से विदेशी शक्तियों से अनुरोध कर रहे थे । ईरान ने इराक के विरूद्ध किसी भी युद्ध में सम्मिलित होने से इनकार कर दिया ईरान, तुर्की एवं पाकिस्तान के सहयोग से इस क्षेत्र में शान्ति की स्थापना चाहता था ।

खाड़ी के देश इस संकट की स्थिति में ईरान के साथ अपने सम्बन्धों को और तीव्र करना चाहते थे । दिसम्बर 1990 में दोहा (कतर) में आयोजित अपने सम्मेलन में GCC (खाड़ी सहयोग संगठन) ने ईरान के साथ ''धर्म एवं सम्पदा'' के रिश्तों के आधार पर मधुर सम्बन्धों की बात कही । दोहा घोषणा में अलग से एक भाग जोड़कर ईरान के महत्व को सम्बोधित किया गया था ।[2] ईरानी विदेश मत्रांलय ने दोहा घोषणा का स्वागत करते हुए खाड़ी क्षेत्र की सुरक्षा के लिये किये गये प्रयत्नों को सराहा भी किन्तु दूसरी साँस में इस मुश्किल क्षेत्र को विदेशी शक्तियों से मुक्त कराने की आशा भी की ।[3]

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का प्रस्ताव संख्या 678 ईरान के लिये संदेह की कड़ी थी । ईरान ने इसलिये इसे महाशक्तियों द्वारा इस क्षेत्र में **'शक्ति प्रयोग'** के रूप में देखा तथा कुवैत संकट के समाधान के लिये इराक से बिना शर्त के कुवैत खाली करते हुए बाहरी शक्तियों से भी कहा कि वह इस क्षेत्र को खाली करदें ।[4]

युद्ध के प्रारम्भ होने पर ईरान ने अपनी तटस्थता की घोषणा की । ईरान की इस नीति से अरब देशों को राहत की साँस मिली क्योंकि ईरान अगर इराक का समर्थन करता तो युद्ध में जटिलता पैदा हो जाती । राष्ट्रपति रफसंजानी का तटस्थता का निर्णय बाद में ईरान के लिये लाभप्रद सिद्ध हुआ । ईरान को क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्था में एक महत्व मिला । ईरान ने जहाँ इराक के विमानों को अपने यहाँ ठिकाना देकर इराक का समर्थन किया वहीं उनको वहाँ से उड़ान भरने से रोककर खाड़ी और पश्चिम के देशों को

1. A.K. Pasha- ईरान एण्ड द अरब वर्ल्ड इन द नाइण्टीज : कान्फलिक्ट एण्ड कोआपरेशन, इन कान्टेपोरेरी ... पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 80–81
2. ए.जी. नूरानी–द गल्फ वार्स (नई दिल्ली) 1991 पृ. 191

खुश किया । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध की समाप्ति के बाद अमरीकी दबाव के कारण ईरान को इस क्षेत्र की सुरक्षा व्यवस्था से अलग कर दिया गया ।

ईरान–ईराक युद्ध की समाप्ति (1980–88) तथा खाड़ी संकट के बाद से ईरानी विदेश नीति निर्माताओं के प्रयासों के बाद भी अरब क्षेत्र में ईरान को सफलता कम मिली । ईरानी राजनयिक अपने को मध्य एशिया का देश अधिक समझते हैं न कि मध्य पूर्व का । मध्य एशिया के देशों या एशिया के अन्य देशों के साथ उदाहरणार्थ पाकिस्तान, अफगानिस्तान, भारत इत्यादि के साथ ईरानी के भाषाई, सांस्कृतिक एवं सामाजिक सम्बन्ध ज्यादा गहरे रहे हैं । ईरान इन क्षेत्रों के साथ आर्थिक सम्बन्धों को भी मजबूत कर सकता है ।[1]

भारत–ईरान, सम्बन्ध सदियों से मधुर रहे हैं । इसी तरह पाकिस्तान की स्थापना के बाद पाकिस्तान–ईरान सम्बन्ध भी मधुर रहे हैं परन्तु कभी–कभी इन तीन देशों में से भारत–ईरान सम्बन्ध पाकिस्तान को लेकर कटु भी रहे है । पाकिस्तान की स्थापना के बाद से ही पाकिस्तान के लोग यह सोचते रहे हैं कि भारत–पाकिस्तान को नष्ट करने के लिये तत्पर है । अफगानिस्तान ने भी पाकिस्तान की सीमाओं को तसलीम नहीं किया। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर उसने दावा किया । इस प्रकार पाकिस्तान को भारत एवं अफगानिस्तान से खतरा महसूस होता रहा जिससे पाकिस्तान ने अपनी सुरक्षा को देखते हुये अमेरिकी गठबंधन से हाथ मिलाया । सुरक्षा एवं रक्षा मामलों को देखते हुये इरान भी इसमें सम्मिलित हो गया । तेल भण्डारों एवं खाड़ी के क्षेत्र में ईरान के सामरिक महत्व को देखते हुये यह अमेरिकी सुरक्षा पंक्ति का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया । अमेरिकियों ने इसका प्रयास किया कि ईरान में कोई ऐसी सत्ता न आ सके जो उसके हितों के विरूद्ध हो ।

बगदाद पैकट या सेन्टो CENTO की सदस्यता पाकिस्तान ने भारत के विरूद्ध अपनी सैनिक सहायता के लिये ग्रहण की अमरीका द्वारा स्थापित यह सन्धि साम्यवाद के विरूद्ध सोवियत रूस के दक्षिण या पश्चिम एशिया में अपने प्रभाव विस्तार को रोकने के लिये की गयी थी जिसमें पाकिस्तान का

---

1. 'ए.के. पासा–पार्श्वोद्धृत पृ.पृ–87–89

प्रयोग किया गया था ।[1] शाह के समय में ईरान–पाकिस्तान–अमेरिका धुरी आगे बढ़ती मालूम हुयी । ईरान अपने को दक्षिण पश्चिम एशिया का सुपर पावर समझने लगा था, किन्तु 1979 के इस्लामी क्रान्ति के बाद से ईरान–अमरीका सम्बन्ध टूट गये ईरान गुट निरपेक्ष आन्दोलन में सक्रीय दिखने लगा ।

भारत का विश्वास था कि ईरान जिसने यद्यपि औपनिवेशिक कुप्रशासन का दुःख नहीं सहा परन्तु उसका आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण हुआ है इसलिये उसके साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित हुये । स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद ही भारत–ईरान वाणिज्य एवं नौपरिवहन समझौता 1954 में हुआ । दूसरे व्यापार समझौते 1961, 1963 1968 में हस्ताक्षर हुये । भारत–इरान संयुक्त आयोग की स्थापना 1969 में हुयी । सुप्रसिद्ध भारत–ईरान समझौता कुद्रेमुख लौह .. के सम्बन्ध में 1974 में हस्ताक्षारित हुआ । 1979 के इस्लामी क्रांति का भारत ने स्वागत किया । अशोक मेहता के अगुआई में जनता पार्टी का समूह आयतुउल्लाह खुमैनी से मिलने गया । इसी प्रकार इन्दिरा गॉधी जो उस समय विपक्ष को नेता थीं एक दल भेजकर क्रान्ति का स्वागत किया गया था ।[2]

इसी के विपरीत पचास के दशक में भारत को काफी दुःख हुआ जब ईरान ने अमरीकी संरक्षण वाला बगदाद पैक्ट ज्वाइन किया । भारत ने इस प्रकार के समझौतों को अपनी स्वतंत्रता के विरूद्ध एवं उपनिवेशवाद की पुनः वापसी के रूप में देखा ।

शाही सत्ता की समाप्ति एवं इस्लामी क्रान्ति के बाद ईरान–पाकिस्तान सम्बन्ध तीन आधारों पर आधारित थे ।[3]

(1) वैचारिक समानता इस्लामी आधारों पर

(2) ईरान पाकिस्तान की पश्चिमी सीमाओं के लिये सुरक्षा की कड़ी के रूप में रहा ।

(3) पाकिस्तान ने अपने को ईरान एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच की कड़ी के रूप में देखा।

पाकिस्तान ने भारत-ईरान के बढ़ते हुये सम्बन्धों को पसन्द नहीं किया । शाह के काल में पाकिस्तान के मार्ग से रेल रोड का प्रयोग करते हुये व्यापार बढ़ाने का प्रस्ताव पाकिस्तान ने ठुकरा दिया।

1: Kalim Bahadur- Pakistan as a factor in India- Iran Relations- P.P. 119-24
2. वही
3. वही

जियाउलहक के कार्यकाल में पाकिस्तान ईरान को वैचारिक आधार पर करीब होने का अवसर मिला । ईरान-इराक युद्ध में पाकिस्तान ने तटस्थ रहते हुये ईरान का पक्ष लिया । 1989 में पाकिस्तान ईरान के बीच रक्षा मामलों को लेकर समझौता हुआ यहाँ तक बात कहीं जाने लगीं कि ईरान पाकिस्तान को मिलकर एक सामूहिक इस्लामिक सुरक्षा पंक्ति बनानी चाहिये ।[1] इसी प्रकार पाकिस्तानी सेनाध्यक्ष जनरल असलम बेग ने पाकिस्तान-ईरान अफगानिस्तान एवं टर्की के बीच एक सैनिक कराक का प्रस्ताव भी रखा था ।[2]

ईरान के इस्लामी गणराज्य ने कश्मीर मसले पर भारत-विरोधी रूख अपनाया[3] राष्ट्रपति रफसंजानी ने भारत की कड़े शब्दों में निन्दा की । ईरान ने भारत को प्रचुर मात्रा में तेल की आपूर्ति में भी शिथिलता दिखायी है।[4] इसी प्रकार ईरान ने भारतीय राजनयिकों एवं पत्रकारों को बीजा देने में भी कठिनाइयों पैदा की । ईरान ने विभिन्न विश्व मंचों पर कश्मीर मुद्दे को उठाने में पाकिस्तान का समर्थन भी किया । विशेषकर इस्लामी देशों के संगठन OIC के मंच से दोनों देशों ने कश्मीर मुद्दे को आगे बढ़ाने का कार्य किया जबकि सऊदी अरब सहित खाड़ी के अन्य देशों ने इस प्रकार के प्रस्तावों का विरोध किया।

अफगानिस्तान के मामले को लेकर गहराई तक जाये तो ईरान-पाकिस्तान हित परस्पर विरोधी है। पाकिस्तान ने पेशावर आधरित मुज़ाहिद्दिन का समर्थन किया जबकि ईरान ने श़ीआ हिज़्बे बहदत एवं हिज़बुल्लाह संगठनों का समर्थन किया है ।[5] ईरान ने कश्मीर के हिजबुल्लाह संगठनों का भी समर्थन किया है और कभी-कभी ईरानी मीडिया जो हिज़बुल्लाह की विचारधारा से प्रभावित है, ने भारत के मुसलानों को भारत सरकार के विरूद्ध विद्रोह करने की मांग भी की है।[6]

आज़र्बाइज़ान के क्षेत्र को लेकर ईरान-सोवियत रूस के विवाद में नेहरू ने ईरान का समर्थन किया जबकि रूस की तीव्र निन्दा से अपने को बचाया । भारत की स्वतंत्रता से पहले दिल्ली में 1946 में आयोजित प्रथम एशियाई सम्बन्ध सम्मेलन में ईरान भी शरीक़ हुआ था और उसने भारत के साथ मित्रता

1. द स्टेटसमैन (नई दिल्ली) 12 फरवरी 1990
2. टाइम्स आफ इण्डिया नई दिल्ली 3 अप्रैल 1990
3. वहीं
4. द हिन्दू (मद्रास) 3 जूलाई 1987
5. दि टाइम्स आफ इण्डिया नई दिल्ली 26 सितम्बर 1993

एवं सहयोग का हाथ बढ़ाया । 1948 में हवाई परिवहन समझौता हुआ । 1950 में शान्ति एवं मित्रता का समझौता हुआ ।[1] 1954 में वाणिज्य और नवपरिवहन से सम्बन्धित समझौता हुआ ।

भारत ने ईरान का समर्थन किया जब इसने अपनी तेल कम्पनी का राष्ट्रीकरण किया । भारत ने महाशक्तियों के साथ समझौते का विरोध किया । नेहरू की विदेश नीति में यह बात रही कि अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को हथियार दिये जाने का क्षेत्र की शान्ति भंग होने के नाम पर विरोध करते रहे ।

कश्मीर के मुद्दे को छोड़कर नेहरू का विचार था कि दोनों देशों ने MEDO (Middle Eastern Defence Organisation) या CENTO या Bagadad Pact की अन्य कारणों से सदस्यता ग्रहण की है। शाह ने 1956 में भारत की यात्रा की । 1959 में जवाहर लाल नेहरू ईरान के दौरे पर गये। इसी प्रकार नेहरू ने सुयेज मामले पर आंग्ल फ्रान्सीसी आक्रमण की तीव्र भतर्सना की जबकि ईरान ने इज्राइल की । इसी प्रकार पश्चिम एशिया में अमेरिकी एवं ब्रिटिश सेनाओं की आमद का नेहरू ने विरोद्ध किया था । ईरान ने कहा कि इससे पाकिस्तान, ईरान एवं टर्की के हितों की पूर्ति होगी । 1965 में पाकिस्तान का समर्थन करने पर ईरान से विरोद्ध जताया गया । ईरान ने विभिन्न तरीकों से पाकिस्तान की सहायता की थी ।

यद्यपि 1961, 63 एवं 1968 में आर्थिक सहयोग के लिये समझौते हुये परन्तु व्यापार की मात्रा कम रही । भारतीय निर्यात ईरान को 1965-66 में 48.5Million रूपये से बढ़कर 1966-67 में रू0 103.1 मिलयन हुआ । भारतीय निर्यातों में मुख्यतः चाय, काफी, जूट, मसाले थे जबकि ईरानी निर्यात में खनिज, तेल और सूखे मेवे । 1969 में संयुक्त भारत-ईरान आयोग निष्क्रिय ही रहा । 1968 में भारतीय पेट्रोलियम मंत्री अशोक मेहता, तथा वित्तमंत्री मोरार जी देसाई की ईरान यात्राओं का कोई खास नतीजा नहीं निकला । उसी वर्ष दोनों देशों के सेनाध्यक्षो ने भी परस्पर यात्रायें कीं ।

1969 में शाह की यात्रा के समय कुछ समझौते हुये तथा शाह ने भारत-पाकिस्तान को करीब करने की पहल भी की । करण सिंह ने 1970 में ईरान की यात्रा की और ईरानी सेनाध्यक्ष ने उसी वर्ष नई दिल्ली

---

1. सुषमा गुप्ता-पाकिस्तान एज ए फैक्टर इन इण्डो-ईरान रिलेसन्शस 1947-48 (S.Chand and Co. New Delhi-1986) P.P. 47-48

की यात्रा की । 1971 के युद्ध में ईरान के रवैये से भारत-ईरान सम्बन्ध खराब रहे । 1971 ई0 में ही भारत ने संयुक्त राज्य अमेरिका से कड़ा विरोध जताया जब उसने अगले पाँच वर्षों के लिये ईरान को व्यापक हथियारों की आपूर्ति का समझौता किया, क्योंकि भारत के विचार में उन्हें चोरी-छुपे पाकिस्तान के द्वारा प्रयोग किया जा सकता था ।[1] भारत ने ईरान-पाकिस्तान नौ-सेना के संयुक्त अभ्यास का भी कड़ा विरोध किया ।

सम्बन्धों में इतनी शिथिलता आ गयी थी कि जब श्रीमती गाँधी कनाडा जा रही थी तो ईरान के निमंत्रण के बावजूद उन्होंने वहाँ का दौरा नहीं किया । 1973 में स्वर्ण सिंह ईरान गये । अगले वर्ष श्रीमती गाँधी वहाँ गयीं । ईरान ने कुद्रेमुख परियोजना के लिये नरम ऋण योजना बनानी 15 वर्षों के बाद भारतीय प्रधानमंत्री की यह प्रथम यात्रा थीं । शाह भी 1974 में भारत आये और उन्होंने हिन्द महासागर समुदाय का विचार प्रस्तुत किया ।[2]

भारत ईरान सम्बन्ध अच्छी दिशा में अग्रसर थे कि ईरान में इस्लामी क्रान्ति आयीं । भारत प्रथम देशों में से एक था जिन्होंने इस्लामी क्रान्ति के पश्चात भारतीय दूत भेजा । 1983 में एक नवीन भारत ईरान संयुक्त आयोग का गठन हुआ । 1987 में ईरानी उद्योग मंत्री भारत यात्रा पर आये । ईरान-ईराक युद्ध के कारण सम्बन्ध आगे नहीं बढ़ सक और भारत युद्ध के क्षेत्र में बहुत फूंक कर कदम रखना पड़ा ।

ईरान ने अफगानिस्तान के संकट पर पाकिस्तान का समर्थन किया – भारत ने खाड़ी युद्ध में संयुक्त राष्ट्र युद्ध विराम प्रस्ताव का समर्थन किया ।

1988 में गोपी अरोरा ने तेहरान की यात्रा की । भारतियों के बीजा सम्बन्धी कुछ समस्याओं का निराकरण हुआ जब 1989 में आयतुल्लाह खुमैनी का देहान्त हुआ तो भारत ने तीन दिन के शोक की घोषणा की । 1990 के सितम्बर में भारतीय विदेश मंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने ईरान की यात्रा की और ईरान ने भारतीय वायुसेना को ईरानी अन्तरिक्ष से उड़ने की अनुमति प्रदान की ।

अक्टूबर 1990 में ईरान के पेट्रोलियम उपमंत्री के नेतृत्व में एक उच्चस्तरीय दल भारत की यात्रा पर

---

1. लोक सभा डीवेट्स नं0 17 अगस्त 16, 1973
2. हिन्दुस्तान टाइम्स 5 अक्टूबर 1974

आया और भारत के पेट्रोलियम मंत्रालय के साथ कई समझौते हुये । 1991 में रफसंजानी और भारतीय विदेश सचिव मुचकुन्द दूबे की वार्ता हुयी जिसमें ईरानी राष्ट्रपति ने और अधिक मात्रा में तेल आपूर्ति का आश्वासन दिया ।

सल्फर के बिक्री से सम्बन्धित समझौते पर हस्ताक्षर हुआ जिसके अनुसार भारत को 250,000 टन मिलना था । गैस पाइप लाइन परियोजना पर भी बात हुयी । भारत ने ईरान को 10 m w न्यू क्लीयर रीअक्टर बेचने को स्वीकार कर लिया था परन्तु अमेरिकी दबाव के कारण ऐसा सम्भव नही हुआ ।[1]

1992 में वेलायती इरानी विदेश मंत्री की दिल्ली यात्रा के दौरान कच्चे तेल के समझौते के साथ राजनीतिक मामलों पर भी बातचीत हुयी, परन्तु बाबरी मजिस्द के ढाये जाने पर सामूदायिक दंगो के परिपेक्ष्य में मुसलमानों के जान व माल के नुकसान पर ईरानी तीव्र प्रतिक्रिया के कारण बात आगे न बढ़ सकी ।[2]

1993 में भारतीय प्रधान मंत्री श्री पी.वी. नरसिंहभाराव ने ईरानी की सरकारी यात्रा की । बातचीत के दौरान ईरानी राष्ट्रपति ने भारत–ईरान–चीन परिषद बनाने का सुझाव रखा था परन्तु पाकिस्तान में इसका कड़ा विरोध हुआ ।[3]

दोनों देशों ने इस यात्रा के अवसर पर समर्थित आतंकवाद का विरोध किया । इसके अतिरिक्त आपसी आर्थिक सहयोग के मुद्दों पर भी बात हुयी ।

कुछ निष्कर्ष––

1. सुरक्षा से सम्बन्धित बहुत से भयात्मक दृष्टिकोणों से पाकिस्तान ईरान पश्चिमी सुरक्षा संघ में सम्मिलित हुये यद्यपि दोनो निर्गुट भी रहे ।
2. दानों देशों को इस संघ का सदस्य बनने से निःसन्देह अपनी सशस्त्र सेनाओं को मजबूत करने में मदद मिली । ईरान को इराक और दूसरे अरब राष्ट्रों के विरूद्ध पाकिस्तान को ईरानी बहुमूल्य समर्थन मिला । ईरान ने निरन्तर "कश्मीरियों के आत्म–निर्णय" तथा संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों

---

1. हिन्दुस्तान टाइम्स 19 सिम्बर 1993
2. वहीं 21 सितम्बर 1993
3. वहीं

के अनुसार जनमत संग्रह का समर्थन किया ।

3. 1970 के दशक में पाकिस्तान ने ईरान का समर्थन किया कि वह चीन के साथ सम्बन्ध सुधार सके। इसी तरह ईरान ने पाक–अफगान सम्बन्धों को अच्छा बनाने में मदद की । जिसके नतीजो में भुट्टो काबुल की यात्रा पर गये ।

4. ज़ियाउल हक के समय में ईरान ने सेनाध्यक्ष के इस्लामीकरण योजना को सहन किया तथा अफगान संकट के कारण अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को मुख्य देश घोषित कर व्यापक आर्थिक सैनिक सहयोग को भी नजर अन्दाज किया ।

5. पाकिस्तान ईरान सम्बन्धों का भारत–ईरान सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ा है परन्तु यह निर्धारक तत्व नही है । ईरान पाकिस्तान से करीब रहा है

6. भारत ईरान की तुलना में ईरानी शत्रुतापूर्ण गतिविधियों से छुब्ध होते हुये भी सहनशील रहा है । कारण ईरान से तेल की आपूर्ति तथा भारतीय श्रमिकों को ईरानी बाजारो में श्रम आदि रहे ।

1971 के युद्ध में पाकिस्तान की पराजय, बंगलादेश का उदय, तेल निर्यात से ईरान को व्यापक मुनाफा, 1973 के तेल हथियार से अरब एकता में वृद्धि और ईराक के साथ भारत की बढ़ती दोस्ती इत्यादि ने ईरानी शाह को भारत के साथ सम्बन्धों को पुनर्लोकन पर उभरा । नयी दिल्ली ने भी तेहरान के साथ मधुर सम्बन्धों की अहमियत को समझा । इन परिस्थितियों में श्रीमती गांधी ने अप्रैल 1974 में ईरान की यात्रा की और शाह ने अक्तूबर 1974 में दिल्ली की यात्रा की । शाह ने फिर फरवरी 1978 में भारत की यात्रा की जब मोरार जी देसाई (जनता पार्टी) भारत के प्रधानमंत्री थे । मोरार जी देसाई ने जून 1977 में ईरान की यात्रा की थी ।[1]

ईरान में इस्लामी क्रान्ति की घटनाओं को तत्कालीन विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'सकारात्मक' बताया था और आयतुल्लाह खुमैनी को "क्रान्ति का पितामह" कहा था । भारतीय संसद में बोलते हुये वाजपेयी ने कहा था– " हम लोग उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब हम ईरान का गुटनिर्पेक्ष

1. ए.के. पासा – पृ.पृ. 145–157, पार्श्वोद्धृत

आन्दोलन में पुनः स्वागत करेंगे ।'' उन्होंने यह भी कहा कि हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि ईरान अपनी विदेश नीति को स्वतंत्र रूप से निष्पादित करे ।

1992 में बाबरी मस्जिद के ढाये जाने के पश्चात इस्लामी जगत में भारत की निन्दा की गयी । परन्तु इन इस्लामी संगठन के देशों में ईरान को छोड़कर कहीं भी प्रदर्शनकारियों को आज्ञा नहीं दी गयी । ईरान ने पहले भारत सरकार से स्थिति को नियंत्रित करने का आग्रह किया फिर विरोध प्रकट करना शुरू कर दिया । ईरानी सरकार ने साथ ही भारत सरकार से उस जगह फिर से मस्जिद बनवाने, मुसलमानों की क्षतिग्रस्त आत्मा को सांत्वना देने आदि की बात की । आयतुल्लाह खमेनी का वक्तव्य विशेषकर बहुत घातक था जब उन्होने भारतीय मुसलमानों से बाबरी मस्जिद के विध्वंस को स्वीकार करने से मना किया। खमेनइ ने कहा कि ईरान एवं अन्य मुस्लिम राष्ट्रो का उत्तरदायित्व है कि भारत के करोड़ों मुसलामानों के प्रति भेदभाव पूर्ण रवैये के खिलाफ खड़े हो ।[1]

विदेशमंत्री अली अकबर वेलायती ने कहा कि बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने न केवल भारत के मुसलमानों की भावना को ढेस पहुचायी है बल्कि समस्त विश्व के मुसलमानों की भावना हताहत हुयी है भारतीय सुरक्षा बलो ने उस मस्जिद की हिफाजत नही की इस पर उन्होंने खेद व्यक्त किया । विदेश मंत्री ने आक्रमणकारियों के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करने तथा मुसलमानों को मस्जिद निर्माण का अधिकार सौपनें की बात कही । भारत सरकार के साथ सहयोग देकर मस्जिद निर्माण को आगे बढ़ाने का प्रस्ताव किया जिसे भारत सरकार ने अस्वीकार कर दिया ।

ईरान अपनी विदेश नीति में गुटनिपेक्षता को अपनाता है क्योंकि वह अधिकांश मुस्लिम जगत को जो कि तीसरी दुनिया का भाग है, पश्चिमी साम्राज्य से बचाने का प्रयास करता है । ईरानी नीति निर्माताओं पर स्पष्ट था कि क्षेत्र में एवं महाशक्तियों द्वारा उनकी क्रान्ति को सन्देह की नजर से देखा गया। ईरानियों ने ईरान–ईराक युद्ध को एक आरोपित युद्ध के रूप में देखा और हर ताकत से लड़ने का इरादा किया । युद्ध की समाप्ति तथा आयतुल्लाह खुमैनी की मृत्यु 1989 के पश्चात ईरानियों ने महसूस किया

---

1. A.K. Pasha-"Communal rivilism in India, its impacts on tens with west Asia and north Africas" in Muchuknd Dubey (ed.) Communal rivilism in India a study of external implicalias (New Delhi Har Anand Publications 1994) P.P. 54-88

कि दिन बदिन बिगड़ती हुयी आर्थिक दशा को भड़काऊ विदेश नीति से सही नहीं किया जा सकता और व्यापक स्तर पर सुधार एवं उदारीकरण किया गया, परन्तु दुनिया में चल रहे अलग-अलग देशों में इस्लामी आन्दोलन को समर्थन दिया ताकि अपने देश के उग्र इस्लामी आन्दोलन कर्ताओं का समर्थन प्राप्त किया जा सके तथा विश्व भर में इस्लामी देशों की जनता का भी समर्थन मिलता रहे इसी के साथ ईरानी विदेशी नीति निर्माताओं नें देखा कि खाड़ी के क्षेत्र मे बाहरी शक्तियां अपने कदम जमा रहीं है इसलिये 1990-91 के बाद से खासकर ईरान ने सऊदी अरब एवं खाड़ी के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध बड़ाने का प्रयास शुरू कर दिया ।[1]

श्रीधर के अनुसार ईरान ने बड़े पैमाने पर सोवियत रूस से 1980 के दशक में हथियार खरीदे थे और चूँकि भारत भी विश्व में सबसे बड़ा सोवियत हथियार क्रेता रहा है । इसलिये ईरान को भारत के निकट आने में ज्यादा लाभ होगा । पाकिस्तान ईरान को आगे बढ़ाने में सफल नही हो सकता क्योकि स्वयं पाकिस्तान आन्तरिक स्तर पर बहुत कमजोर है । रफसंजानी के राष्ट्रपति बनने के बाद से देखा जा रहा है कि भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने की प्रक्रिया तीव्र हो गयी है ।[2] ईरान को मध्य एशिया एवं अपने निकट के क्षेत्र में पैर जमाने के लिए चीन की भी आवश्यकता पड़ी लेकिन चीन से ज्यादा समर्थन जुटा पाना मुश्किल था । इसलिये नई दिल्ली की ओर ज्यादा निगाह डाली गयीं । 1993 में एक बड़ी शुरूआत उस समय हुयी जब भारतीय राष्ट्रपति डॉ0 शंकर दयाल शर्मा अपनी विदेश यात्रा के संदर्भ में थोड़ी देर के लिए तेहरान में रूके तो राष्ट्रपति रफसंजानी ने अपना व्यक्तिगत हेलीकाप्टर भेज कर भारतीय राष्ट्रपति को अपने महल में बुलाया इसका अच्छा प्रभाव पडा ।[3]

तेल की कीमतों में लगातार गिरावट के कारण भी ईरान को पश्चिमी प्रौद्योगिकी की तुलना में भारतीय प्रौद्यागिकीय सहायता सस्ती पड़ती है । इंजीनियर्स इण्डिया लिमिटेड तथा टाटा कांसलटैन्सी ने महत्वपूर्ण योगदान देकर ईरानी तेल सस्थानों को पुनर्जीवित किया है । अन्य देशों के विपरित कभी भी भारत ने ईरानी हथियार खरीद से आपत्ति नहीं जताई । ईरानी सुरक्षा के लिए इनकी जरूरत है भारत का

1. श्रीधर – "Factor leading to India, Iran, China proposal by Iran" incontemporay .... पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 112-13
2. वहीं पृ. 115 पार्श्वोद्धृत
3. वहीं पृ. 116

यह दृष्टिकोण रहा । ईरानी नीति निर्माताओं के सामने भी एक सशक्त भारत क्षेत्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिए आवश्यक है । सोवियत रूस के विघटन के बाद ईरान को अपनी जातिय वर्गीकरण के कारण अपनी अक्षमता का पता चल गया । सितम्बर 1993 में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हाराव की तेहरान यात्रा से इस मित्रता को और भी समर्थन मिला । प्रधानमंत्री की यात्रा के दौरान भारत ईरान ट्रान्जिर समझौता हुआ जिससे भारतीय मालों एवं सामग्री को मध्य एशिया के देशों में भेजने के लिये ईरान सहायता करेगा ।

पाकिस्तान को मान्यता देने वाले देशों में ईरान पहला देश था लियाकत अली खां लंदन से लौटते हुये 1949 ई0 में ईरान गये । ईरान के सम्राट ने 1950 में पाकिस्तान की यात्रा की । शाह का स्वागत करते हुये पाकिस्तानी नेताओं ने भारत को विस्तारवादी शक्ति तथा अपने को उस का शिकार बताया । इस अवसर पर गवर्नर जनरल ख्वाज़ा निज़ामुद्दीन ने कहा –

''पकिस्तान ने प्रारम्भ से ही मुस्लिम राष्ट्रों के बीच मैत्री पूर्ण सम्बन्ध को बढ़ाने का प्रयास किया है और हमें ईरान से सही उत्तर मिलता है जिसकी जनता के साथ शताब्दियों से हमारा सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आत्मीय सम्बन्ध है ।''

उसी वर्ष पाकिस्तान ने तेहरान में सर्वइस्लामी सम्मेलन में सम्मिलित हुआ । 1951 में जब ईरान ने Anglo- Iranian oil Company का राष्ट्रीकरण किया तो पाकिस्तान ने उसका समर्थन किया, किन्तु 1953 तक मुसद्दिक के नेतृत्व में ईरान भारत ही की तरह किसी गुट में सम्मिलित होने से इनकार करता रहा । स्वतंत्र विदेश नीति का यह युग बहुत ही थोड़े समय का रहा । 1953 में ही मुसद्दिक सरकार का तखता पलट दिया गया और शाह के शासन संभालते ही अमरीका से बड़ी मात्रा में सैनिक सहायता मिलनी शुरू हुयी तथा ईरान की विदेश नीति निष्पक्ष न रहकर अमेरिका की ओर झुक गयी । बग़दाद 1955 तथा वाशिगंटन के साथ विशेष संधि 1959 में की गयी ।[1]

पाकिस्तान भी यद्यपि भारत की तरह मुक्त विदेश नीति अपनाना चाहता था परन्तु उसकी आन्तरिक दशाओं ने उसे अमरिकी रक्षा घेरे की सदस्यता के लिये मजबूर किया । 1948 में जिन्नाह की

---

1. सविता पाण्डेय – ''पाकिस्तान–ईरान रिलेसन्श : इम्पैक्ट आन इण्डो–ईरान रिलेशन्स–पृ.पृ. 125–144

मृत्यु, लियाक़त अली खॉ की हत्या 1951, संविधान निर्यात्री सभा की अक्षमता कि 1953 तक संविधान का मसौदा तैयार न हो पाना, आर्थिक दुर्बलता इत्यादि कारण थे कि पाकिस्तान में 1954 में अमरीका से परस्पर सहयोग का समझौते किया उसी वर्ष सीटो (SEATO) दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन की सदस्यता ग्रहण की तथा 1955 में CENTO अर्थात बगदाद समझौते का सदस्य बना । इस प्रकार जनरल अयुब के शब्दों में पाकिस्तान 'एशिया में अमरीका का सबसे घनिष्ठ मित्र बन गया ।[1]

अमरीकी गुट की सदस्यता ग्रहण करने के पीछे कारण भारत को बताया गया । इस प्रकार ईरान एवं पाकिस्तान दोनों ने अपने–अपने हितों की दृष्टिकोण से अमरीकी संगठन आर्थिक एवं रक्षा लाभों के लिये ग्रहण किया था । अमरीका भी रूस के प्रभाव को घेराबन्दी करके रोकना चाहता था ।

1950–1995 तक लगातार पाकिस्तान का प्रयास रहा कि संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से जनमत संग्रह कश्मीर में कराया जाये इस प्रकार के पाकिस्तानी प्रयासों को हमेशा ही ईरान द्वारा समर्थन मिलता रहा।[2]

1958 में ईरान–पाकिस्तान के मध्य आपसी सहयोग का एक समझौता भी हुआ । सिकन्दर मिर्जा ने ईरान की यात्रा की जहॉ उनके द्वारा पाकिस्तान ईरान परिसंघ बनाने का प्रस्ताव रखा गया परन्तु उनके स्वदेश लौटने पर सैनिक शासन लागू कर दिया गया और उनका प्रस्ताव उधर में पड़ गया ।

ईरान एवं पाकिस्तान दोनों में धीरे–धीरे अमरिकी संघ से मोह भंग होने लगा । ईरान को तो इस बात का दुःख था कि अमेरीका से उसे अच्छे आधुनिक शस्त्र नहीं मिल रहे हैं जबकि 1962 में जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो अमरिक द्वारा भारत को सहायता किये जाने से पाकिस्तान अमरीका से नाराज़ हो गया । 1975 में लाहौर में आयोजित इस्लामी सम्मेलन में ईरान के शाह ने भाग नहीं लिया क्योंकि लिबिया के कर्नल गद्दफी भी इसमें सम्मिलित थे । कुछ समय के बाद ईरान–पाकिस्तान सम्बन्ध कुछ अच्छे हो गये । शाह ने पाकिस्तान को तेल की प्रचुर मात्रा आसान ऋण की किस्तों पर दी और पाकिस्तान ने भारतीय सामानों को Land Route के माध्यम से ईरान जाने की अनुमति दे दी । उसके बाद ही पाकिस्तान–ईरान के बीच एक पंचवर्षीय व्यापार समझौता भी हुआ ।

---

1. मुहम्मद अयूब खां – पाकिस्तान अमेरिकन एलायंस ' स्ट्रेसेज एण्ड सट्रेन्स' Foreign Affairs Vol.-10, No.-2 Jan. 1964 P. 165
2. जुल्फिकार अली भुट्टो– Foreign Police of Pakistan : A compendillm of speeches made in the National Assebly of Pakistan 1962-64 (Karachi 1964) P.P.

Lawrence Zaring का कहना है कि कि भुट्टों ने ईरान से प्रभावित होकर गुप्त पुलिस एवं गुप्त सूचनायें प्राप्त करने की सस्थाओं को स्थापित किया ।[1] पाकिस्तानी व्यापार की मात्रा भी बढ़ी तथा इस्लामी देशों से प्राप्त ऋणीय सहायता में ईरानी अंश 55% तक हो गया । भुट्टो को फॉसी दिये जाने का शाह ने कड़ा विरोध किया तथा 300 मिलियन डालर की सहायता को रोकने की धमकी दी ।

जैसा की पूर्व उद्यृत है ईरान अपनी विदेशनीति में गुट निरपेक्षता को अपनाता है क्योंकि वह अधिकांश मुस्लिम जगत को जो कि तीसरी दुनिया के भाग है पश्चिमी साम्राज्य से बचाने का प्रयास करता है । ईरानी नीति निर्माताओं में इस बात पर दृढ़ता थी कि क्षेत्र में महाशक्तियों के द्वारा उनकी क्रान्ति को सन्देह की नजर से देखा गया । ईरानियों ने ईरान-ईराक युद्ध को एक आरोपित युद्ध के रूप में देखा और हर ताकत से लड़ने का इरादा किया । युद्ध की समाप्ति तथा आयतुल्लाह खुमैनी की मृत्यु 1989 के पश्चात् ईरानियों ने महसूस किया कि दिन बदिन बिगड़ती हुई आर्थिक दशा को भड़काऊ निदेशनीति से सही नहीं किया जा सकता और व्यापक स्तर पर सुधार एवं उदारीकरण किया गया, परन्तु दुनिया में चल रहे इस्लाकि आन्दोलन को अलग-अलग देशों में ईरान ने समर्थन किया ताकि अपने देश के उग्र इस्लामिक आन्दोलन कर्ताओं का समर्थन प्राप्त किया जा सके तथा विश्व भर में इस्लामिक देशों की जनता का भी समर्थन मिलता रहे । इसी के साथ ईरानी विदेशनीति निर्माताओं ने देखा कि खाड़ी के क्षेत्र में बाहरी शक्तियॉ अपने कदम जमा रहीं है इसलिए 1990-91 के बाद में खास कर ईरान ने सउदी अरब और खाड़ी के अन्य देशों के साथ सम्बन्ध बढ़ाने का प्रयास करना शुरू कर दिया ।[2]

पूर्वोद्धत है कि - श्रीधर के अनुसार ईरान ने बड़े पैमाने पर सोवियत रूस से 1980 के दशक में हथियार खरीदे थे और चूंकि भारत भी विश्व में सोवियत हथियारों का सबसे बड़ा क्रेता रहा है इसलिए ईरान को भारत के निकट आने में ज्यादा लाभ होगा । पाकिस्तान ईरान को आगे बढ़ाने में सफल नहीं हो सकता । क्योंकि स्वयं पाकिस्तान आन्तरिक स्तर पर बहुत कमजोर है । रफसंजानी के राष्ट्रपति बनने के बाद देखा गया कि भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने की प्रक्रिया तेज हो गयी ।3

---

1. The subcontinent in world polities (Newyork praegav 1976)
2. श्रीधर - पृ.पृ. 112-113 पार्श्वोद्धृत
3. वहीं - पृ. 115
4. हिन्दुस्तान टाइम्स लखनऊ- 29 फरवरी 2000

भारत–ईरान सम्बन्धों के विवेचना में यह तथ्य भी पूर्वोद्धृत है कि –तेल की कीमतों में लगातार गिरावट के कारण भी ईरान को पश्चिमी प्रौद्योगिकी की तुलना में भारतीय प्रौद्योगिकी सहायता सस्ती पड़ती है । इंजीनियर्स इण्डिया लिमिटेड तथा टाटा कांसलटैन्सी ने महत्वपूर्ण योगदान देकर ईरानी तेल संस्थाओं को पुनर्जीवित किया है । अन्य देशों के विपरीत कभी भी भारत ने ईरानी हथियार खरीद से आपत्ति नहीं जताई । इस बिन्दु पर भारत का सर्वदा यह दृष्टिकोण रहा है कि ईरानी सुरक्षा के लिए इसकी जरूरत है । ईरानी नीति निर्माताओं के सामने भी एक सशक्त भारत क्षेत्रीय शान्ति एवं सुरक्षा के लिए आवश्यक है । सोवियत संघ के विघटन के बाद ईरान को अपनी जातीय वर्गीकरण के कारण अपनी अक्षमता का पता चल गया । सितम्बर 1993 में प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव की तेहरान यात्रा से इस मित्रता को और भी समर्थन मिला । प्रधानमंत्री की यात्रा के दौरान भारत ईरान ट्रान्जिट समझौता हुआ । जिससे भारतीय मालों एवं सामाग्री को मध्य एशिया के देशों में भेजने में ईरान सहायता करेगा । भारत–ईरान मैत्री की स्वाभाविक प्रक्रिया अनवरत विकास की तरफ अग्रसर रही परन्तु एशियाई राजनीति का चरित्र देखते हुए भारत–ईरान–चीन संगठन सम्भव नहीं हो सकता ।[1]

---

1. श्रीधर– पृ. 116 पार्श्वोद्धृत

अध्याय – 4 (ब)

भारत ईरान सम्बन्ध और कश्मीर समस्या

जम्मू और कश्मीर राज्य में मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग बहुसंख्यक है, उसका शासक एक हिन्दू महाराजा हरिसिंह था । उत्तर भारत के इस राज्य का कुल क्षेत्रफल 86024 वर्ग मील है और इसको "पृथ्वी का स्वर्ग" कहा जाता है, परन्तु दुर्भाग्य वस भारत विभाजन के बाद से कश्मीर, भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव और शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों का कारण रहा है । जुलाई 1947 में वाइसराय लार्ड माउण्टवेटेन चार दिन की कश्मीर यात्रा पर गये थे । उन्होंने महाराजा को चार बार शीघ्र निर्णय लेने को कहा ताकि कश्मीर का विलय समय रहते भारत या पाकिस्तान में हो जाय। महाराजा विलय को टालता रहा, क्योंकि वह कश्मीर को स्वतंत्र देश बनाना चाहता था । शायद इसी कारण, जब माउन्टवेटेन दिल्ली आ रहे थे, महाराजा बिमारी का बहाना बना करके उनको विदा करने नहीं आये । महाराजा हरिसिंह के इसी अनिर्णय के कारण हीं भारत और पाकिस्तान के बीच एक गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का जन्म हुआ।[1] भारत और ईरान के बीच सम्बन्ध प्रायः सामान्य रहे है । कश्मीर समस्या को लेकर दोनों देशों का सम्बन्ध खराब व तनावपूर्ण पूर्णतयः कभी नहीं रहा । ईरान के एक इस्लामिक गणराज्य होने के अनुप्रकाश में इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि दोनों देशों के सम्बन्ध संस्थापना में कश्मीर समस्या का कहीं न कहीं कुछ न कुछ असर अवश्य रहा है, पर उस रूप में और उस आकार और प्रभाव में नहीं रहा जिस रूप में भारत और अमेरिका के सम्बन्ध इस समस्या से प्रभावित व क्रियान्वित होते रहे । इसके पीछे ईरान और अमेरिका के कश्मीर पर दृष्टिकोण में समानता न होना प्रमुख कारण है । कश्मीर पर अमेरिकी दृष्टिकोण को अमेरिकी प्रशासन के एक प्रवक्ता के इस बयान से समझा जा सकता है कि वाशिंगटन

---

1. वी.एन.खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा-भारत की विदेश नीति द्वितीय संस्करण 2000,पृ0-89
- विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, दिल्ली ।

कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग नहीं मानता या यह कि कश्मीर का भारत में विलय विवादस्पद है । दिसम्बर 1947 में भारत कश्मीर विवाद संयुक्त राष्ट्र संघ के समाधान के लिए प्रस्तुत किया तो अमेरिका ने भारत के विरूद्ध पाकिस्तान के पक्ष का समर्थन किया । प्रारम्भ में अमेरिकी प्रतिनिधि ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि–कश्मीर का भारत में विलय पूर्ण और विधिवत् है, परन्तु वाद में अमेरिका सहित पश्चिमी देशों ने सुरक्षा परिषद में भारत विरोधी प्रस्ताव पारित कराने का प्रयत्न किया ।[1] जबकि ईरान का कश्मीर पर ऐसा दृष्टिकोण कभी नहीं रहा, न तो शाह के काल में और न ही इस्लामिक क्रान्ति के वाद के काल मे ।

कश्मीर एवं भावोत्तेजक मुद्दा है, जिसे पाकिस्तान धर्म के नाम पर कभी भी त्यागना नहीं चाहेगा।[2] स्वतन्त्रता के बाद से ही कश्मीर भारतीय विदेश नीति की दो मुख्य चुनौतियों में से एक रहा है । दूसरी चुनौती चीन के साथ सीमा विवाद है । कश्मीर समस्या की जड़ विभाजन समझौते में निहित रही है, जो भारत पर परिस्थितियों द्वारा थोपा गया, क्योंकि इन परिस्थितियों पर भारत का कदाचित नहीं के बराबर नियंत्रण था । यह किसी से छिपा नहीं है कि जम्मू और कश्मीर को लेकर 1948, 1965, 1971 ई0 में तीन बड़ी लड़ाईया भारत और पाकिस्तान के बीच हो चुकी है । जम्मू और कश्मीर में जिसे वास्तविक नियंत्रण रेखा कहते है, उस पर दोनों पक्षों की ओर से लगातार गोलावारी होती रहती है ।[3] समस्या के मुख्य घटक है– पाकिस्तान द्वारा दो राष्ट्रो के सिद्धान्त पर बल और भारत द्वारा इसे निरन्तर मानने से इनकार करना । पाकिस्तान द्वारा कश्मीर के जनमानस के आत्मनिर्णय के अधिकार पर बल देना और भारत द्वारा इसे इसरूप में मानने से इन्कार करना । पाकिस्तान द्वारा संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में निष्पक्ष प्राधिकारी के निरीक्षण में कश्मीर में जनमत संग्रह की माँग और भारत द्वारा इसे अपनी सम्प्रभुता का हनन मानते हुए इसे मानने से इन्कार करना । पाकिस्तान जो पश्चिमी राष्ट्रों के तत्वाधान में निर्मित सैन्य संगठनों का सदस्य रहा है, कश्मीर समस्या का समाधान संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से चाहता है । जबकि गुटनिर्पेक्ष भारत अपने पूर्वानुभवो के परिप्रेक्ष्य में संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद पर भरोसा करने को तैयार नहीं है ।

1. वी.एल. फडिया– अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पृ.347 साहित्य भवन पब्लिकेशन्स 1999 आगरा ।
2. वी.एम.जैन– प्रमुख देशों की विदेश नीतियाँ पृ.–315 द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर ।
3. विजय नारायण –जम्मू कश्मीर समस्या और पाकिस्तानी दृष्टिकोण, 10 जुलाई ई02001 हिन्दुस्तान लखनऊ

पाकिस्तान के लगभग 50,000 सैनिको ने 21 अक्टूबर 1947 को जम्मू और कश्मीर राज्य पर आक्रमण कर दिया । 27 अक्टूबर 1947 को कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने भारत के साथ विलय समझौते पर हस्ताक्षर किया । इस प्रकार जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न बन गया । जनवरी 1948 को भारत ने कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद में उठाया । परिषद ने सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया कि भारत और पाकिस्तान कश्मीर में स्थिति को सुधारे । सुरक्षा परिषद ने अगस्त 1948 में अपने प्रस्ताव में जनमत संग्रह (Plecbiscite) करवाने की बात कहीं, परन्तु इसके लिए मुख्य शर्त थी कि पाकिस्तान आधिकृत कश्मीर को खाली करेगा। जिसका पालन पाकिस्तान ने आज तक नहीं किया ।[1] दोनों देशों के खराब सम्बन्धों का एक प्रमुख कारण कश्मीर समस्या ही रहीं है । ईरान का राजनयिक सव्यवहार इस मुद्दे पर अत्यन्त सतर्कतापूर्ण रहा है । ईरान अगर पाकिस्तान के समर्थन में नहीं कहा जा सकता जो भारत के विरोध में भी नहीं कहा जा सकता । पूर्ण सत्य तो यह है कि अगर इस विषय पर बोलना राजनयिक मजबूरी न हो तो ईरान की सरकारे इस समस्या पर अपनी राय जाहिर करने से सदा कतराती रहीं है । फिर भी जब बोलना अनिवार्य हो गया है तो ईरान ने सदा इस विषय में सत्य ही बोला है । चाहे व किसी भारतीय नेता के ईरान का या किसी ईरानी नेता के भारत भ्रमण का मौका रहा हो या कोई सम्मेलन या आयोजन का अवसर रहा हो ।[2] कश्मीर पर पाकिस्तानी नजरिये की आलोचना ईरान द्वारा कभी–कभी अवश्य की गयी है पर इस पर दोनों देशों (ईरान व पाकिस्तान) के सम्बन्धों, दोनों देशों के इस्लामिक राष्ट्र होने सम्बन्धी तथ्यों का असर अवश्य देखा जा सकता है । ईरानी आलोचनाओं का स्वर उतना तीव्र व स्वाभाविक नहीं रहा है जितना अन्य एशियायी या अफ्रीकी देशों की प्रतिक्रियों का स्वर रहा है । जम्मू और कश्मीर में पाकिस्तान का झगड़ा क्या है ? इसके दो पहलू है पहला भौगोलिक और दूसरा जनता से सम्बन्धित । भौगोलिक विवाद इसलिए पैदा हुआ क्योंकि महाराजा हरि सिंह ने 26/27 अक्टूबर 1947 को भारत में विलय के लिए जिस सन्धि पर हस्ताक्षर किए थे उसे पाकिस्तान ने मानने से इन्कार कर दिया । दूसरी बात मानवीय समस्याओं से जुड़ी है । 1947 में विभाजन के समय उपमहाद्वीप के लोगों को भारत और

1. वी.एम. जैन, पार्श्वोद्धृत पृ.–284
2. श्रीधर और सुरेश डुग्गर – (अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के विश्लेषक) आलेख हिन्दुस्तान, लखनऊ ।

पाकिस्तान में से एक को चुनने का अधिकार दिया गया । जम्मू कश्मीर प्रांत में सात धार्मिक जातीय समूह है जिनमें हिन्दू, मुस्लिम, सिख, बौध और इसाई शामिल है । पाक संचालित उग्रवाद के कारण इनमें ज्यादातर पलायानोपरान्त शरणार्थी शिविरो में रह रहे है । हिंसा से भी पाक जम्मू के बहुलवादी स्वरूप को नहीं बदल पाया है ।[1] जम्मू और कश्मीर की समस्या विगत 50 वर्षों से अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर उठाया जाने वाला विषय रहा है, इस वास्तविकता से न तो कतराया जा सकता है और न ही इसे छिपाया जा सकता है । जम्मू और कश्मीर मामले में भारतीय कूटनीति हमेशा प्रतिरक्षात्मक रही है । भारत के राजनेता और भारत के कूटनीतिज्ञ विगत 50 वर्षों से लगातार इसी कोशिश में रहते है कि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर जम्मू और कश्मीर समस्या की चर्चा तक न हो ।[2]

कुशल भारतीय राजनय की सफलता का परिणाम अब तक यही रहा है कि इस्लामिक राष्ट्रों के सम्मेलनों में भी कश्मीर पर भारतीय पक्ष का सर्मथन अन्य इस्लामिक राष्ट्रों के साथ ईरान द्वारा भी कभी–कभी किया गया है । अभी हाल के इस्लामिक राष्ट्रों के सम्मेलन में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित कश्मीरी आतंकवादी की निन्दा तथा भारत द्वारा संयमपूर्वक उसका सामना करने के लिए भारत की प्रसशां की गयीं । इसमें ईरानी स्वर से भारत ईरान सम्बन्धों की दीर्घकलिक सामाजिक राजनयिक एवं सास्कृतिक परम्परा का सहज ही अनुमान लगया जा सकता है ।[3]

जम्मू एवं कश्मीर की समस्या इतनी उलझी हुई है कि पचास वर्ष के लम्बे समय में भी उसका हल नहीं निकल सका है । वर्नर वेली ने कहा था कि दोनो राज्यों का आधार ही संघर्ष में निहित है । के0रमण पिल्ले के अनुसार–भारत के लिए, जोकि धर्म निरपेक्ष्य लोकतांत्रिक राज्य में विश्वास करता है, कश्मीर इस बात का महत्वपूर्ण प्रदर्शन है कि हिन्दू और मुसलमान एक साथ शान्ति पूर्वक रह सकते है, दूसरी ओर पाकिस्तान जोकि इस्लामिक गणराज्य होने का दावा करता है, उसके लिए कश्मीर को प्राप्त करना इस लिए आवश्यक है क्योंकि उस राज्य में मुसलमान बहुसंख्यक है और पाकिस्तान मुसलमानों के अलग राष्ट्र होने में विश्वास करता है । भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए ही कश्मीर प्रतिष्ठा का एक प्रश्न बन गया

1. श्रीधर और सुरेश डुग्गर–(अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के विश्लेषक) आलेख हिन्दुस्तान लखनऊ
2. विजय नारायण – पार्श्वोद्धृत
3. राष्ट्रीय सहारा– लखनऊ आलेख नवम्बर 2000

है ।[1] यह सच्चाई है कि पाकिस्तान ने आतंकवाद के बल पर भारत को परेशान कर रखा है। इस तथ्य को इस्लामिक गणराज्य ईरान भी स्वीकार करता है । पाकिस्तान अपनी कश्मीर सम्बन्धी विध्वन्सक कार्यवाही को इस्लामिक जेहाद का रंग देने के लिए पचपन देशों के इस्लामिक संगठन (OIC) के मंच का इस्तेमाल करने में भी नहीं चूका है, पर वहाँ भी ईरान सहित अन्य सदस्यों की मुखालफत का ही सामना करना पड़ा है क्योंकि यह तथ्य कमोवेश इस्लामिक संगठन के सदस्यों के संज्ञान में है कि–1947 में भारत की आजादी के साथ ही आजाद पाकिस्तान का जन्म हुआ । एक तरह से इस राष्ट्र का जन्म ही नकारात्मक कारकों के आधार पर हुआ है ।[2] पाकिस्तानी सत्ता प्रतिष्ठान के दो चेहरे है । एक मुँह से वह भारतीय इलाके में अतिक्रमण को सही ठहराता है और दूसरे मुँह से वह शान्ति और विकास की बात करता है । जब भारत एक धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र के रूप में जन्म ले रहा था, पाकिस्तान धर्म के आधार पर एक राष्ट्र बनने की मिशाल पेश कर रहा था । जन्म के साथ ही पाकिस्तान की बुनियाद पर गहरी चोट पड़ी । वह एक इस्लामिक राष्ट्र था और उसे उम्मीद थी कि इस वजह से वह तमाम इस्लामिक राष्ट्रों का झण्डावरदार होगा तमाम मुसलमान उसे ही समर्थन देगें । अपने इसी आक्लन के आधार पर ही उसने 1948 में भारत के खिलाफ जंग छेड़ी । लेकिन कश्मीर का समर्थन उसे नहीं मिला । शेख अब्दुल्ला भारत के ही साथ रहे। पाकिस्तान की इस्लामिक राष्ट्रीयता के आधार को यह पहला झटका था । दूसरा झटका उसे 1971 में लगा जब बंग्लादेश उससे अलग हो गया । इस घटना ने भी इस्लामिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को गलत साबित कर दिया । भारत में आज भी 14 करोड़ मुसलमान रहते है । यह आवादी उस पाकिस्तान की मुस्लिम आबादी से बड़ी है जिसकी हिफाजत के नाम पर वह मुल्क बना ।[3]

दूसरी ओर यह वास्तविकता भी ईरान के संज्ञान में है कि भारत एक विशाल लोकतंत्र एक जटिल लोकतंत्र है । दुनिया की आबादी के छठे हिस्से को अपनी भौगोलिक सीमाओं में समेटे यह लोकतंत्र मनुष्य जाति की अनेकानेक धार्मिकताओ, सामाजिक व्यवस्थाओं, संस्कृतियों और भाषा व्यवहारो का प्रतिनिधित्व करता है ।[4] जम्मू और कश्मीर की समस्या की चर्चा एक लम्बे अर्से से सुरक्षा परिषद में नहीं हो रही है,

1. वी.एन.खन्ना, लिपाक्षी अरोडा– पार्श्वोद्धृत पृ.पृ.–94–95
2. प्रो0 कलीम बहादुर – पाकिस्तानी मामलों के विशेषज्ञ, राष्ट्रीय सहारा दैनिक 16 मार्च 2000
3. कोमोडोर सी उदय भाष्कर–नवभारत टाइम्स 27 जून 1999
4. संपादकीय आलेख–राष्ट्रीय सहारा लखनऊ 20.03.2000

वरना, जब पचास और साठ के दसक में चर्चा होती थीं, तब भारत को परेशानी का सामना करना पड़ता था और अक्सर ही सोवियत संघ का वीटो ही भारत को बचा देने का काम करता था । 1971 में हुए शिमला समझौते ने ही भारत को सुरक्षा परिषद की परेशानी से तो उबारा, लेकिन अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों से इस समस्या की चर्चा को हम नहीं रोक पाये । संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा के हर भाषण में पाकिस्तानी प्रतिनिधि द्वारा इस समस्या की चर्चा की जाती है । हर अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत और पाकिस्तान के बीच इस समस्या की चर्चा क्रमशः रोकवाने और करवाने की होड सी लगी रहती है । 1971 में भारत और पाकिस्तान के बीच शिमला समझौते के अन्तर्गत जम्मू और कश्मीर की समस्या सहित अन्य सभी समस्याओं पर द्विपक्षीय वार्ता का प्रावधान है । यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में जम्मू और कश्मीर समस्या को भारत ले गया था ना कि पाकिस्तान । संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने प्रस्तावों के माध्यम से पाकिस्तान से अपनी सेना हटाने और उसके वाद जनमत गणना कराने की बात कही थी, न तो पाकिस्तान ने अपनी सेना हटाई और न ही जनमत गणना हुई ।[1] कश्मीर समस्या को लेकर शान्ति के मकशद से भारत और पाकिस्तान के बीच लगभग तीस समझौते हुए, लेकिन उसमें से मात्र एक नदी जल बटवारा (1960) पर ही प्रभावी तरीके से अमल हो रहा है । इसका पालन भी पाकिस्तान ने सही भावना और पूरी इमानदारी के साथ किया, क्योंकि वहा के समृद्ध लोगों की जमीन की खेती के लिए पानी भारत की नदियों से मिलता है । अन्य मसलों व समझौतो को पाकिस्तान ने इतनी संजीदगी के साथ नहीं लिया। 1947-48 में दोनों ने संयुक्त राष्ट्र युद्ध विराम प्रस्ताव को स्वीकारा पाकिस्तान ने अधिकृत कश्मीर से अपनी सेना नहीं हटाई । प्रस्ताव की मंशा के अनुरूप जून 1947 की स्थिति नहीं बहाल की। इसी कारण जनमत संग्रह नहीं हुआ । दूसरा मामला आपरेशन जिब्राल्टर था यह कूटनीतिक नाम पाकिस्तान ने 1965 में जम्मू कश्मीर पर कब्जे के लिए किए गये हमले को दिया था । जिसकी परिणति ताशकद घोषणा में हुई । इसके छः साल बाद 1971 के तीसरे युद्ध का समापन जुलाई 1972 के शिमला समझौते के रूप में हुआ । जिसमें सभी विवाद शान्तिपूर्ण और द्विपक्षीय तरीके से सुलझाने पर सहमति

---

1. विजय नारायण – पार्श्वोद्धृत 10 जुलाई 2001 हिन्दुस्तान

व्यक्त की गयी । पाकिस्तान की इन समझौते के प्रति उदासीनता के कारण ही शिमला समझौता का पुनः समर्थन 1999 में लाहौर घोषणा के रूप में करना पड़ा फिर भी पाकिस्तानी कारगुजारियों से ही कारण भारत को करगिल युद्ध भी लड़ना पड़ा ।[1] कश्मीर दोनों देशों के लिए एक संवेदनशील मामला है लेकिन जिस तरह से अमेरिका उसमें मध्यस्थ की भूमिका के लिए माहौल तैयार कर रहा है वह भारत के हितों के विरूद्ध है । कश्मीर पर अमेरिका के इसी दृष्टिकोण के कारण ईरानी सोच पाकिस्तान की अपेक्षा भारत के ज्यादा नजदीक है । ईरान और अमेरिका के सम्बन्धों को ईरान के बारे में अमेरिकी अवधारण से समझा जा सकता है । उसकी निगाह में ईरान बादमाश स्टेट और दुष्टता की धुरी है ।[2] ईरानी सोच कश्मीर समस्या पर अमेरिकी अवधारणा के प्रतिकूल है परन्तु कश्मीर पर ईरानी प्रतिक्रिया भारत और पाकिस्तान के साथ उसके द्विपक्षीय सम्बन्धों से ज्यादा आच्छादित है अपेक्षाकृत अमेरिकी नजरिये के विरोध के, क्योंकि एक स्वतन्त्र राष्ट्र के वैदेशिक सम्बन्ध विभिन्न कारकों द्वारा निर्देशित होता है, जिनमें आर्थिक आवश्यकता, राजनीतिक विचाराधारा, क्षेत्रीय एवं वैश्विक राजनीतिक प्रणाली, जिससे वह देश संचालित होता है भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अनुभव आदि ।[3]

कश्मीर पर अमेरिकी नीति और उस पर ईरानी प्रतिक्रिया को आसानी से तभी समझा जा सकता है जब इन दो राष्ट्रो की एक दूसरे के प्रति आपसी सोच को समानान्तर सामाने रखकर देखा जाय । ईरानियों की सोच में अमेरिका की छवि एक शैतान राष्ट्र की है । ईरान में मार्च के प्रथम सप्ताह में इस्लामिक गणतन्त्र की स्थापना के उपलक्ष्य में आयोजन हुआ करते है। गणतन्त्र की बरसी पर तेहरान के इमाम हुसैन चौराहे पर हजारों औरत–मर्द हाथों में फूलों के अलंकरण लिए इकट्ठे होते है भाषणवाजी होती है, अमेरिका मुर्दावाद के नारे लगते है । मस्जिदों में नमाजों के बाद भी ऐसे ही नारे की गूंज आसमान में गूजती है ।[4] दूसरी और अमेरिकी नजर में ईरान भी बदमास राष्ट्रों की पहली पंक्ति के देशों में से एक है 1979 की क्रान्ति और राजतन्त्र के अन्त के पूर्व अमेरिका ने ईरान को दस लाख डालर मूल्य के हथियार बेचे । मक्सद था अपने हितों की रक्षा के लिए खाड़ी क्षेत्र में स्तम्भ की तलाश, पर 1979 की क्रान्ति में

1. श्रीधर व सुरेश डुग्गर– पार्श्वोद्धृत
2. पॉले केनेडी सम्पादक– द [illegible] स्टेट
3. नसरी, सगाफी, अमेरी– ईरान की विदेश नीति के तत्व

यह स्तम्भ गिर ही नहीं पड़ा, अमेरिका को काफी अपमानित भी होना पड़ा । तेहरान में अमेरिका दूतावास पर ईरानियों ने कब्जा कर लिया दूतावास कर्मियों को बन्धक बना लिया अमेरिका के लाख प्रयत्न के बावजूद बहुत दिनों तक ये बन्धक नहीं छोड़े गये ।[1] दूसरा पहलू यह है कि कश्मीर समस्या के प्रयोजक पाकिस्तान के प्रति अमेरिका का व्यवहार प्रायः संरक्षक व समर्थक का ही रहा है पाकिस्तान अमेरिका का पुराना और विश्वास हित केन्द्र है ।[2] कश्मीर के प्रश्न पर शुरू से अब तक संयुक्त राज्य अमेरिका ने पाकिस्तान का समर्थन किया है । अमेरिकी नीति के कारण ही कश्मीर के प्रश्न का सन्तोषजनक समाधान अभी तक नहीं हो सका ।[3] जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पाकिस्तान भारत को अपना सबसे प्रबल शत्रु मानता रहा है । वस्तुतः पाकिस्तान के शासकों और भारत के शासक वर्ग में पुरानी सैद्धान्तिक शत्रुता चली आ रही थी । भारत के स्वाधीनता संग्राम में ये एक दूसरे के विरोधी थे और दो राष्ट्रों के सिद्धान्तों को लेकर उनमें निरन्तर उग्र मतभेद रहे थे, उन्हें यह भी मालुम था कि भारत के नेताओं ने इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया है । अतः उनकी पुरानी विरोधी भावना मरी नहीं और वे भारत की हर बात का विरोध करने और उसे अपना शत्रु मानने पर तुले हुए थे । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस मतभेद ने और भी उग्ररूप घारण कर लिया । पाकिस्तान का जन्म धर्म के आधार पर हुआ था अतएवं भारत और पाकिस्तान के बीच मौलिक मतभेद है । यह मध्यकालीन धर्मान्धता और आधुनिक धर्म निरपेक्षता समाजवाद और सैनिक तानाशाही का मतभेद था । अतएवं यह मानना भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर के प्रश्न को लेकर झगड़ा है गलत होगा । वास्तविकता यह है कि यदि कश्मीर की समस्या न होती तो इस तरह की किसी दूसरी समस्या को खड़ा करना पड़ता। बात यह है कि पाकिस्तान को अपना पड़ोसी भारत फूटी ऑखों नहीं भाता ।[4] इसके अतिरिक्त पाकिस्तान की आन्तरिक राजनीति भी कश्मीर के प्रश्न का तत्व है । देश की जनता का ध्यान आन्तरिक व्यवस्था और समस्याओं से हटाने के लिए एक सरल उपाय यह होता है कि कोई विदेशी दुश्मन पैदा कर दिया जाय । जनसाधारण को विदेशी दुश्मन द्वारा उत्पन्न खतरे की बात आसानी से समझ में आती है । इसके फलस्वरूप देश में अस्थाई तौर पर एकता

---

1. डी.एन.वर्मा – पार्श्वोद्धृत पृ. 184
2. प्रो0 कलीम बहादुर–राष्ट्रीय सहारा लखनऊ, 16 मार्च, 2000
3. डी.एन.वर्मा – पार्श्वोद्धृत पृ. 307
4. वही–पार्श्वोद्धृत पृ0 374

भी स्थापित की जा सकती है । इस भूमिका के लिए पाकिस्तान ने भारत को चुना और पाकिस्तान की विदेशनीति का मुख्य उद्देश्य पाकिस्तानियों के दिल–दिमाग में भारत के प्रति घृणा और क्रोध की आग जलाना था। इस एक लक्ष्य के समक्ष पाकिस्तान अन्य बातों को महत्व नहीं देता । इस हालात में यदि कश्मीर का प्रश्न नहीं रहता तो पैदा किया जाता । पाकिस्तान ने विभिन्न देशों के साथ जो सन्धियाँ की वे वस्तुतः पश्चिमी देशों अथवा सम्बन्धित देशों से सहानुभूति रखने के कारण नहीं, बल्कि अपने हितों की रक्षा के लिए की गयी थीं ।[1] पाकिस्तान की विदेशनीति का इतिहास शुरू से ऐसा रहा है कि भारत को नीचा दिखाने और कश्मीर को हड़पने के लिए साम्यवाद के विरोध के नाम पर उसने पहले पश्चिमी राष्ट्रों का साथ दिया । जब उसे कोई लाभ नहीं हुआ तो उसने चीन के साथ गठबन्धन किया, लेकिन चीन की मैत्री से भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ, पाकिस्तान एक दूसरे प्रयोग में संलग्न हुआ व सोवियत संघ की ओर झूका ।[2] पाकिस्तानी राजनय की इस पैतरेवाजी में ईरान सरकार की सहानुभूति भारत की ही पक्षधर रही है ।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ईरान के अपने सम्बन्ध भी पाकिस्तान के साथ है दोनों देशों का आपसी हित भी एक दूसरे के साथ जुड़ा है पर उस रूप में नहीं जैसा भारत के साथ है । कश्मीर पर अमेरिकी दृष्टिकोण का प्रभाव भी ईरानी नीति के निर्धारण में एक प्रभावी तत्व रहा है । वैसे तो फौरी तौर पर इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ईरान एवं पाकिस्तान दोनों इस्लामिक राष्ट्र है साथ ही कश्मीर समस्या पर पाकिस्तान का रूख इस्लामिक जेहाद प्रचारित करना रहा है । पाक अपने इस मकसद में कभी भी सफल नहीं रहा । इस्लामिक राष्ट्रो के समर्थन की बात हीं दूर अमेरिका भी हाल के आतंकी हमलों की मार झेलने के बाद पाक को समर्थन देने के बजाय उसे चेतावनी ही देता नजर आने लगा है । ईरान से कश्मीर मुद्दे पर भारतीय नीति का समर्थक होना दीर्घकालिक सामान्य मधुर सम्बन्धों की उपज और अमेरिका विरोध की नीति जन्य मजबूरी है ।

कश्मीर की समस्या भारत और पाकिस्तान के बीच एक ऐसे ज्वालामुखी की तरह है, जो

---

1. Peter Calvocorssi- World Politics since 1945 P.P. 295, 97 5th edition singapoure 1987
2. डी.एन.वर्मा– पार्श्वोद्धृत पृ. 376

समय–समय पर लावा उगलती रहती है। अलाय माईकल के शब्दों में –'कश्मीर समस्या अनिवार्यतः भूमि या पानी की समस्या नहीं, यह लोगों और प्रतिष्ठा की समस्या है।'' कश्मीर समस्या को लेकर दोनों देशों के बीच छिड़ी पहली जंग का समाधान संयुक्त राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप के बाद एक लम्बी वार्ता के बाद 1 जनवरी 1949 को युद्ध विराम पर सहमति के रूप में हुआ। युद्ध विराम रेखा निर्धारित हो जाने पर पाकिस्तान के हाथ में कश्मीर का 32,000 वर्गमील क्षेत्रफल रह गया। इसकी जनसंख्या 7लाख थी। पाकिस्तान ने इस क्षेत्र को आजाद कश्मीर कहा। युद्ध विराम रेखा के इस पार भारत के अधिकार में 53,000 वर्गमील क्षेत्रफल था, जिसकी जनसंख्या 33 लाख थी।[1]

वस्तुतः भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर तनाव का मुख्य कारण रहा है। 1965 के भारत और पाकिस्तान युद्ध में ईरान ने पाकिस्तान को नैतिक एवं भौतिक समर्थन दिया। ईरानी विदेश मंत्रालय ने इसे भारतीय सेनाओं द्वारा आक्रमण बताया। संयुक्त राष्ट्रमहासभा में ईरानी प्रतिनिधि ने कश्मीर समस्या के निवारण के लिए आत्मनिर्णय की बात कही। ईरान ने छोटे हथियारों, गोला बारूद और नौसेना के क्षेत्र में पाकिस्तान का समर्थन किया, और पाकिस्तान को दो लाख टन तेल का निर्यात किया। भारत–पाकिस्तान युद्ध 1971 के समय भी ईरान ने पाकिस्तान का समर्थन किया।[2] युद्ध के पूर्व ईरान ने F-5 तथा F-86 विमान, हेलीकाप्टर तथा बन्दूके भी पाकिस्तान को दी। युद्ध के समय में ईरान ने भारतीय सेनाओं की पाकिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की निन्दा की। ईरानी विदेशी मंत्रालय ने संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा में विनाशक युद्ध के विराम की बात कही बाद में पाकिस्तानी प्रधान मंत्री भुट्टो ने स्वीकार किया कि युद्ध के समय में पाकिस्तान के सभी नागरिक विमान ईरान में सुरक्षित स्थानों पर भेज दिये गये थे, और ईरान ने विभिन्न तरीको से पाकिस्तान की नैतिक एवं भौतिक सहायता की।[3] ईरान ने शिमला समझौते का स्वागत किया, लेकिन भुट्टो को समझौते का सारा श्रेय दिया। ईरान ने 50 हजार डालर पाकिस्तान को राहत कार्य हेतु सहायता भी की। आगे के वर्षों में ईरान पाकिस्तान सम्बन्ध उतार–चढ़ाव के दौर से गुजरते रहे। पाकिस्तान ने ईरान को गेहूँ, चावाल एवं अन्य खाद्य पदार्थ

1. वी.एल. फडिया– पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 363–64
2. G.W. Chaudhari- The last days of Uniated Pakistan P. 69 London 1947
3. सविता पाण्डेय–पाकिस्तान–ईरान रिलेशन्स : इम्पैक्ट इन्डो–ईरान रिलेशन्स– ग्रिजेश पन्त एवं अन्य (सम्पादक)– कन्टेम्प्रेरी ईरान एण्ड एमरजिंग इण्डो ईरानी रिलेशन्स पृ. 129 (J.N.U. -1994)

तथा निर्माण की वस्तुएं निर्यात करने का समझौता किया । जब कि ईरान ने पाकिस्तान को बस, ट्रक, ट्रैक्टर एवं अन्य उपकरण भेजने की सहमति जताई । ईरान ने व्यापक स्तर पर पाकिस्तान को तेल की आपूर्ति करने की तथा दीर्घकालिक ऋण की भी व्यवस्था की। यहाँ यह बात गौरतलब है कि 1971 के भारत–पाक युद्ध के समय जोर्डन, तुर्की और ईरान ने पाकिस्तान की मदद् किसी इस्लामिक गठजोड़ के चक्कर में नहीं की थी, बल्कि अमेरिका ने इन देशों को ऐसा करने का निर्देश किया था ।[1]

अमेरिका और ईरान के आपसी सम्बन्धों का सीधा असर ईरान की कश्मीर समस्या पर अपनायी गयी नीतियों पर भी पड़ता रहा है । 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के पूर्व ईरान का शाहकालिक प्रशासन तथा उसकी विदेश नीति पूर्णतयः अमेरिकी प्रभाव में रही । यही कारण है कि शाह कालिक ईरान कश्मीर समस्या पर पाकिस्तानी पक्ष का समर्थक रहा, जबकि इस्लामिक क्रान्तियोत्तर ईरान की कश्मीर के प्रति नीति निरन्तर तटस्थता व धीरे–धीरे भारत के दृष्टिकोण के समीप आती गयी । फिर भी पाकिस्तान OIC जैसे मंच से जिसका ईरान भी सह सदस्य है, कश्मीर पर यदाकदा प्रस्ताव पास कराने में सफल रहा है । वाद की ईरानी सुधारवादी और उदारवादी सरकारों के काल में अमेरिका और ईरान के सम्बन्ध अत्यन्त खराब रहे है । जिसका प्रभाव कश्मीर पर ईरानी दृष्टिकोण पर भी पड़ा है ।

डा0 एम0एस0 राजन के अनुसार– कश्मीर प्रश्न पर अमेरिका ने आक्रान्त को आक्रान्ता के साथ मिलाने का प्रयास किया है .... अमेरिका से भारत की नाराजगी का मुख्य कारण यही है ।[2] स्वाधीनता के पूर्व भारत और अमेरिका में कोई विशेष सम्पर्क नहीं था, क्योंकि ये देश बहुत दूर स्थित है और फिर भारत के अंग्रेज शासक जान बूझकर भारत को किसी दूसरे देश के सम्पर्क में नहीं आने देना चाहते थे । भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका का युद्धोत्तर (द्वितीय विश्व युद्ध) इतिहास अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ऐसा दुःखद प्रसंग है जिसे कि परम्परागत मुहावरे में अभिव्यक्त करना कठिन है।[3] दूसरी तरफ भारत और ईरान के दीर्घकालिक सम्बन्ध रहे है, फिर भी भारत और ईरान सम्बन्धों पर भारत–अमेरिका सम्बन्धों का तथा कश्मीर पर अमेरिकी नीति का असर पड़ता रहा है विशेषकर ईरान की इस्लामिक क्रान्ति

---

1. शेखर गुप्ता– महाशक्तियों का मिजाज, दैनिक जागरण लखनऊ दिनांक 7.10.2002
2. बी.एल. फडिया – पार्श्वोद्धृत पृ. 347
3. वहीं पृ.पृ. 342–43

के पूर्व । क्रान्तियोत्तर ईरान–अमेरिका सम्बन्धों के कटुतापूर्ण वर्षों में ईरान की कश्मीर पर नीति का झुकाव भारतीय राजनय की तरफ होता गया है। जिसकी पृष्ठभूमि में भारत–ईरान के दीर्घकालिक सम्बन्ध, दोनों देशों की व्यापारिक एवं वाणिज्यिक हित भारत में मुसलमानों की आबादी तथा इनकी सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति, भारत का धर्म निरपेक्ष्य स्वरूप तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत और ईरान की बीच आपसी तालमेल जैसे तत्व प्रमुख रूप से उत्तरदायी है ।

खण्ड– (स)

भारत और ईरान की परमाणु नीति एवं पारस्परिक सम्बन्ध

ईरान जिसे मध्यपूर्व की कुन्जी कहा जाता है कि विश्व के तेल उत्पादक देशों में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।[1] ईरान की अर्थव्यवस्था का आधार उसका तेल उद्योग ही है । 1978 के प्रारम्भ में विश्व के कुल अशोधित तेल उत्पादन का दस प्रतिशत ईरान में होता था । हालांकि विश्व के तेल भण्डारों में ईरान का चौथा स्थान है, लेकिन वह विश्व का दूसरा बड़ा निर्यातक देश है । ईरान को अपनी कुल विदेशी मुद्रा का अस्सी प्रतिशत तेल के निर्यात से प्राप्त होता है ।[2] खनिज तेल के एक बड़े उत्पादक ईरान के पास प्रतिवर्ष 1.25 खरब बैरल खनिज तेल उपलब्ध है और तेल उद्योग के ही विश्लेषकों के अनुसार लगभग 115 खरब बैरल खनिज तेल के ऐसे आरक्षित भण्डार भी मौजूद है जिन्हें अब तक छुआ ही नहीं गया है ।[3]

ये ऑकड़े सही होने के बावजूद पूरी सच्चाई को प्रकट करने के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि भूगर्भशास्त्रियों के अनुसार ईरान में इन दिनों जिस रफ्तार से तेल का उत्पादन होता रहा है उससे उसके ज्ञात तेल भण्डार केवल 2042 ई0 तक ही पर्याप्त होंगे । समूचे विश्व में निरन्तर बढ़ती जनसंख्या की वजह से उसकी ऊर्जा सम्बन्धी आवश्यकताओं और मॉग में लगातार बढ़ोत्तरी होते जाने और जीवाश्म ईधन यथा–कोयला, पेट्रोल तेल व गैस के विश्व की ऊर्जा सम्बन्धी मॉग की पूर्ति करने में कुछ दशकों के लिए ही पर्याप्त होने के कारण ऊर्जा के नवीनतम स्रोतो की ओर वैज्ञानिको का ध्यान जाना स्वाभाविक है । ऊर्जा के नये स्रोतों में नाभिकीय ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसमें अपार सर्जनात्मक क्षमता अन्तर्निहित होती है ।[4] एक अनुमान के अनुसार युरोनियम के एक परमाणसु विखण्डन से निर्मुक्त ऊर्जा प्राकृतिक गैस के एक अणु के दहन से उत्पन्न की गई ऊर्जा की तुलना में 200 करोड़ गुना अधिक होती है । नाभिकीय ऊर्जा न केवल विद्युत उत्पादन में ही सहायक होती है, वरन् इसका उपयोग विकिरण, चिकित्सा, औद्योगिक विकिरण–चित्रण, कृषि उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण औषधि निर्माण आदि में भी बाखूबी

---

1. पी.डी. कौशिक –अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध – पृ.– 572
2. डी.एन. वर्मा–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध – पृ.– 471
3. माया पत्रिका हिन्दी संस्करण – 15 जुलाई 1995
4. क्रानिकल ईयर बुक 1998 नई दिल्ली पृ. 808

किया जा सकता है । परमाणु ऊर्जा की खोज होने के उपरान्त से ही उन्नत प्रौद्योगिकी वाले देशों ने इस क्षेत्र में अपनी सक्रियता काफी तेज कर दी ।[1] इन्हीं तथ्यों के अनुप्रकाश में विश्व के तमाम महत्वपूर्ण देशों की परमाणु ऊर्जा पर अश्रितत्रा व निर्भरता के क्रम में ईरान ने भी परमाणु को ऊर्जा के एक आसान व सस्ते विकल्प के रूप में अपनाने की नीति को व्यवहारिक रूप देना शुरू किया देश की विद्युत आवश्यकताओं की आपूर्ति के मद्द्नेजर ईरान के परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना की गयी । जिसके प्रमुख उद्देश्यों में देश के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों के लिए युरेनियम परिष्कृत करना भी ग़ामिल है । उद्योगों एवं कारखानों में ऊर्जा हेतु दवा आदि हेतु परमाणु ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करना भी ईरानी परमाणु ऊर्जा आयोग के कार्यो में सम्मिलिति है । अनुसंधान एवं विकास कार्यों हेतु प्रशिक्षण तथा उत्कृष्ट राष्ट्र जो आत्मरक्षा हेतु सबल हो, जैसे लक्ष्य भी इस आयोग की स्थापना के समय निर्धारित किये गये थे । तेहरान विश्वविद्यालय में भी परमाणु केन्द्र स्थापित किया गया है । जिसका प्रमुख उद्देश्य परमाणु भौतिकी, विद्युत, परमाणु रसायन, रेडियोलाजी परमाणु इंजीनियरिंग परमाणु विज्ञान में प्रशिक्षण तथा परमाणु तकनीक के शन्तिपूर्ण सम्भावनाओं की तलाश आदि है ।[2] अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी में ईरान के स्थायी प्रतिनिधि मुहम्मद सादेग आयातुल्लाह का कहना है कि ऊर्जा सम्बन्धी समुचित आयोजन की दृष्टि से भी ईरान के लिए ऊर्जा के विविध स्रोतों का होना जरूरी है । वे कहते है कि अपने समस्त अण्डे एक ही टोकरी में जमा करना अच्छी नीति नहीं है । ईरान की इसी सोच को शंका और भय की निगाह से देखने वाला वह अमेरिका जो राजतन्त्रात्मक ईरान का अच्छा मित्र था ईरान की परमाणु बम बनाने की आकांक्षा को ढोल पीट कर उस पर आर्थिक प्रतिबन्ध जड़ दिये ।[3]

ईरान की 1979 की इस्लामिक क्रान्ति और राजतन्त्र का अन्त संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति की एक महान विफलता है क्योंकि खाड़ी क्षेत्र में उसके वर्षो के मंसूबो पर पानी फिर गया । अपनी इसी खीझ को निकालने के लिए अमेरिका उपयुक्त समय की तलाश में रहता है । जब भी समय की उपयुक्तता उसकी सोच में ठीक बैठती है तो वह ईरान के विरूद्ध राजनय की कशरत करना शुरू कर देता है। इसी क्रम में फारस की खाड़ी के किनारे जर्मनी के सहयोग से बने अर्धनिर्मित वुशहर परमाणु संकुल

---

1. क्रानिकल ईयर बुक 1998 पार्श्वोद्धृत
2. Europa Year Book 1982 Vol. II P.- 563
3. माया पत्रिका हिन्दी संस्करण 15 जुलाई 1995

के गुंबदाकार स्तूप में हल्के पानी से चलने वाले एक परमाणु ऊर्जा संयंत्र की स्थापना के लिए जब रूस ने ईरान से 80 करोड़ डालर लागत के करार पर हस्ताक्षर किये तो दुनिया के दरोगा अमेरिका ने इसे रोकने की जैसे कसम खा ली ।[1] हालांकि यह करार किसी दृष्टि से सामरिक उद्देश्यों वाला नहीं था और आगे भी इसके वैसा रूप लेने की तमाम आशंकाओं के मद्देनजर मूल करार में ही पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था कर ली गयी थीं । अमेरिका का कहना था कि ईरान का असली इरादा परमाणु ऊर्जा की तकनीक और बम बनाने योग्य सामाग्री प्लूटोनियम अथवा सम्बर्धित यूरेनियम प्राप्त करना ही था । 1995 में रूसी राष्ट्रपति येल्तसिन अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन जब एक दूसरे से मिले तो उनकी वार्ता का मुख्य मुद्दा भी यही था। अमेरिकी विदेश मंत्री वारेन क्रिस्टोफर ने भी कहा था कि वे (क्लिंटन) रूस को इस करार से बाज रखने के लिए कुछ अति संवेदनशील गुप्त जानकारियॉ भी राष्ट्रपति येल्तसिन को उपलब्ध करायेंगे जो उन्हें अपने गुप्तचर तन्त्रों से प्राप्त हुई है। लेकिन रूसी विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ग्रिगोरी करासिन ने भी साफ–साफ कहा था कि रूस अपने इस फैसले को बदलेगा नहीं ।

फारस की खाड़ी के किनारे एक सुविस्तृत, किन्तु सुनसान निर्माण स्थली के बीच खड़े दो इस्पात और कांक्रीट के अर्धनिर्मित गुम्बदाकार स्तूप आज करीब 16 सालों से यो ही उपेक्षित से पड़े, समुद्र से होकर आने वाली नमकीन हवाओं से तिल–तिल कर के गल रहे है। ये प्रतीक है ईरान के उस बुशहर परमाणु संकुल के जिसे ईरान के अन्तिम स्वप्न दर्शी शाह रजा पहलवी ने जर्मनी के सहयोग से बनवाना शुरू किया था, किन्तु 1979 में जब वहा इस्लामी क्रान्ति अपने चरम पर जा पहुँची और शाह को भी अपना देश छोड़कर मारे–मारे फिरने के लिए बाध्य होना पड़ा, तो जर्मनी ने भी अपनी ठेकेदार कम्पनी सीमेंस को भी इस परियोजना पर काम बन्द कर के स्वदेश लौट आने के लिए कह दिया । तभी से ये दोनों गुंबदाकार स्तूप भी यों ही पड़े हुए है । पहली नजर में किसी भी देखने वाले को यही लगता है कि यह परियोजना यू ही अपनी मौत मरने के लिए छोड़ दी गयी है लेकिन ईरानी यात्रियों के अनुसार जिन्हें इन्हें नजदीक से देखने का मौका मिला है, ये अर्धनिर्मित गुंबदाकार निर्माण एकदम ही परित्यक्त नहीं है, बल्कि इनकी सुरक्षा के लिए बड़ी ही सावधानी से प्रबन्ध किये गये है और जो उपकरण जर्मनी की कम्पनी ने विवश होकर वहीं

---

1. माया पत्रिका हिन्दी संस्करण पेज सं0–48, 15 जुलाई 1995

छोड़ दिये थे उन्हें भी मौसम की मार से बचाए रखने के लिए कुछ अस्थायी निर्माण कार्य कराये गये है । जो कुछ है उसको सुरक्षित रखने के उपायों में कोई कसर बाकी नहीं रखी गयी है । ईरान–ईराक युद्ध के दौरान इराकी बमबारों ने यद्यपि इसे भी अपना निशाना बनाया था लेकिन उस भयंकर बमबारी से भी इसकी कुछ अंदरूनी दीवारों में दरारे पड़ जाने के अलावा कोई विशेष क्षति नहीं पहुँचने पायी है।[1] यही परमाणु ऊर्जा संकुल जिसमें संयंत्र लगाने के लिए रूस एवं ईरान में करार हुआ परमाणु विवाद का कारण बना । राजनयिक स्तर पर चर्चाए गर्म हो गयी । ईरान ही नहीं, वरन् पड़ोसी रूस से लेकर सुदूर अमेरिका तक राजनयिक ऊर्जा महसूस की जाने लगी । राष्ट्रपति क्लिंटन ने भी इस मामले में अपनी गम्भीरता जाहिर करने के लिए ईरान के विरूद्ध एक तरफा व्यापार प्रतिबन्ध लागू कर दिये, उन्होंने कहा कि हमे यकीन है कि ईरान को भीषण संहारक शक्ति वाले हथियार बनाने की कोशिश से बाज रखन के लिए ये व्यापार प्रतिबन्ध ही सर्वाधिक प्रभावी उपाय हो सकते है और हमारे देश ने उन्हें अपना कर पहल कर दी है ।

अमेरिका के अनेक सहयोगी देशों ने बड़ी ही हिचकिचाहट के साथ क्लिंटन की इस घोषणा का स्वागत किया । भारत का इस विषय पर परम्परागत दृष्टिकोण रहा । भारत की तरफ से इस समूचे प्रकरण में मौनता ही बनी रही । इसके पीछे नीति थी कि जिनका दामन स्वयं न साफ हो उन्हें दूसरों को नसीहत नहीं देनी चाहिए । इज़्राइल ने तो और कड़े प्रतिबन्धों की सिफारिश की, किन्तु खुद ईरान की प्रतिक्रिया सबसे अलग थी । प्रतिबन्धों की घोषणा के तुरन्त वाद ईरान के राष्ट्रपति अली अकबर हाशमी रफसंजानी ने टेलीविजन पर आकर कहा आज की दुनिया में जहाँ लोगों को खनिज तेल की बेहतर जरूरत है । ईरान को इस विश्व बाजार से बाहर नहीं किया जा सकता, इसलिए हमें इन पाबन्दियों की कोई परवाह नहीं है। रफसंजानी की प्रतिक्रिया भले ही सन्तुलित रही, परन्तु ईरान के अन्य मजहबी नेताओं की टिप्पणियाँ तो जैसे किसी कुद्ध बाध की हुंकार की ही याद दिलाने वाली थी । ईरान के सर्वोच्च मजहवी नेता आयतुल्लाह सईद अली खामेनी ने तो क्लिंटन को गैरतजुर्बेदार बेवकूफ तक कह डाला ।

एटामिक एनर्जी आर्गेनाइजेशन ऑफ ईरान, तेहरान युनिवर्सिटी न्यूक्लीयर सेन्टर तथा इस्फहान

---

1. माया पत्रिका हिन्दी संस्करण पेज सं0–48, 15 जुलाई 1995

न्यूक्लियर टेक्नालाजी सेन्टर के माध्यम से संचालित ईरानी परमाणु कार्यक्रम उसके धुर–विरोधी अमेरिका को लगातार खटकते रहे है ।[1] जबकि ईरान का कहना है कि ईरानी परमाणु कार्यक्रम का लक्ष्य तकनीकी, स्वास्थ्य, वैज्ञानिक एवं विकास सम्बन्धी लक्ष्यों को हासिल करना तथा उसके लिए इसका शान्तिपूर्ण ढ़ंग से संचालन करना है । ईरान की इस दलील व धोषित लक्ष्य के बाद भी ईरानी परमाणु कार्यक्रम अमेरिका सहित पश्चिमी राष्ट्रों की निगाहों में गड़ता रहा है । ईरान की परमाणु महत्वाकांक्षाओं को लेकर अमेरिका और उसके अन्य मित्र देशों में अलग–अलग राय सिर्फ इस सवाल पर है कि ईरान ने इस दिशा में कहा तक प्रगति कर ली हैं । अमेरिका और इज्राइल को छोड़कर बाकी सभी देशों का मानना है कि ईरान की परमाणु कार्यक्रम अभी प्रारम्भिक स्थिति में है । युरोप तथा कुछ अन्य देशों के समीक्षाकारों का यह मत है कि अमेरिका का क्लिंटन प्रशासन कुछ आन्तरिक राजनीतिक बाध्यताओं के कारण ही ईरान के परमाणु कार्यक्रमों का ढोल इतनी जोर से पीट रहा है । थोड़ी देर के लिए यदि अमेरिका की आन्तरिक समस्याओं को दरगुजर कर दिया जाय तो भी यह सर्वविदित है कि क्लिंटन प्रशासन को ईरान के प्रति गहरा अविश्वास है ।

ईरान के बाहर शायद ही किसी को इस बात से इंकार हो कि ईरान को परमाणु बम की जरूरत है, बल्कि ब्रिटेन के एक वरिष्ठ राजनयिक ने कहा भी है कि आश्चर्य तो तब होता जब वह (ईरान) परमाणु बम के लिए दीवाना न होता क्योंकि उसके पड़ोसी कोई बहुत शान्त प्रकृति के नहीं है । ईरान के पड़ोसियों रूस, चीन यहाँ तक कि पाकिस्तान के पास भी परमाणु हथियार है । इज्राइल के पास भी इसके होने की बात जग जाहिर है । रहे इराक के सद्दाम हुसेन तो यह कौन कह सकता है कि उन्होंने अपनी परमाणु महत्वाकांक्षा त्याग दी है । अमेरिकी राष्ट्रपति कार्यालय और विदेश विभाग के अनेक वरिष्ठ अधिकारी बार–बार इसी बात पर जोर दे रहे है कि ईरान के परमाणु कार्यक्रम को लेकर उनकी सारी चिन्ताए वास्तविक है । लेकिन वे यह भी मानते है कि उसका नागरिक परमाणु कार्यक्रम आवश्यक उत्पादनो की आपूर्ति, आवश्यक विदेशी मुद्रा तथा वांछित विशेषज्ञता की कमी से बाधित है । प्रशासन के ही अन्यान्य सूत्रों का कहन है कि वास्तविक खतरा ईरान की सेना की ओर से है, जिसके बारे में उसका दावा है कि

---

1. Europa Year Book 1990 A World Survey Vol. II P.-1365
Europa Publications Ltd. London

उसे ऐसे अंनेक संकेत मिल चुके है जिनसे पता चलता है कि ईरानी सेना गुप्तरूप से ऐसे समानान्तर प्रयासों में लगी हुई है । जिनका एक मात्र लक्ष्य परमाणु हथियार प्राप्त कर लेना ही है । एक वरिष्ठ गुप्तचर अधिकारी का कहना है कि सेना का यह परमाणु कार्यक्रम ज्यादा गम्भीर, सुव्यवस्थित तथा नागरिक कार्यक्रम की तुलना मे कही अधिक अग्रगामी एवं सुनियोजित दिखाई देता है । ईरान सरकार ने आयुध उपयोगी सम्वर्धित युरेनियम की गुप्त खरीदारी के लिए अपना एक दल कज़ाकिस्तान भेजा था । अमेरिका के अधिकारियो को संदेह है कि इसी कारण अमेरिकी रक्षा मुख्यालय–पेन्टागन को वहा से 500 किलोग्राम युरेनियम बड़ी हीं गोपनीयता के साथ विमानों के जरिये हटाना पड़ा था ।[1] यह युरेनियम 25 परमाणु बमों के निर्माण हेतु पर्याप्त था और कज़ाख परमाणु केन्द्र पर प्रायः असुरक्षित सा पड़ा था । पेन्टागन ने इसे वहा से हटाकर अपने टेनेसी स्थित ओकरिज केन्द्र में पहुँचा दिया था । बहरहाल अमेरिकी गुप्तचर सूत्रों का ही कहना था कि ईरान की दर्जनों बिकाऊ कम्पनियों दुनिया भर के बाजारों को केवल इसीलिए छाने डाल रही है कि –किसी प्रकार किसी भी स्रोतों से उन्हें वह सामाग्री, उपकरण और तकनीकी जानकारी हासिल हो जाय, जो परमाणु अस्त्र निर्माण हेतु आवश्यक है । विदेश विभाग के एक उच्चाधिकारी के अनुसार उनकी खरीदारी सूची में अनेक ऐसी वस्तुएं भी है जिनकी नागरिक परमाणु कार्यक्रम के लिए कतई जरूरत नहीं है । 'न्यूक्लियर ट्रिगर' ऐसी ही कई चीजों में से एक है । इसी अधिकारी के अनुसार ईरानी भी अब वे ही तरीके इस्तेमाल कर रहे है जिनके जरिये अन्य देशों ने गुप–चुप परमाणु क्षमता हासिल कर ली है । इस सन्दर्भ में एक अमेरिकी विश्लेषक की यह भविष्यवाणी भी उल्लेखनीय है कि अगली सदी के पहले दशक तक ईरान भी परमाणु क्षमता वाले देशों में करीब–करीब शामिल हो चुका होगा ।

अमेरिकी चेतावनिया थोड़ी अतिश्योक्तिपूर्ण भले ही हो पर इन्हें एकदम निराधार भी नहीं जा सकता। रूस अपनी घरेलू समस्याओं के कारण तथा धनाभाव के कारण ईरान के साथ अपने पुराने परमाणु संयत्रों का सौदा करना चाहता है । इस सौदे से प्राप्त होने वाली राशि रूस के अभावग्रस्त परमाणु ऊर्जा विभाग के लिए एक संजीवनी साबित हो सकती है । यद्यपि रूस ने अपने पुराने संयत्रों को विदेशों में बेचने की हरचन्द कोशिशे कर डाली किन्तु चीन और भारत के अतिरिक्त उसे और ग्राहक नहीं मिले ।

---

1. माया पत्रिका हिन्दी,संस्करण पेज– 51, 15 जुलाई 1995

धनाभाव की समस्या दिनोदिन जटिल होती गयी । शायद यही ईरानी परमाणु कार्यक्रम की आसानी का कारण भी रहा । रूसी अखबारों में ही अनेक बार ऐसी खबरे छप चुकी है कि ईरान रूसी परमाणु भौतिक विदो को50,000 डालर मासिक वेतन पर अपने यहॉ बुलाने की पेशकश कर चुका है ।[1] यों रूस और ईरान दोनों का इस सौदे पर यही स्पष्टीकरण था कि यह सौदा पूरी तरह परमाणु अप्रसार सन्धि के प्रावधानों के अनुरूप है । 187 देशों के हस्ताक्षरों से राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में अनिश्चित काल तक के लिए लागू इस सन्धि की धारा 4 में कहा गया है कि परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग के लिए सामग्री, उपकरणों, वैज्ञानिक एवं तकनीकी जानकारियों का आदान–प्रदान पूरी तरह वैध होगा। परन्तु अमेरिका का सवाल तो यही है कि क्या परमाणु संयंत्र खरीद कर ईरान परमाणु ऊर्जा का उपयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यो में ही करेगा ? अमेरिकी विदेशमंत्री क्रिस्टोफर के अनुसार अमेरिकी दृष्टि में तो ईरान के लिए परमाणु ऊर्जा की कोई वैध आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि ऊर्जा की ईरान मे कोई कमी नहीं है ।

यह तो रूस भी नहीं चाहता कि उसकी दक्षिणी सीमा पर एक परमाणु शस्त्र समन्न इस्लामिक राष्ट्र हो, परन्तु उसे यह तकनीकी न देना भी आत्मविरोधी कार्यवाही होगी । एक वरिष्ठ रूसी राजनयिक का कहना है कि –अब चूंकि ईरान को इन परमाणु संयंत्रों की जरूरत है, तो हमें भी उसे अपने काबू में रखने का एक जरिया मिलता लग रहा है । हमारे खयाल में हमे इस जरिये से फायदा उठाना ही चाहिए । रूस को उम्मीद है कि ईरान को उपकृत करके ही उसे अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी के कठोर निरीक्षण में लाया जा सकता है । इसी के साथ एक डर यह भी जुड़ा है कि अगर उस पर और ज्यादा दबाव डाला गया, तो मुमकिन है कि वह परमाणु अप्रसार सन्धि से अपना नाता तोड़कर स्वतन्त्र हो जाय ।[2] अमेरिका की दृष्टि में उसका परमाणु कार्यक्रम सबसे अधिक खटक रहा है क्योंकि उसका मतलब है कि ईरान का इरादा इसके पीछे केवल सस्ती ऊर्जा ही प्राप्त करना नहीं है बल्कि ऊर्जा कार्यक्रम की आड में वह परमाणु अस्त्रों का विकास करना चाहता है ताकि वक्त आने पर वह अपने दुश्मन नम्बर एक अमेरिका से भी ऑखे निकाल कर बाते कर सकें ।[3] ईरानी परमाणु कार्यक्रम पर विश्व की दो प्रमुख देशों की चिन्ता के अपने–अपने हित प्रमुख उत्प्रेरक कारक है । अगर अमेरिका खाड़ी क्षेत्र में अपनी अन्तर्राष्ट्रीय धौंस में

1. माया पत्रिका हिन्दी संस्करण पृ. 51 15 जुलाई 1995
2. वही पृ. 52
3. माया डेस्क, माया पत्रिका हिन्दी संस्करण अगस्त 1995 पेज–45

सम्भावित कमी के मद्देनजर चिन्तित व आशंकित है तो रूस धन की लालच में अपने समझौते पर अमल के लिए आमादा जरूर था, परन्तु पड़ोस में परमाणु शक्ति सम्पन्न ईस्लामिक ईरान की परिकल्पना मात्र से सिहरन महसूस किये बिना नहीं रह पाता । इन सब से अलग हटकर भारत का दृष्टिकोण मौनता ही रहा, क्योंकि ईरान की घोषित परमाणु नीति 'शान्तिपूर्ण, तकनीकी विकास व सस्ती ऊर्जा का भारत पक्षधर रहा है । भारतीय राजनय की इस विषय पर मौनता एक प्रकार से ईरानी दृष्टिकोण का समर्थन हीं रहा है । स्पष्ट खुला मौखिक समर्थन न आने के पीछे शायद यह कारण रहा कि–ईरान का खुश होना जितनी बड़ी राजनीतिक सफलता होती अन्य खाड़ी देशों का नाराज होना उससे बड़ी असफलता होती । जहाँ तक परमाणु अस्त्रों के विकास पर भारत का दृष्टिकोण है । वह बिल्कुल खुला व स्पष्ट है । इस विषय पर परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों की दोहरी नीति का भारत विरोधी व शिकार दोनों एक साथ रहा है । भारत ने दोहरी परमाणु नीति की जितनी पुरजोर मुखाल्फत की उतना ही बुरी तरह से इसका शिकार भी रहा है। यहीं कारण है कि परमाणु नीति पर ईरान के विरूद्ध कसते अमेरिकी अगुआई के शिकंजे को भारत ने नजर अन्दाज कर दिया । मौन दृष्टिकोण से अमेरिकी नीति के सर्वथा प्रतिकूल ईरानी परमाणु कार्यक्रम का समर्थन ही किया । इधर ईरान के राष्ट्रपति रफसंजानी इन सारी आशंकाओं का जवाब केवल यही देते है –'हम न तो बम बना रहे है न बना हीं सकते है ।' फिलहाल उनकी यह बात तो ठीक है लेकिन भविष्य किसने देखा है ?

''भारत ईरान संयुक्त आयोग' की बैठकों के माध्यम से तथा वरिष्ठ राजनेताओं की राजकीय यात्राओं के माध्यम से दोनों देशों में विविध क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग हेतु समझौते एवं बर्ताए तथा समझौतों की समीक्षा होती रही है । इसमें वैज्ञानिक व तकनीकी सम्बन्धी समझौते भी शामिल रहे है । जिससे दोनों के परमाणु ऊर्जा सम्बन्धी आपसी सहयोग व समन्वय के विकास का रास्ता प्रशस्त हुआ । 'भारत ईरान संयुक्त आयोग' की पाँचवी बैठक नवम्बर 1991 में तेहरान में हुई जिसमें दोनों देशो के विदेशमंत्री मिले ।[1] इस संयुक्त बैठक में अन्य अनेकों समझौतो के साथ वैज्ञानिक तकनीकी व ऊर्जा सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर हुआ । जिसमें गैरतैलीय ऊर्जा संसाधनों के विकास पर भारत द्वारा ईरान

1. भारत 1992 अंग्रेजी संस्करण पेज सं0–705 प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली

को तकनीकी सहयोग का प्राविधान किया गया । 17 से 19 अप्रैल 1995 को ईरानी राष्ट्रपति अली अकबर हाशमी रफसंजानी भारत की राजकीय यात्रा पर पधारे, संसद के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित किया विविध क्षेत्रों में अनेकों समझौतो पर उनके साथ आये विशेषज्ञों के दल ने हस्ताक्षर किया । इसमें वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग सम्बन्धी समझौता भी शामिल था ।[1] 13 जनवरी 1996 को ईरानी विदेश मंत्री भारत के दौरे पर आये उनके साथ एक विशेषज्ञ दल भी आया था । उन्होंने भारत के विदेश मंत्री एवं विदेश राज्य मंत्री से भेंट की तथा अनेकों समझौते पर हस्ताक्षर तथा पूर्व में किये गये समझौतों के परिणामों की समीक्षा की गयी तथा उसकी प्रगति पर संतोष जाहिर किया गया । ऊर्जा के परमाणु जनित स्रोतों तथा तकनीको के विषय में भी दोनों देशों के विशेषज्ञ दलों की वार्ता हुई । नीतिगत आधार पर भारत कभी भी ईरान के परमाणु कार्यक्रम का विरोधी नहीं रहा क्योंकि ईरान के परमाणुविक राष्ट्र बनने में भारत का कोई हित वाधित नहीं होता । ईरानी परमाणु कार्यक्रम के रूसी सहयोग से भारत की इस नीति को और बल मिला। शायद यही कारण रहा कि अमेरिकी नेतृत्व में तमाम पश्चिमी राष्ट्रो के होहल्ला तथा प्रतिबन्धों को भारत ने, जो ईरानी परमाणु नीति के विरूद्ध प्रतिक्रिया हेतु लगये गये थे, नजर अन्दाज कर द्विपक्षीय सम्बन्धों की दीर्घकालिक परम्परा को अनवरत कायम रखे रहा ।

स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू की आरम्भिक दुरदर्शिता तथा डा0 होमी जहाँगीर भाभा के वैज्ञानिक प्रयासों से भारत की नाभकीय ऊर्जा से सम्बन्धित तकनीकी काफी विस्तृत अवस्था में पहुँच गयी है । इसीलिए आज भारत को इस क्षेत्र में विश्व के अग्रगणी देशों में गिना जाने लगा है । हमारे वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों के सतत् प्रयासों के परिणाम स्वरूप यह परमाणु प्रद्यौगिकी के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया है तथा परमाणु ईधन चक्र की प्रत्येक गतिविधियों को संचालित करने में सक्षम है ।[2] आज भारत परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्र है तो यह इसके दीर्घकालिक प्रयत्नों, उच्च तकनीकी विकास, नानाबाधाओं को झेलने, मित्र देशों के सहयोग, उदम्य उत्साह, उच्चकोटि के संयम तथा लक्ष्य की तरफ अनवरत अग्रसर रहने का परिणाम है । ईरान की ही तरफ भारत को भी प्रारम्भिक दौर में अनेकों विरोधों एवं आलोचनाओं का सामना करना पड़ा । वैसे तो भारत में 'एटामिक इनर्जी कमीशन' की स्थापना

1. भारत 1995 अंग्रेजी संस्करण पेज सं0–550 प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली
2. क्रानिकल ईयर बुक 1998 पृ0 808 नई दिल्ली

1948 ई0 में ही हुई थी । 1954 में देश के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के सुचारू क्रियान्वयन के लिए एक कार्यकारी संस्था के रूप में -''परमाणु ऊर्जा विभाग'' की स्थापना की गई । 1948 में पारित परमाणु ऊर्जा अधिनियम के तहत परिभाषित भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य है- विद्युत उत्पादन जैसे शान्तिपूर्ण प्रयोजन के लिए परमाणु ऊर्जा का विकास, नियंत्रण एवं प्रयोग तथा अनुसंधान, कृषि, उद्योग चिकित्सा एवं अन्य क्षेत्रों में नाभिकीय प्रयोगों का विकास ।[1] जिसका कार्य शान्तिपूर्ण उपयोग के लिए परमाणु शक्ति पर अनुसंधान करना है । वैज्ञानिकों को प्रशिक्षित करना, तत्सम्बन्धी खनिजों की खोज करना तथा परमाणु शक्ति के उत्पादन को प्रोत्साहित करना इसके कार्यों में शामिल है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद परमाणु भौतिज्ञ होमी जे0भाभा ने भारत के परमाणु कार्यक्रम के विचार को 1949 में विकसित किया। ताकि भारत ऊर्जा एवं परमाणु भौतिकी के क्षेत्र में आत्म निर्भर हो सके । 1944 में भाभा ने उद्योगपति टाटा से परमाणु भौतिकी अनुसंधान केन्द्र स्थापित करने पर विचार विमर्श किया, जिसे टाटा ने स्वीकृति प्रदान कर दी । परमाणु कार्यक्रमों की देख-भाल स्वयं प्रधानमंत्री नेहरू ने की भारत और कनाडा के बीच परमाणु सहयोग 1950 के दशक के मध्य में शुरू हुआ । कनाडा की सहायता से साइरस (CIRUS) परमाणु सयंत्र की स्थापना की गई । भारत अमेरिकी परमाणु सहयोग की शुरूवात 1958 में हुई । 1963 में तारापुर समझौते पर हस्ताक्षर हुआ जिसके परिणाम स्वरूप तारापुर परमाणु शक्ति स्टेशन की स्थापना हुई ।[2] पं0 जवाहर लाल नेहरू के समय की भारत की परमाणु नीति यह थी कि - भारत द्वारा परमाणु प्रौद्योगिकी का प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण एवं विकास कार्यों के लिए करना । उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को साफ शब्दों में कह दिया था कि भारत कभी भी विनाशकारी हथियारों का निर्माण नहीं करेगा 16 अक्टूबर 1964 को चीन द्वारा परमाणु विस्फोट करने के बाद लाल बहादुर शास्त्री मन्त्रिमण्डल में सूचना मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक टेलीविजन भेंट में 22 अक्टूबर 1964 को कहा था कि भारत 18 माह के भीतर परमाणु बम बनाने की स्थिति में है । 1966 के बाद भारत की परमाणु नीति दोहरे पथ की बन गयी । इसके पीछे दक्षिण एशिया और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बदलते सामरिक एवं सुरक्षा पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए भारत ने अपने परमाणु विकल्प को खुला रखा ।[3] भारत में परमाणु शक्ति

---

1. क्रानिकल ईयर बुक 1998 पृ. 808, नई दिल्ली ।
2. वी.एम. जैन प्रमुख देशों की विदेश नीतियाँ पृ. 365 जयपुर 2000
3. वहीं पृ. पृ. 365-66

के अनुसन्धान केन्द्रों में 'टाटा इस्टीट्यूट बम्बई' भाभा एटामिक रिसर्च सेन्टर ट्राम्बे तथा साहा इस्टीट्यूट कलकत्ता प्रमुख है । अप्सरा, सायरस, जर्लीना, पूर्णिमा तथा ध्रुव एटोमिक रिएक्टर्स है । रावत भाटा–राजस्थान, तारापुर–महाराष्ट्र, कलपक्कम–तमिलनाडु, नरोरा–उत्तर प्रदेश तथा मोतीचेर–गुजरात में एटामिक शक्ति गृह है । भारत में युरेनियम, थोरियम तथा वोरीलियम जैसे परमाणु खनिज विहार, हिमाचल प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, केरल, राजस्थान तथा महाराष्ट्र के विविध स्थानों पर पाये जाते है ।[1] 18 मई 1974 को भारत ने अपना प्रथम परमाणु परीक्षण थार के रेगिस्तान में, पाकिस्तानी सीमा से 153 किमी. की दूरी पर जैसलमेर जिले के पोखरन नामक स्थान पर किया । यह जमीन के अन्दर था और पूर्णरूप से सफल रहा । इस प्रकार भारत ने परमाणु शक्तियों में अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रान्स, चीन, कनाडा के बाद सप्तम् स्थान प्राप्त कर लिया । भारत के इस परीक्षण के बाद विश्व के अन्य परमाणु सम्पन्न राष्ट्रो द्वारा तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी । आलोचनाओं, इससे होने वाले नुकसानों तथा इसके विविध पक्ष पर अन्तर्राष्ट्रीय चर्चाओं का तूफान सा आ गया परन्तु भारत इससे विचालित नहीं हुआ भारत की प्रतिक्रिया थी कि यह पूर्णतयः शान्तिपूर्ण प्रयोग हेतु विकास कार्यों के लिए किया गया है । इससे किसी प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु सम्बन्धी विधिका उल्लंधन नहीं होता है । यह परीक्षण "आणुविक परीक्षण प्रतिबन्ध निषिद्ध सन्धि 1963" के प्रावधानों के अनुरूप है । परमाणु परीक्षण से सम्बन्ध दो सन्धियाँ है। आणुविक परीक्षण निषिर्द्धि सन्धि 1963, इसमें खुले में परीक्षण करने पर रोक लगाई गई है । भारत भी इसका पक्षकार है । भारत ने अपना परीक्षण अपने क्षेत्र में अपनी जमीन के नीचे किया । अतः वह सन्धि उत्तरदायित्वों का उल्लंघन नहीं हैं । इस विस्फोट को लेकर पश्चिमी देशों विशेष कर अमेरिका ने भारत की कटु आलोचना की और कहा कि– इससे दक्षिण एशिया में तनाव और शास्त्रों की होड को बढ़ावा मिलेगा, परन्तु श्रीमती गांधी ने पोखरण–। परीक्षण को शान्तिपूर्ण विस्फोट की संज्ञा दी, परन्तु अमेरिका इस तर्क से सहमत नहीं था । अमेरिकी ने 1978 में परमाणु प्रसार को रोकने के लिए परमाणु अप्रसार अधिनियम (NNPA) बनाया जिसके अन्तर्गत अमेरिका ने तारापुर परमाणु भट्टी के लिए दिए जा रहे युरेनियम की सप्लाई पर रोक लगा दी । प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई ने अमेरिका की

1. डा0 आर0सी0 जैन सामान्य ज्ञान दिग्दर्शन उपकार प्रकाशन आगरा

यात्रा की एवं अमेरिकी प्रशासन एवं संसद को नैतिक आश्वासन दिया कि भारत परमाणु तकनीक का उपयोग महाविनाशकारी परमाणु शस्त्रों के निर्माण हेतु कभी नहीं करेगा । प्रधानमंत्री देसाई के इस आश्वासन के बाद अमेरिका ने तीन साल तक भारत को युरेनियम की सप्लाई जारी करने का निर्णय लिया।[1] ''आणुविक अस्त्रो का प्रसार ने करने की सन्धि 1968'' दूसरी सन्धि है । भारत इसका पक्षकार नहीं है । इसमें प्रावधान है कि वह राज्य सरकार जिसके पास आणुविक शस्त्र नहीं है, उसे न तो प्राप्त कर सकते है और न ही उसके उत्पादन के लिए परीक्षण कर सकते है । भारत ने इस सन्धि पर इस आधार पर हस्ताक्षर नहीं किये है कि इसके द्वारा आणुविक शक्तियों का एकाधिकार बना रहेगा ।[2] दूसरा कोई राष्ट्र परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र नहीं बन सकेगा । इस भेदभाव पूर्ण सन्धि से भारत कभी भी सहमत नहीं हुआ इसके लिए परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों ने सिवाय सोवियत संघ सम्प्रति रूस के भारत पर नाना प्रकार से दबाव बनाया परन्तु भारत कभी भी इन दबाओ के आगे झुका नहीं । अपने प्रयास को लगातार परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनने तक जारी रखा । जिस तरह ईरान के परमाणु कार्यक्रम पर सबसे ज्यादा बौखलाहट अमेरिका को होती है, उसी तरह की बौखलाहट भारत के परमाणु परीक्षणो पर भी अमेरिका को होती है । आज भी अमेरिका भारत की 'न्यूक्लियर स्थिति' पर वास्तविक नजरिया नहीं अपना रहा है । अमेरिकी विदेश मंत्री भारत के परमाणु परीक्षणों को 'ऐतिहासिक भूल' निरूपित कर रही है।[3] भारत परमाणु अप्रसार सिन्धि सी0टी0वी0टी0 का विरोध इस आधार पर कर रहा है कि ये संन्धियॉ एक भेदभाव रहित अप्रसार व्यवस्था के निर्माण में सहायक नहीं है । एन0पी0टी0 पर जुलाई 1966 में हस्ताक्षर हुए थे और इसे 1970 में लागू किया गया । 25 वर्षो के लिए की गई सन्धि 1995 में अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दी गयी ।[4] मुख्य रूप से जिन देशों ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए है, उनमें भारत, पाकिस्तान, इज़ाइल, क्यूबा और ब्राजील है । भारत ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया है । भारत के इस सम्बन्ध में तीन प्रमुख तर्क है । प्रथम – यह सन्धि भेदभाव पूर्ण है । भारत का कहना है कि परमाणु शस्त्र देश जैसे अमेरिका ने 1945 से आज तक 1032 परमाणु विस्फोट किए है उसके खिलाफ किसी ने आवाज नहीं उठाई । भारत का यह भी मानना है कि जब तक परमाणु शस्त्र देश अपने विशाल परमाणु

1. वी.एन. जैन, पृ. 366 पार्श्वोद्धृत
2. डा० श्याम किशोर कपूर–अन्तर्राष्ट्रीय विधि पृ. 550 1991
3. अमिताभ मट्टू– (J.N.U. के प्रोफेसर अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान) राष्ट्रीय सहारा हिन्दी दैनिक
4. वी.एन. जैन पृ. 369 पार्श्वोद्धृत और Peter Calvocorssi world Politics Since 1945] 5th edition Singapur 1987

आयुद्ध भण्डारों को नष्ट नहीं कर देते, उन्हें अन्य देशों को परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर के लिए बाध्य करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है । द्वितीय– भारत एन0पी0टी0 को अन्दरूनी तौर पर दोषपूर्ण मानता है । ईराक और उत्तर कोरिया ऐसे दो देश है, जिन्होंने एक ओर इस सन्धि पर हस्ताक्षर किए, दूसरी ओर वे परमाणु कार्यक्रम में लगे हुए है । अतः भारत का कहना है कि ऐसी सन्धि पर हस्ताक्षर से कोई प्रयोजन सफल नहीं होता ।[1]

भारत की विदेशनीति में एक स्पष्ट परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है । वैचारिक स्तर पर यह परिवर्तन पश्चिमी खेमे के निकट आने की इच्छा है । यद्यपि भारत द्वारा परमाणु परीक्षण किए जाने पर इसी खेमे ने ही सबसे ज्यादा शोर मचाया था । जिसका नेतृत्व अमेरिका कर रहा था । पहले हमारी विदेशनीति में अमेरिका के साथ द्वन्द्वात्मक रिश्ता रहता था । यह रिश्ता राजीव गांधी के समय तक बना रहा । अब भारत के नये भाग्य विधाता अमेरिका के साथ अपने रिश्ते सुधारना चाहते है । यह अकारण नहीं था कि परमाणु परीक्षण के बाद भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने सबसे पहले अमेरिका को ही इसकी सफाई पेश करते हुए पत्र लिखा था । इसके बावजूद पश्चिम का रूख भारत के प्रति नरम नहीं हुआ है, तो इसका कारण यही है कि पश्चिम की निगाह में चीन का जितना महत्व है, उतना भारत का नहीं । भारत तथा पाकिस्तान के बीच परमाणु प्रतिद्वन्द्विता को अमेरिका खतरे के एक बिन्दु के रूप में देखता है । परमाणु शक्ति पर अमेरिका की भेद–भाव पूर्ण नीति जगजाहिर है । भारत के परमाणु परीक्षणों पर बौखलाया अमेरिका एक तरफ प्रतिबन्धों को लगाता है तो दूसरी ओर यह अमेरिका के लिए संभव नहीं है कि भारत को परमाणु राष्ट्र मान ले, इससे सीटीबीटी पर उसके उद्देश्यों पर पानी फिर जाएगा ।[2] कमोवेश नीतिगत स्तर पर अमेरिकी द्वन्द्व की यही स्थिति ईरान के प्रति भी है । एक तरफ ईरान की परमाणुविक सक्रियता की आशंका पर अमेरिकी हल्कों में हाय तौबा मच जाती है तो दूसरी तरफ एशिया में अपनी राजनीतिक स्थिति को मजबूत करने की लालच में ईरान की सुधारवादी सत्ता से बेहतर सम्बन्धों के प्रयास किए जाते है । विदेशमंत्री अल्ब्राइट ने ईरान–इराक युद्ध में इराक का साथ देने को लेकर अमेरिका की ओर से ईरान से मॉफी तक मॉग डाली है । ईरान अमेरिका की निगाह में अब भी एक आतंकवाद को बढ़ावा देने वाला

1. वी.एन. जैन पृ. 370 पार्श्वोद्धृत
2. राजकिशोर–आलेख–हस्तक्षेप, राष्ट्रीय सहारा 25 मार्च 2000

असभ्य राष्ट्र है ।[3]

भारत और अमेरिका के बीच भारत द्वारा मई 98 में किए गये पॉच परमाणु परीक्षणों के फलस्वरूप सम्बन्धों में तनाव की नई प्रक्रिया शुरू हो गयी है । अमेरिका ने भारत के खिलाफ आर्थिक प्रतिबन्धों की घोषणा कर दी । अमेरिका भारत पर दबाव डाल रहा है कि वह व्यापक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (सी0टी0वी0टी0) पर बिना शर्त हस्ताक्षर करें । भारत का लगातार यह मत रहा है कि बुनियादी तौर पर यह सन्धि राष्ट्रों के बीच मतभेद करती है । भारत ने हमेशा यह माना है कि यह सन्धि नाभिकीय शस्त्रों से सम्पन्न राष्ट्रों के हित को पूरे करती है । वे देश गैर नाभिकीय विकासशील देशों के साथ भेद–भाव का प्रयास करते रहते है । गैर नाभिकीय देश एक राय के है कि वर्तमान अप्रसार एजेन्डे का लक्ष्य नाभिकीय देशों के सैनिक और प्रौद्योगिक प्रभुत्व को कायम किये रहना है लेकिन राजनीतिक एवं आर्थिक दबावों के कारण वे इस नीति का विरोध नहीं कर सकते । भारत और अमेरिका के बीच के सम्बनध प्रायः सामान्य रहे है, या फिर खराब और तनाव पूर्ण । इन दोनों के बीच के रिश्ते को मधुर तो एकदम नहीं कहा जा सकता ।[1] भारत से सी0टी0वी0टी0 पर दस्तखत करवाने की कोशिश में वैसे ही देश लगे है, जो परमाणु क्षमता प्राप्त कर चुके है, जिनकी अगुवाई अमेरिका कर रहा है और अब उनकी कोशिश है कि अन्य कोई भी परमाणु क्षमता हासिल न कर सके । उल्लेखनीय है कि भारत को अभी भी इन देशों ने परमाणु शक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया है । सी0टी0वी0टी0 पर दस्तखत करने का मतलब कुर्बानी होगी । भारत और अमेरिका के बीच मतभेद का एक प्रमुख बिन्दु यहीं है ।[2] भारत और अमेरिका के सम्बन्ध सबसे ज्यादा निक्सन एवं किसिंजर के कार्यकाल में खराब रहे । दरसल निक्सन एवं किसिंजर लगातार भारत को ध मकाते रहे । निक्सन के कार्यकाल में ही भारत पर नाभकीय हमले की जो धमकी अमेरिका ने दी उसी के चलते भारत ने अपना नाभकीय कार्यक्रम तेज किया और 1974 में परमाणु परीक्षण (पोखरण–1) किया। लेकिन नाभकीय कार्यक्रमों को लेकर अमेरिका लगातार धमकाता रहा । कहा जाता है कि उसी धमकी के मद्देनजर इन्दिरागांधी ने उस कार्यक्रम को धीमा कर दिया । अमेरिकी विदेशनीति की यह विशेषता रही है कि किसी भी देश में किसी भी मसले पर कभी भी किसी भी तरीके से हस्तक्षेप करना अमेरिका ने अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझ रखा है इसी कारण 1998 के भारत के परमाणु परीक्षणों

1. वी.एम. जैन पार्श्वोद्धृत पृ. 127 और जे.एन. दीक्षित आलेख–अमरउजाला लखनऊ 12 जून 2000
2. ब्रि. विजय के नायर – आलेख–सी0टी0वी0टी0 पर दस्तखत यानी अपने हाथ काट लेना (नाभिकयी मामलों के विशेषज्ञ) हिन्दुस्तान लखनऊ ।

(पोखरण–।।) के बाद अमेरिका ने भारत पर प्रतिबन्ध लगा दिया । यह पाबन्दी सिर्फ उसने ही नहीं लगायी, बल्कि अपने सहयोगी देशों जैसे फ्रान्स, ब्रिटेन, जापान आदि देशों पर भी प्रभाव डाला कि यह देश भारत पर पाबन्दियां लगाये । वैसे देखा जाय तो पिछले तीन दशकों से अमेरिका ने भारत पर तरह –तरह की पाबन्दियां लगायी है। उसकी सबसे बड़ी चिन्ता हमारे विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र के विकास को लेकर रही है । 1970 के दशक से उसने हमारे परमाणु क्षेत्र, मिसाइल टेक्नालाजी और कोई भी ऐसा क्षेत्र जहॉ टेक्नालॉजी नागरिक उपयोग के लिए भी हो, पर पाबन्दियों लगायी है ।[1] अमेरिका और भारत के बीच इस समय मुख्य रूप से दो ही मुद्दे मतभेद के है । सी.टी.वी.टी. और कश्मीर । कश्मीर मुद्दे पर अपनी सोची समझी रणनीति के माध्यम से पाकिस्तान की तुलना में भारत को नीचा दिखाना तथा दोनों देशों के राजनीतिक माहौल को गर्म रखना, ताकि उसकी आवश्यकता और अनिवार्यता निरन्तर बनी रहे। सी.टी. वी.टी. पर भारत को हस्ताक्षर कराने का जो दबाव विविध उपक्रमों के माध्यम से अमेरिका निरन्तर बनाता चला आ रहा है उसके पीछे उसका उद्देश्य यह है कि भारत अब तक की अपनी तमाम तकनीकी एवं परमाणुविक विशेषज्ञता को, जिसे उसने अपने असाध्य, अनवरत प्रयत्नों से अर्जित किया है, को भूल कर अमेरिकी अगुवायी में सज्जित भेदभाव की आधार शिला पर अवगठित मंच के सामने नतमस्तक हो जाय। यह भारत के लिए आत्मघाती कदम होगा । पचास सालों के राजनय से अर्जित विशेषज्ञता कदापि इसकी अनुमति नहीं देगी । इस विषय पर भारत का नीतिगत संकल्प संशय की परिधि पार कर चुका है । भारत की इस सन्धि को भेदभाव पूर्ण होने की उद्घोषणा तथा इस पर उसकी नीतिगत दृढ़ता ही अमेरिकी नेतृत्व वाली पश्चिमी शक्तियों की परेशानी का सबब बना हुआ है ।

निःशस्त्रीकरण के प्रति भारत का दृष्टिकोण और उसके परमाणु परीक्षण :–

विश्वशान्ति की दृष्टि से भारत निःशस्त्रीकरण को आवश्यक मानता है, अतएवं निःशस्त्रीकरण के लिए किए जाने वाले प्रयासों में, उसने निरन्तर सहयोग दिया है । संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत ने इस प्रश्न पर समय–समय पर अपने महत्वपूर्ण सुझाव रखे है । वह अठारह सदस्यीय निःशस्त्रीकरण आयोग का सदस्य भी है । 1963 में परमाणुविक निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण घटना घटी, जब ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ ने आंशिक परमाणुविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि पर हस्ताक्षर

1. प्रकाश करात–हस्तक्षेप–राष्ट्रीय सहारा लखनऊ 25.03.2000

करके वाह्य आकाश, वायुमण्डल तथा जल के भीतर परमाणु परीक्षण बन्द करने का निश्चय किया । यद्यपि भारत उस समय एक परमाणुविक शक्ति नहीं था, लेकिन शान्ति की दृष्टि से उसने इस सन्धि का स्वागत किया तथा इसके प्रति अपार उत्साह का प्रदर्शन करते हुए इस पर हस्ताक्षर कर दिया ।[1]

स्वतन्त्र भारत की विदेशनीति का विकास निम्नलिखित चरणों में विभाजित किया जा सकता है ।[2] उक्त चरणवार भारतीय परमाणु नीति की विवेचना सुविधानुसार अग्रलिखित रूप से की जा सकती है –

1. भारतीय विदेशनीति – नेहरू युग – (1947–1964)

जवाहर लाल नेहरू को विदेशनीति का सूत्राधार कहा जाता है । इस काल में भारत की परमाणु नीति एक पथ की थी, जिसका तात्पर्य भारत द्वारा परमाणु प्रौद्योगिकी का प्रयोग केवल शान्तिपूर्ण एवं विकास कार्यों के लिए करना था ना कि परमाणु शस्त्र के निर्माण के लिए ।[3]

2. भारतीय विदेशनीति – शास्त्रीयुग (1964– जनवरी 1966)

नेहरू के निधन के उपरान्त (27 मई 1964) श्री लाल बहादुर शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बने, और जनवरी 1966 में अपनी मृत्युपर्यन्त उन्होंने भारत की विदेश नीति का बड़ी कुशलता से संचालन किया । नेहरू के आदर्शवाद को दृष्टि में रखते हुए शास्त्री ने राष्ट्रीय हित की दृष्टि से यथार्थवादी नीतियॉ अपनायी । 16 अक्टूबर 1964 को चीन द्वारा परमाणु विस्फोट करने के बाद लाल बहादुर शास्त्री मन्त्रिमण्डल की सूचना मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक टेलीविजन भेंट में 22 अक्टूबर 1964 को कहा था कि भारत 18 माह के भीतर परमाणु बम बनाने की स्थिति में है ।

3. भारतीय विदेशनीति – 'इन्दिरा युग' (1966–1977)

श्रीमती गांधी ने महाशक्तियों की भ्रान्तियों को दूर करने के लिए भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में कूटनीतिक मंच पर प्रस्तुत करने के लिए विश्व में एक नई स्थिति पैदा करने का निर्णय लिया । जनवरी 1966 में प्रधानमंत्री बनने के बाद भारत की परमाणु नीति दोहरे पथ (Dual Track) की बन गई । इसके पीछे दक्षिण एशिया एवं इसके आस–पास के क्षेत्रों में बदलते सामरिक और सुरक्षा पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए भारत अपने परमाणु विकल्प को खुला रखेगा ।[4] भारत के वैज्ञानिकों ने

---

1. डी.एन. वर्मा पृ0 300 पार्श्वोद्धृत
2. वी. एल. फडिया, पार्श्वोद्धृत पृ. 318
3. वी.एम. जैन–पृ0 365 पार्श्वोद्धृत
4. वही पृ0 366

18 मई 1974 को प्रथम परमाणु परीक्षण करके विश्व राजनीति में भारत को एक महाशक्ति के रूप में खड़ा कर दिया ।

4. भारतीय विदेश नीति – 'जनता सरकार युग' (1977–1979)

कुछ लोगों के मतानुसार जनता सरकार के अधीन देश की विदेश नीति में मूलभूत परिवर्तन हुए । दूसरों के अभिमत में जनता और विगत कांग्रेशी सरकारों द्वारा अपनायी गयी विदेश नीति के स्वरूप में निरन्तरता है । यह बात पूर्ण रूप से भले ही न सही हो परन्तु परमाणु नीति में निरन्तरता पूर्णतयः सत्य है ।

5. भारतीय विदेश नीति – 'इन्दिरा गांधी ' (1980–1984)

दुवारा सत्ता में आने के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारतीय विदेश नीति को नई दिशा प्रदान करने, भारत को एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्रदान करने के अपने प्रयासों को सक्रिय किया ।[1] नेहरू के नेतृत्व में भारत ने 1963 की ''आणुविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि'' पर हस्ताक्षर कर दिये, जबकि यर्थाथवादी भूमि पर खड़े होकर भारत ने 1968 में 'अणु अप्रसार सन्धि' पर हस्ताक्षर करने से साफ इन्कार कर दिया।[2] भारत की परमाणु नीति इन्दिरा गांधी के काल में अस्पष्टता की नीति थीं । इस नीति को लेकर भारत की संसद, राजनीतिक दलों, राष्ट्रीय प्रेस एवं कुछ बुद्धिजीवी हल्कों में चर्चाए एवं मतभेद होते रहे ।

6. भारतीय विदेश नीति – 'राजीव युग' (अक्टूबर 1984 से नवम्बर 1989)

राजीव गांधी ने श्रीमती इन्दिरा गांधी की विदेशनीति का अनुशरण किया । इस काल में भारत की विदेश नीति में नवीनता एवं परम्परा का एक अच्छा मेल था ।[3] राजीव गांधी ने राष्ट्र के नाम अपने पहले प्रसारण में परमाणु युद्ध के खतरे को वर्तमान समय की 'सबसे बड़ी चुनौती' बताया । जनवरी 1985 में निःशास्त्री करण की समस्याओं पर विचार करने के लिए छः राष्ट्रो (भारत, अर्जेण्टाइना, स्वीडन, युनान, मैक्सिको और तंजानिया) का शिखर सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया गया, जिससे परमाणु अस्त्रों को

---

1. वार्षिक रिपोर्ट 1981–82 विदेश मंत्रालय भारत सरकार दिल्ली
2. वी.एल. फडिया पृ. 327 पार्श्वोद्धृत
3. वी.एन. जैन पृ. 298 पार्श्वोद्धृत

सदा के लिए खत्म कर देने की सिफारिस की गयी । पाकिस्तान द्वारा निर्मित परमाणु योजना के परिपेक्ष्य में उन्होंने कहा कि ''भारत के पास पिछले 10 वर्षों से परमाणु बम बनाने की क्षमता है, लेकिन हमने अपने सिद्धान्तों के कारण ही परमाणु बम के विकास की दिशा में कोई कार्य नहीं किया है ।[1]

7. भारतीय विदेश नीति – वी0पी0 सिंह–चन्द्रशेखर युग' (दिसम्बर 1989 –जून 1991)

दिसम्बर 1989 में वी0पी0 सिंह के नेतृत्व में और नवम्बर 1990 में चन्द्रशेखर के नेतृत्व में अल्पमतीय सरकार केन्द्र में सत्तारूढ़ हुई । इस काल में भारत की परमाणु नीति पूर्ववत जारी रही ।

8. भारतीय विदेश नीति– 'पी0वी0 नरसिम्हा राव युग' (जून 1991 से मई 1996 तक)

नरसिम्हाराव ने दिसम्बर 1991 में घोषणा की कि – उनकी सरकार विदेश नीति को राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने के लिए एक ''गतिशील साधन'' के रूप में प्रयुक्त करेगी ।[2] इस काल में पश्चिमी देशों का भारत पर निरन्तर दबाव रहा कि वह अणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर करें । भारत निरन्तर इस बात की मांग करता रहा कि अणु प्रसार सन्धि के सम्बन्ध में तर्कपूर्ण संवाद आरम्भ किया जाय तथा इस बात पर बल देता रहा कि इसका क्षेत्र विस्तार 1963 की आंशिक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि की भूमिका के अनुरूप होना चाहिए, जिसमें नाभकीय अस्त्रों के हर तरह के परीक्षण पर हर परिस्थिति और हर काल में पूर्ण प्रतिबन्ध होना चाहिए । प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव का स्पष्ट मत रहा कि अणु अप्रसार सन्धि के प्रावधानों पर पुनर्विचार और इसमें संशोधन किया जाना चाहिए, ताकि अप्रसार के सम्बन्ध में यह एक सार्वभौम और भेद–भाव से मुक्त व्यवस्था बन सके ।[3]

9. भारतीय विदेश नीति – 'अटल बिहारी वाजपेयी युग' (मई 1996)

श्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार लगभग 13 दिन के लिए मई 1996 में सत्तारूढ़ हुई। 24 मई 1996 को संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में प्रस्तुत राष्ट्रपति के अभिभाषण में वाजपेयी सरकार की परमाणु नीति का उल्लेख मिलता है । परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण इस्तेमाल की प्रतिबद्धता पर

---

1. वी.एल. फड़िया पृ0 332 पाश्वोद्धृत
2. वी.एम. जैन पृ. 304 पाश्वोद्धृत
3. वी.एल. फड़िया पृ0 336 पाश्वोद्धृत

जोर देते हुए राष्ट्रीय हितों के परिपेक्ष्य में आवश्यक होने पर हमारी परमाणु नीति के पुनर्मूल्यांकन पर जोर दिया गया । भारतीय जनता पार्टी ने अपने चुनावी घोषणा पत्र में परमाणु विकल्प के उपयोग की बात कहीं थी, परन्तु भाजपा सरकार अत्यल्प समय के कारण परमाणु विकल्प के उपयोग सम्बन्धी कोई फैसला नहीं कर पायी ।

10. भारतीय विदेश नीति – 'देवगौड़ा–गुजराल युग' (जून 1996 से मार्च 1998 तक)

व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (CTBT : Combrehensive Test Ban Tracty) विश्व भर में किए जाने वाले परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के उद्देश्य से लायी गयी सन्धि या समझौता है, जिसका 1993 में भारत अन्य देशों के अलावा अमेरिका के साथ सह–प्रस्तावक था, लेकिन 20 अगस्त, 1996 को भारत ने जेनेवा में इस विवादास्पद सन्धि के मसौदे को औपचारिक रूप से वीटो भी कर दिया। सी0टी0वी0टी0 पर भारत ने अपना विरोध दर्ज करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह सन्धि परमाणु हथियारों को पूरी तरह समाप्त करने के लक्ष्य को पूरा नहीं कर रही है, इसलिए इस सन्धि के वर्तमान स्वरूप पर वह हस्ताक्षर नहीं करेगा ।[1] प्रधानमंत्री देवगौड़ा और तत्पश्चात प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने भारत के परमाणु विकल्प को खुला ही रखा ।[2] भारत के हस्ताक्षर के बिना सी0टी0वी0टी0 का यह मसौदा एक पाखण्डी सन्त का निष्प्रभ उपदेश मात्र बन कर रह जाएगा और उसकी कोई कानूनी वैधता नहीं होगी । संयुक्त राष्ट्र महासभा में इस सन्धि पर मतदान में बहस के दौरान अनेक देशों ने भारत द्वारा उठाई गई आपत्तियो को सही बताया, विशेषकर ईरान, क्यूबा और जिम्बाब्वे ने तो खुलकर भारतीय रूख के समर्थन किया ।[3] 52वेंश अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए परमाणु शस्त्रों पर भारत के पूर्व दृष्टिकोण को दृढ़ता से रखा और प्रधान मंत्री गुजराल ने भारत के परमाणु विकल्प को खुला ही रखा ।

11. भारतीय विदेश नीति–"अटल बिहारी वाजपेयी युग"(1998 से अब तक)

मार्च 1998 में भाजपा के नेतृत्व में बनी केन्द्रीय सरकार राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रही थी, गठबन्धन सरकार में पारस्परिक फूट, खींचातानी टकराव के कारण वाजपेयी सरकार स्वयं

1. वी. एल. फडिया, पार्श्वोद्धृत पृ. 339
2. वी.एम. जैन, पार्श्वोद्धृत पृ. 366
4. वी. एल. फडिया, पार्श्वोद्धृत पृ. 340

को असुरक्षित महसूस कर रही थी । ऐसी परिस्थिति में प्रधान मंत्री वाजपेयी ने परमाणु विकल्प का उपयोग करते हुए भारतीय वैज्ञानिकों को परमाणु हथियार के परीक्षण की अनुमति दे दी । 11 व 13 मई 1998 को भारत ने पाँच बहुउद्देश्यीय परमाणु विस्फोट सफलतापूर्वक किए । इसके प्रत्युत्तर में पाकिस्तान ने चग्धाई (Chaghai) में छः परमाणु परीक्षण कर भारत को यह दिखाने का प्रयास किया कि वह सामरिक दृष्टि से भारत के समकक्ष हो गया है ।[1] 13 मई 1998 को राजस्थान के पोखरण में ही दो और भूमिगत परमाणु परीक्षणों के बाद केन्द्र सरकार ने परमाणु परीक्षणों की वर्तमान श्रृंखला–पोखरण–।। की समाप्ति की घोषणा कर दी ।[2] भारत के परमाणु परीक्षणों की 14 मई 1998 को सुरक्षा परिषद ने निन्दा की । अमेरिका, ब्रिटेन, जापान और फ्रान्स तथा जी–8 के देशों ने भी तीव्र निन्दा की और भारत के खिलाफ आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने की जोरदार अपील की । 15 मई 1998 को एक पत्रिका के साथ साक्षात्कार में नई दिल्ली में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा कि–भारत एक परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है और इसमें कोई दुविधा की बात नहीं है ।[3] प्रधानमंत्री ने मई 98 में भूमिगत परमाणु परीक्षण पोखरण–2 को राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से न्यायोचित ठहराया । 27 मई 1998 को प्रधानमंत्री वाजपेयी ने संसद में बोलते हुए कहा कि सर्वप्रथम इस सदन को हमारे वैज्ञानिकों, इंजीरियरों और प्रतिरक्षा कर्मियो को बधाई देनी चाहिए, जिनकी उपलब्धियों ने राष्ट्रीय गौरव और आत्मविश्वास को बढ़ाया है । उन्होंने कहा कि परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर न करने का हमारा निर्णय मूलभूत उद्देश्यों से जुड़ा हुआ था ।[4] 1980 और 1990 के दशकों में परमाणु और प्रक्षेपास्त्र फैलाव के कारण हमारा सुरक्षा माहौल बिगड़ता गया । हमारे पड़ोस में परमाणु हथियारों की वृद्धि हुई, एवं भारत बाह्य शक्तियों द्वारा समर्थित आंतकवाद, उग्रवाद का शिकार बना । इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारत को ऐसा कठिन निर्णय लेना पड़ा । उन्होंने कहा कि–भारत एक परमाणु शस्त्र राज्य है, इस वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता । भारत ने यह जो ओहदा (Status) प्राप्त किया है उसे अन्य देशों द्वारा स्वीकृति की जरूरत नहीं है, परन्तु हमारा इरादा इन हथियारों का उपयोग कर किसी भी देश के खिलाफ आक्रमण करना नहीं है । यह हथियार आत्मरक्षा के लिए है जो यह सुनिश्चित करता है कि भारत किसी भी परमाणु चुनौती एवं दबाव में न आये हमारा

---

1. वी.एम. जैन पृ. 367 पाश्वोद्धृत
2. भारत 1999 पृ. 884 पाश्वोद्धृत
3. वही पृ. 884
4. सी.वी. मुथम्मा–परमाणु परीक्षण सही कदम–पालिटिकल इण्डिया अगस्त 1998 पृ.पृ. 38–42
5. Foreign affairs Record, Vol. XLIV, No.-5 May 1998 P.P. 41-42 दिल्ली

भारतीय परमाणु सिद्धान्त

राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहाकार बोर्ड की ओर से भारत के परमाणु सिद्धान्त के प्रारूप की घोषणा 17 अगस्त 1999 में की गयी है । सलाहाकार बोर्ड के सभी 27 सदस्यों ने इस पर अपनी सहमती दे दी है। अटल बिहारी वाजपेयी भारत के पहले प्रधानमंत्री है जिन्होंने परमाणु सिद्धान्त की घोषणा सरकारी स्तर पर की है । परमाणु सिद्धान्त के प्रमुख तत्वों में – भारत की ओर से परमाणु प्रहार न करना, न्यूनतम परमाणु प्रतिरोधन (Minimum Nuclear Deterrence) तथा निःशस्त्रीकरण शामिल है । राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहाकार बोर्ड ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है कि भारत का प्रमुख उद्देश्य शान्तिपूर्ण एवं लोकतांत्रिक ढॉचे के अन्तर्गत–आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक विकास को प्राप्त करना है ।[1]

परमाणु अप्रसार सन्धि (NPT) व्यापक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (CTBT) तथा (FMCT) पर

भारत का दृष्टिकोण :–

सैद्धान्तिक दृष्टि से भारत परमाणु निःशस्त्रीकरण एवं समग्र परीक्षण निषेध व्यवस्था का सदैव समर्थन करता आ रहा है, परन्तु भारत अपने इस दृष्टिकोण को विश्व समुदाय के समक्ष दोहराता आ रहा है कि वह परमाणु अप्रसार सन्धि (सी0टी0वी0टी0) का विरोध इस आधार पर कर रहा है कि ये सन्धियाँ एक भेदभाव रहित अप्रसार व्यवस्था के निर्माण में सहमित नहीं है । एन0पी0टी0 जो जुलाई 1995 के बाद अनिश्चितकालीन हो गयी है । भेदभाव पूर्ण होने के आधार पर भारत ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इंकार किया । जिनेवा में (C.T.B.T.) के प्रारूप पर अन्तिम बहस (अगस्त 1996) के दौरान भारत ने (C.T.B.T.) के प्रारूप पर हस्ताक्षर करने से मनाकर दिया जिसके निम्न कारण थे –

(1) भारत सी0टी0वी0टी0 के उस प्रावधान का विरोधी है जिसके अन्तर्गत यह शर्त लगाई गई है कि जब तक भारत, पाकिस्तान और इज्राईल इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करते तब तक यह सन्धि लागू नहीं मानी जायेगी ।

(2) भारत का कहना है कि इस में परमाणु शस्त्रों को नष्ट करने के सम्बन्ध में कोई निश्चित समय अवधि का उल्लेख नहीं किया गया है ।

---

1. वी.एम. जैन पृ. 368 पार्श्वोद्धत तथा सिविल सर्विसेस क्रानिकल नवम्बर 1999 पृ. 24

समय अवधि का उल्लेख नहीं किया गया है ।

(3) यह सन्धि भेदभावपूर्ण है अर्थात भारत जब तक सार्वभौतिक परमाणु निःशस्त्रीकरण की दिशा में परमाणु शस्त्र देश कोई ठोस कदम नहीं उठाते, वह इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं करेगा ।[1]

13 मई 1998 के भारत के पोखरण–2 परमाणु विस्फोटो तथा 15 मई 1998 को प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की भारत को परमाणु शस्त्र राष्ट्र की घोषणा के बाद भी तथाकथित परमाणु राष्ट्र इस ध्रुव सत्य को साशय मानने से इन्कार कर रहे है कि भारत भी एक परमाणु शस्त्र शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है। विश्व की पॉच परमाणु शक्तियाँ जहॉ दुनिया को परमाणु अप्रसार की सीख देती है वही दुसरी ओर 1945 के बाद से उन्होंने हर नौ दिन में एक के औसत से परमाणु परीक्षण किये है । परमाणु विषयों की एक अग्रगणी अमेरिकी पत्रिका के अनुसार 1945 के बाद से दुनिया में कम से कम 2046 ज्ञात परमाणु परीक्षण हुए है । इनमें से 85% परीक्षण अमेरिका तथा पूर्व सोवियत संघ द्वारा किये गये है ।[2] भारत को सी0टी0बी0टी0 पर हस्ताक्षर करवाने को बेताब राष्ट्रों की स्वयं की स्थिति को अग्रांकित सारणी से आसानी से समझा जा सकता है[3] –

1945 से 1992 तक किए गये परमाणु विस्फोट

विश्व स्तर पर परमाणुविक गतिविधियाँ।

	सं.रा. अमेरिका	रूस/पूर्व सोवियत संघ	ब्रिटेन	फ्रान्स	चीन	भारत	पाकिस्तान
परीक्षणों की संख्या –	1032	715	475	210	44	6	6
प्रथम विखण्डन, परीक्षण –	16 जुला. 1945	19 सि. 1949	3अग. 1952	13फ. 1960	16अक्टू.1964	18मई 1974	28 मई 1998
प्रथम नाभिकीय संलयन – (हाइड्रोजन बम)	13अक्टू. 1952	22न0 1955	8नव.1957	24अग.1988	17जून1967	11मई 1998	–
प्रथम भूमिगत परीक्षण –	26जुला. 1957	2फर. 1962	1मार्च.1962	7नव. 1961	22न.1961	18 मई 1974	28 मई 1998
परमाणु युद्धागो की संख्या –	8711	6833	200	524	450	25–65	15–20

इस हिसाब से अमेरिका ने हर 18 दिन पर, सोवियत संघ ने हर 22 दिन पर, फ्रान्स ने हर 57 दिन पर, चीन ने हर 279 दिन पर और ब्रिटेन ने हर 340 दिन पर एक परमाणु परीक्षण किया है । 1992 में दुनिया में कुल आठ परमाणु परीक्षण किये गये, इनमें से अमेरिका ने 6 और चीन ने दो परीक्षण किया जबकि अकेल मई 1998 में ही भारत और पाकिस्तान में ही कुल 11 परमाणु परीक्षण किये है ।[4] परमाणु

1. वी.एम.जैन पृ. 369 पार्श्वोद्धृत और पी.के. आयंगर–इण्डिया टूडे 11 नवम्बर 1998 पृ. 47
2. वी.एल.फडिया पृ. 461 पार्श्वोद्धृत
3. वही पृ. 461 तथा परीक्षा मंथन भाग–3, 1998–99 पृ. 167

अप्रसार सन्धि की असफलता के प्रमुख कारणों में परमाणु शक्तियों की राजनीतिक एवं व्यापरिक नीतियों में विरोधाभाष होना भी एक प्रमुख कारक रहा है । आज दुनिया में शस्त्रों का सबसे बड़ा व्यापारी देश है अमेरिका जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध में 3,637 अरब रूपये की युद्ध सामाग्री विदेशों में बेची । अमेरिकी ही अप्रसार सन्धि पर भारत को हस्ताक्षर करवाने के लिए सबसे ज्यादा बेताब भी है । दूसरा क्रम इग्लैण्ड का है । वर्तमान समय में भी अमेरिका नम्बर एक तथा रूस दूसरे स्थान पर है । हथियारों के इस व्यापार और उससे निरन्तर बढ़ रही हथियारों की होड़ ने न केवल गरीब देशों की अर्थव्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया बल्कि भारत और पाकिस्तान जैसे देशों को परमाणु शस्त्र राष्ट्र बनने को उत्प्रेरित भी किया ।

विश्व स्तर पर परमाणुविक स्थिति को और अच्छे तरीके से समझने में अग्रांकित सारणी भी सहायक होगी ।–[1]

परमाणु हथियारों पर विश्वस्तरीय देशों की स्थित		
1.	घोषित परमाणु शस्त्र क्षमता वाले देश–	सं.रा. अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रान्स, चीन, रूस, भारत व पाकिस्तान ।
2.	अघोषित परमाणु शस्त्र क्षमता वाले देश – इज्राइल	
3.	गुप्तरूप से परमाणु शस्त्र कार्यक्रम चलाने वाले देश–	उत्तरी कोरिया और लीबिया ।
4.	परमाणु शस्त्र कार्यक्रम को रद्द कर देने वाले देश–	अल्जीरिया, ब्राजील, अर्जेटीना, द0अफ्रीका, वेला रूस उक्रेन, कजाखतान ।

11 और 13 मई 98 को शक्ति आपरेशन के अन्तर्गत पोखरण उपखण्ड के खेतोलोई गांव से मात्र दो किलोमीटर दूर किये गये पॉच परमाणु परीक्षणों की अनुगूंज से न केवल भारतीय वैज्ञानिको की मेघा से विश्व को परिचित कराया बल्कि भारत को छठी परमाणु शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित भी किया । साथ में एक ही दिन बल्कि कुछ ही सेकेण्ड के अन्तर से लगातार तीन विस्फोट करने वाला भारत विश्व का

1. परीक्षा मंथन भाग–3, 1998–99 पृ. 168

पहला देश भी बना ।[1]

आपरेशन शक्ति 98 के तहत किये गये परमाणु परीक्षणों के प्रकार एवं क्षमता

क्र0 सं0	प्रक्रिया	परीक्षण तिथि	क्षमता	उद्देश्य
1.	विखण्डन प्रक्रिया –	11 मई 1998	15 किलोटन	छोटे परमाणु बम हेतु बूस्टर सलयन
2.	ताप नाभिकीय संलयन प्रक्रिया –	11 मई 1998	45 किलोटन	हाइड्रोजन बम हेत
3.	अल्प ऊर्जा उत्सर्जक प्रक्रिया –	11 मई 1998	0.2किलोटन	सामान्य परीक्षण
4.	अल्प ऊर्जा उत्सर्जक प्रक्रिया –	13 मई 1998	0.3किलोटन	माइक्रो परमाणु बम हेतु
5.	अल्प ऊर्जा उत्सर्जक प्रक्रिया –	13 मई 1998	0.5 किलोटन	मिनी परमाणु बम हेतु

1. परीक्षा मंथन भाग-3, 1998-99 पृ. 168

अध्याय–5

भारत और ईरान आर्थिक सम्बन्ध

भारतीय अर्थव्यवस्था को एक विकासशील अर्थव्यवस्था माना जाता है । यहाँ प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन एवं जनशक्ति विद्यमान है । लेकिन उसका समुचित दोहन नहीं हो पाता । आजादी के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में मात्रात्मक दृष्टि से संवृद्धि के अलावा महत्वपूर्ण ढाँचागत परिवर्तन भी हुए है, लेकिन उसकी गति काफी धीमी रही है । यद्यपि आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था पिछड़ी है, लेकिन अब यह गरीबी के कुचक्र के बाहर है ।[1] भारत की अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थ व्यवस्था है, जिसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों मिलकर कार्य करते है । भारत में आर्थिक नियोजन का श्रीगणेश स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व से ही हो चुका था । सन 1934 मे सर एम0 विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक Planned Economy for India में भारत मे आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को रेखांकित किया था । 1938 मे जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता मे एक राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया गया ।[2] 1944 मे मुम्बई योजना, अप्रैल 1944 मे M.N. Rai की जन योजना तथा 1944 मे ही मन्नारायण अग्रवाल की गांधीवादी योजना की अवधारणा प्रस्तुत की गयी, परन्तु ये सभी योजनाए कागजी ही थी और इन्हे कार्यरूप मे नही परिणित किया जा सका । 30 जनवरी 1950 को जय प्रकाश नारायण ने सर्वोदय योजना की अवधारणा प्रस्तुत की । इसे भी पूर्णरूप मे नही स्वीकार किया गया, परन्तु इसमे निहित कुछ सिद्धान्तो को अवश्य स्वीकारं कर लिया गया । वैसे इन सब से पूर्व 1906 मे प्रकाशित अपने "प्रापर्टी ऑफ इण्डिया" नामक लेख मे दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश सरकार की कटु आलोचना की थी और कहा कि उसकी आर्थिक नीतियों के कारण ही भारत गरीब बन रहा है । स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान नियोजन के विचार राष्ट्रीय

1. क्रानिकल–ईयर बुक–1998 पृ. 411
2. परीक्षा मंथन संयुक्तांक–7 व 8 पृ. पृ. 363–66, 1997–98

नेताओ के मस्तिष्क में बराबर रहते थे । सोवियत रूस मे नियोजन की अभूतपूर्व सफलता के कारण भारतीय नेताओ को पूर्ण विश्वास हो गया था कि देश की गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करने के लिए नियोजन के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नही है ।[1] आर्थिक नियोजन को वास्तविक रूप देने के लिए 15 मार्च 1950 को योजना आयोग का गठन किया गया । जिसका प्रमुख कार्य भारत में योजना की रूपरेखा तैयार करना व उसे क्रियान्वित करना है । योजना आयोग के क्रम में राष्ट्रीय विकस परिषद की स्थापना 6 अगस्त 1952 को की गई जिसका अध्यक्ष भारत का प्रधान मंत्री होता है तथा राज्यों के मुख्यमंत्री इसके सदस्य होते हें । भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत प्रत्येक 5 वर्ष के लिए एक वित्त आयोग का गठन किया जाता है ।[2] इसी के अनुरूप प्रत्येक राज्य का अपना अलग से राज्य योजना आयोग होता है । इन्हीं आधारभूत संस्थाओं की देखरेख में सम्पूर्ण भारतीय अर्थतन्त्र संचालित होता है । ईरान के इतिहास को देखे तो पता चलता है कि द्वितीय विश्व युद्ध के वाद वह अमेरिकी विदेश नीति का क्रीड़ा क्षेत्र बन गया, जहॉ से सोवियत संघ के विस्तार वाद पर नियंत्रण रखने और खाड़ी में अमेरिका के हितो की देख–रेख करने का अड्डा बनाया गया । 1979 में जनक्रान्ति द्वारा शाह का तख्ता पलट दिया गया और पहलवी वंश का अन्त करके इस्लामी गणराज्य की स्थापना होने तक ईरानी अर्थव्यवस्था संचालन हेतु कोई नियोजन ढॉचा नहीं था । अयातुल्लाह खुमैनी के कार्यकाल में ईरानी अर्थ तन्त्र भी इस्लामिक रिवाजों के अनुरूप संचालित होता रहा । बजट और नियोजन राशि तथा नियोजन तन्त्र का कोई स्पष्ट संस्थान नहीं था । आज ईरान का अपना नियोजन तन्त्र है भारतीय अर्थव्यवस्था के संचालन की तरह ईरानी अर्थव्यवस्था की एक सुस्पष्ट योजना होती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था एक मिश्रित अर्थव्यवस्था है, अर्थात् सरकार ने सार्वजनिक या निजी क्षेत्रों में उद्योगों की प्रोन्नति हेतु क्षेत्रों का निर्धारण किया है । उक्त दोनों क्षेत्रों के समुचित विकास के लिए आर्थिक आयोजना को बनाया गया है । स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पूर्व एक ओर जहॉ भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक पिछड़ेपन के कुचक्र में झूल रही थी, वही स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आयोजना काल में देश का औद्योगिक

---

1. खन्ना एवं वर्मा– उपकार सामान्य ज्ञान पृ. 105 उपकार प्रकाशन 1992–आगरा
2. आर.सी.जैन–उपकार सामान्य ज्ञान दिग्दर्शन, पृ.पृ. 125ए–26ए, आटोमेटिक प्रिंटिंग प्रेस मथुरा पंचम संस्करण–1993

ढॉचा पहले से अधिक मजबूत हुआ । आधारभूत आर्थिक संरचना अधिक सशक्त और विस्तृत हुई है तथा कृषि के क्षेत्र में अनेक संस्थागत एवं तकनींकी सुधार हुए है । आयोजना काल के प्रभावाधीन भारतीय अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे आर्थिक विकास और आय के उच्च स्तर की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रही है, तथा आने वाले वर्षों में भी विकास की यह प्रक्रिया जारी रहने की पूर्ण आशा है ।[1] भारत कृषि प्रधान देश है। यहाॅ 5.5 लाख गॉव है । यहाॅ के 76.69% लोग गॉव में रहते है तथा 66.52% लोग खेती का व्यवसाय करते है । ईरान में भी कृषि यहाॅ के लोगों का प्रधान व्यवसाय है । भारत के अनुरूप यहाॅ भी मुख्य फसलों में गेहूॅ, जौ, चावल, फल, ऊन तथा चुकन्दर है ।[2] ईरान सर्वाधिक तेल उत्पादक देशों में से एक है । तेल का ईरानी अर्थव्यवस्था में प्रमुख योगदान है । विदेशी मुद्रा तेल के माध्यम से ईरानी अर्थ संरचना में सर्वाधिक अंशदान करती है । खनिज सम्पदा की दृष्टि से भारत एवं ईरान सम्पन्न राष्ट्र है । यहाॅ पर्याप्त मात्रा में अनेक खनिजों के प्रचुर भण्डार है । अभ्रक, मैंगनीज आदि खनिजों का भारत निर्यात भी करता है । भारतीय अर्थव्यवस्था में खनिजों का योगदान व अंशदान प्रमुख स्थान रखता है ।[3] ईरान भी प्रमुख खनिज भण्डारों वाला देश है । यहाॅ की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख भाग खनिजों पर ही आधारित है यहाॅ पर्याप्त मात्रा में खनिजों का उत्खनन होता है । खुरासान तथा केरमान में रत्न तथा बहुमूल्य पत्थर मिलते है जो विदेशी मुद्रा को लाकर अर्थव्यवस्था में एक बड़ा अंशदान करते है । ईरान पेट्रोलियम पदार्थों का, कपास, कालीन आदि का निर्यात करता है । औद्योगिक संस्थान भारत की ही तरह ईरानी अर्थव्यवस्था के आधार स्तम्भ है । ईरान में भी औद्योगिक स्वरूप मिश्रित प्रकार का है । भारत की तरह ईरानी का औद्योगिक स्वरूप निजी एवं सरकारी दो स्वरूपों में वर्गीकृत है । रेल भी दोनों देशों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । भारत में रेल की शुरूवात 1853 ई0 में तथा ईरान में 1917 में हुई । भारतीय रेल व्यवस्था विश्व की रूस के बाद सर्वाधिक बड़ी व्यवस्था है, भारतीय अर्थव्यवस्था में रेल का बहुत बड़ा अंशदान है । ईरान में इतने बड़े स्वरूप में रेल संरचना नहीं फैली है पर इतना अवश्यक है कि रेल ईरानी अर्थतन्त्र का प्रमुख भाग है । कमोवेश थोड़े बहुत अन्तरों के बाद भारतीय एवं ईरानी अर्थव्यवस्था का स्वरूप

1. क्रानिकल ईयर बुक 1998 पार्श्वोद्धृत
2. आर.सी. जैन- पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 255-27
3. वहीं

एक जैसा है । विश्व के घटनाक्रम से लगभग दोनों देशों का अर्थतन्त्र प्रभावित होता है ।

ईरान के इतिहास को देखे तो पता चलता है कि वह विश्व युद्ध के बाद लगातार अमेरिकी असर में रहा है । ईरान की धरती का उपयोग अमेरिका अपने हित साधन के लिए निरन्तर करता रहा । इसके बदले में अमेरिकी धन का कुछ अंश समय–समय पर ईरान को मिलता रहा है । शाह पहलवी द्वितीय की अमेरिका परस्त नीति की जनता में प्रतिक्रिया भी प्रारम्भ हुयी थी ।[1] अमेरिका की ईरान में इस उपस्थिति का उसकी अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था । फिर भी ईरानी अर्थतन्त्र उसरूप में डावा डोल नहीं हुआ जैसा 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के बाद अर्थ संकट आया । इसके पीछे प्रमुख रूप से कड़े इस्लामिक नियम कानून ही जिम्मेदार रहे । आयतुल्लाह खुमैनी के शासनकाल में विशेष जोर इस्लामिक नियमों के कठोरता से पालन करने पर था ।[2] जो अर्थव्यवस्था के लिए प्रतिकूल था क्योंकि नियमों के मुताबिक तत्कालीन ईरान के वैदेशिक सम्बन्धों की सीमा निर्धारित थीं। तमाम विश्व में ईरान का वैदेशिक व्यवहार अत्यन्त सीमित था । यहॉ यह उल्लेख कर देना अप्रसांगिक न होगा– वहॉ के संविधान में जो 1979 की इस्लामिक क्रान्ति के बाद लागू किया गया था – सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न धर्मगुरू अथवा आध्यात्मिक नेता का पद है । फरवरी 1979 से इस पद पर अयातुल्लाह खुमैनी ही अपनी मृत्यु तक (जून 1989) आसीन रहे और सर्वशक्तिमान बने रहे । उनकी अनुमति के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता था। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दोनों ही खुमैनी से आज्ञा लेकर काम करते थे ।[3] जून 1989 में खुमैनी के निधन के वाद कट्टरता कम हुई। हाशमी रफसंजानी ने अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु प्रभावी कार्यवाही आरम्भ की । रफसंजानी सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था पर ताकतवर इस्लामी मार्ग दर्शक मंत्रालय की पकड़ को ढ़ीली करना, ज्यादा से ज्यादा विदेशी पूँजी निवेश कानून को बदलना, दक्षिण ईरानी द्वीपों पर 'मुक्त व्यापार' क्षेत्र बनाना तथा ईरान के निजी क्षेत्र द्वारा अर्थ व्यवस्था में भागीदारी को बढ़ाना आदि अनेकों कदम अर्थव्यवस्था में सुधार हेतु उठाये ।[4] इस्लामिक कड़े कानूनों की पाबान्दियों की ऐसी दहसत थी कि ईरान के व्यापारिक समुदाय को अभी भी विश्वास नहीं था कि सरकार अपनी उदार योजनाओं पर अमल करेगी।

1. जितेन्द्र कुमार सिंह – राष्ट्रीय सहारा लखनऊ – 25.02.2000
2. क्रानिक[illegible]त्रिका – अगस्त 1997
3. जगमोहन माथुर– हिन्दुस्तान टाइम्स लखनऊ 2902.2000

उसे इस बात का डर था कि उदारता का प्रचार करते करते सरकार एक बारगी डण्डा न उठा ले । फिर विरोधाभासी नियम, चौतरफा भ्रष्टाचार और अयोग्य सरकारी अमले के कारण निजी क्षेत्र की तीव्रगति से भागीदारी सम्भव नहीं हो पायी । इन तमाम प्रयासों के माध्यम से हासमी रफसंजानी ने ईरान की अर्थव्यवस्था को नया जीवन देते हुए विकास की डगर पर अग्रसर किया । पंचवर्षीय आर्थिक योजनाओं के माध्यम से अर्थतन्त्र को सुधारने का पूर्ण प्रयत्न किया। इन्हीं आर्थिक सुधारों की ही खातिर रफसंजानी ने अपनी राह बदल कर दक्षिणपंथी रास्ता पकड़ लिया और जोर शोर से सुधारवादी नीतियों की वकालत करने लगे । युद्ध के दुष्प्रभावों से त्रस्त जनता इन सुधारें की ओर तेजी से आकर्षित हुई और रफसंजानी ने भी समझ लिया कि जब तक देश में बाहरी पूँजी नहीं आयेगी, अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना मुमकिन नहीं होगा । इसीलिए वे बड़े जोशो खरोश के साथ खुले बाजार की अर्थ प्रणाली का प्रचार करने लगे और जब वे सत्ता में आये तो उन्होंने उद्योग तन्त्र वादियों को ही चुन चुनकर अपनी सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित किया लेकिन वे उनका विश्वास नहीं जीत सके ।[1]

थोपे हुए युद्ध और श्री रफसंजानी के ईरान गणराज्य का राष्ट्रपति चुने जाने के बाद पुर्नसंरचना व देश की अर्थ व्यवस्था को गठित करने वाला युग शुरू हुआ । इस नये युग में तकनीकी प्रशासन विदो द्वारा सुझाये हुए हलो को इस्तेमाल में लाते हुए, विश्व तन्त्र के अनुसार, तथा देश की इस्लामिक स्वतन्त्रता के गुणों के ढॉचे को सुरक्षित रखते हुए, इस देश के आर्थिक स्वरूप में मूल भूत परिवर्तन होने शुरू हो गये ।[2] इस्लामिक क्रान्ति के मद्देनजर ईरान का आर्थिक ढॉचा कठोर व स्थिर परिवर्तनां से होकर गुजरा है । इस्लामिक क्रान्ति के विजयोपरान्त की घटनाओं, आठ वर्षों के युद्ध के बढ़ते हुए खर्चो के लिए आवश्यक फण्ड, तेल के मूल्यों में गिरावट, विदेशी विनिमय में कमी, जो देश के विरूद्ध, अर्न्तराष्ट्रीय आर्थिक प्रतिबन्धों की वजह से पैदा हुई, कुशल कारीगरों द्वारा उत्प्रवास, ईरान में अफगान शरणार्थियों का आप्रवास, सरकार का प्राइवेट सेक्टर (निजी क्षेत्र) में आर्थिक हस्तक्षेप, जिसमें कई उत्पाद इकाइयों का राष्ट्रीकरण तथा निजी क्षेत्र को अलग कर दिया जाना जैसे प्रमुख कारणों की वजह से ईरान की आर्थिक

1. जेम्स वाल्स–आलेख –माया पत्रिका –हिन्दी संस्करण 15 जून 1993
2. ए.शेख अख्तर– इनकन्टेम्प्रेरी ईरान एण्ड इमरजिंग इण्डो ईरान रिलेशन्स (सम्पा.) ग्रिजेश पन्त व अन्य जे.एन.यू., दिल्ली –1994

दशा बुरी तरह से प्रभावित हुई ।[1] सामान्य रूप से ईरान की अर्थव्यवस्था कुछ समय को छोड़कर, जब इसने कुछ प्रगति दर्ज कराई, पिछले दशक में कमजोर हुई । राष्ट्रपति रफसंजानी प्रशासन के चुनाव के बाद ईरान गणराज्य की प्रथम पंच वर्षीय आर्थिक और सामाजिक विकास योजना (1989–1994) का शुभारम्भ देश की आर्थिक व्यवस्था की पुनर्सरंचना व उसमें सुधार के उद्देश्य से किया गया । योजना ने ईरान की अर्थव्यवस्था व इसके औद्योगिक क्षेत्र, विशेषकर विकास की योजनाओं के उद्देश्यों में, आर्थिक एवं विदेशी व्यापार, निजीकरण, मूल्य नियंत्रण, सब्सिडी युक्त उपज को छूट करना, एकल समानदर का प्रवर्तन, जो मुद्रा प्राप्ति के लिए आवश्यक था, तथा जो अर्थ व्यवस्था और विदेशी व्यापार के लिए, युद्ध में क्षतिग्रस्त क्षेत्रों की उन्नति के लिए आवश्यक था तथा श्रोत्रों की अधिकतम उपयोगिता, विकास योजना जैसा की सामने रखा गया एवं कुछ क्षेत्रों में अपनी समय सारणी को लाधने का काम किया है ।[2] ईरान–इराक युद्ध जो वीसवीं सदी का सबसे लम्बा युद्ध था, ने ईरानी अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया । 22 सितम्बर 1980 को इराक ने ईरान के खुर्रम शहर पर आक्रमण कर दिया । यह युद्ध 8 वर्ष तक चला । संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष प्रयास से युद्ध विराम हुआ । हथियारों की खरीद में ही ईरानी अर्थतन्त्र की गाड़ी पटरी से नीचे उतर गयी ।[3]

1989 में हठीले आयतुल्ला खुमैनी के स्वर्गवास के बाद उनके उदार शिष्य हासमी रफसंजानी ने सत्ता की बागडोर संभाली, तो भड़कीले भाषणों का दौर थमने लगा । सरकार के सामने इस समय मुख्य कार्य जनता को अनुपस्थित शत्रु के खिलाफ भड़काने के बजाय 120 विलियन डालर या 24 अरब रूपया लागत की पुनर्निर्माण योजना को क्रियान्वित करना तथा निजी क्षेत्र में जान फूकना था। अर्थव्यवस्था निरन्तर निम्नतर बिन्दुओं पर पहुँचती जा रही थी । अधिकांश ईरानियों के सामने सबसे बड़ी समस्या आम आदमी के जीने की थी ।[4] अधिकांश ईरानी दो तीन नौकरियाँ एक साथ कर रहे थे । लोग आसमान छू रही कीमतों की शिकायत करते थे । ईरानी रियाल को वास्तविक मुद्रा बनाने के लिए सरकार ने क्रय–विक्रय दरों को छः से घटाकर तीन कर दिया । साल भर के अन्दर खुले बाजार में ईरानी रियाल

---

1. ए.शेख अख्तर–पार्श्वोद्धृत
2. नसीर सगाफी अमेरी– ईरान की विदेश नीति के तत्व सम्पादक ग्रिजेश पंत व अन्य पार्श्वोद्धृत
3. क्रानिकल ईयर बुक– 1998 पार्श्वोद्धृत पृ. 155
4. लुईस लाइफ– माया पत्रिका हिन्दी संस्करण 31 मई 1991

की कीमत 70 रियाल प्रति डालर से घटकर 1350 रियाल प्रति डालर हो गयी । एक औसत सरकारी नौकर 1,00,000 रियाल या लगभग 1500 रू0 प्रति माह वेतन पाता था । नतीजतन अधिकांश आयातित वस्तुये वह खरीद नहीं पाता । यही नहीं आवास समस्या के कारण अनगिनत युवकों की शादियों स्थगित पड़ी थी । तेहरान में भोजन की कमी नहीं थी, बाजार में फल और सब्जियां भरपूर थी । कमी थी तो रेफ्रीजरेटरों और टेलीवीजन सेटो की । 200 रियाल के नोट पर थूकते हुए एक टैक्सी ड्राइवर ने कहा ''यह किसी काम की नहीं है ।''[1] मंहगाई अपनी चरम सीमा पर थी । शाह के जमाने में चावल 70 रियाल प्रतिकिलों बिकता था क्रान्तियोत्तर ईरान में वही 7000 रियाल प्रतिकिलो बिका । इस बढ़ती हुई मंहगाई के लिए अमेरिका द्वारा लागू आर्थिक प्रतिबन्ध भी जिम्मेदार थे । आयातुल्लाह खुमैनी के नेतृत्व में क्रान्ति होना इस्लामिक गणराज्य गठित होना अमेरिका की बहुत बड़ी पराजय थी । यही कारण है कि अमेरिकी अगुवाई में समूचा पश्चिमी विश्व ईरान के खिलाफ विविध प्रकार के आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर ईरानी अर्थतन्त्र को एक तरह से जामकर दिया । सच तो यह है कि जब तक अमेरिकी हित शाह के जमाने में ईरान की धरती से सधता रहा तब तक अमेरिकी सहायता से ही किसी तरह ईरानी अर्थव्यवस्था चलती रही, पर जैसे ही हित साधनं बन्द हुआ सहायता हीं नहीं बन्दकर दी गयी अनेकानेक प्रतिबन्ध भी लगा दिये गये । इन्हीं विपरीत दशाओं में हाशमी रफसंजानी ने विविध प्रकार से ईरानी अर्थव्यवस्था में व्यापक सुधार हेतु अनेकों योजनाओं का शुभारम्भ किया । राष्ट्रपति रफसंजानी प्रशासन का बजट छोटे तबके के लोगों के लिए ज्यादा चिन्तित हुआ । विदेशी स्रोतों से मुख्य सामाग्री खरीदने के लिए तथा उपभोक्ता मूल्यों में नियंत्रण के लिए 1.250 अरब डालर (अमेरिकी) निर्धारित किया गया । समाज के छोटे तबके के लोगों की सुरक्षा व सहायता के लिए 2322 मिलियन अमेरिकी डालर की सब्सिडी दी गयी ।[2] ईरान विश्व का प्रमुख तेल उत्पादक देश है तेल यहाँ की अर्थव्यवस्था का आधार स्तम्भ है । उद्योग और कृषि का यहाँ की अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान है । उद्योगों के बाद कृषि का यहाँ की सकल राष्ट्रीय उत्पाद में प्रमुख अंशदान है । डेरी उत्पाद तथा ऊन ईरानी अर्थतन्त्र में महत्वपूर्ण है । वन यहाँ लगभग 20 मिलियन हेक्टेयर में फैला है ।

---

1. ईरान से लुईस लाइफ–माया पत्रिका–हिन्दी संस्करण 31 मई 1991
2. नसीर सगाफी अ[illegible] –सम्पादक ग्रिजेश पंत पार्श्वोद्धृत

ईरानी अर्थव्यवस्था में वनों का भी प्रमुख स्थान है ।[1] ईरानी अर्थव्यवस्था को 1978–79 की इस्लामिक क्रान्ति, 1980–81 में प्रारम्भ हुआ खाड़ी युद्ध (ईरान–इराक युद्ध) तथा 1980 की राजनीतिक अस्थिरता ने बुरी तरह प्रभावित किया । खाड़ी युद्ध से तेल उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हुआ । 1980 में तेल का उत्पादन मात्र 1.5 मिलियन वैरल था । तेल उत्पादों से राष्ट्रीय पूँजी 1977 में 23000 मिलियन अमेरिकी डालर थी जो 1980 में घटकर 11600 मिलियन अमेरिकी डालर रह गयी । 1981 के बाद ईरानी अर्थव्यवस्था अवसान की तरफ अग्रसर हुई और निरन्तर इसी राह पर खाड़ी युद्ध समाप्ति तक चलती रही ।[2] संयुक्त राष्ट्रसंघ की रिपोर्ट के अनुसार 1985 का ईरान का सकल राष्ट्रीय उत्पाद 168,100 मिलियन अमेरिकी डालर था, जो प्रति व्यक्ति 3766 अमेरिकी डालर था । 1980–85 के दौरान सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वार्षिक दर 6.7% तथा प्रति व्यक्ति उत्पाद की दर 3.7% रही । सकल राष्ट्रीय उत्पाद से 1984 में कृषि की भागीदारी वन उत्पादों सहित 17% रही । करीब 29% मजदूर शक्ति 1988 में कृषि में समायोजित रही । खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार 1980–88 में कृषि उत्पादों की वृद्धि पर 2.8% रही । औद्योगिक संस्थान, उत्पादन, निर्माण और शक्ति सहित की सकल राष्ट्रीय उत्पादन में 1984–85 में भागीदारी 25% रही । ईरान रूस के बाद सुरक्षित प्राकृतिक गैस में विश्व में दूसरा स्थान रखता है । इस समय में ईरान के सुरक्षित तेल भण्डारों की क्षमता में भी वृद्धि हुई । 1977–84 के दौरान उत्पादन इकाईयों, जिनमें तेल रिफाइनरीज भी शामिल है, में प्रति वर्ष 5.2% की वृद्धि हुई ।[3]

ईरान की प्रथम पंचवर्षीय योजना की उपलब्धियों में से एक सकल राष्ट्रीय उत्पाद की चतुर्दिक बढ़ोत्तरी थी । वर्ष 1990 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 12.3 % की वृद्धि हुई, जब कि 1991 में यह वृद्धि दर 9.9% थी पिछले चार वर्षो में और पंचवर्षीय योजना की शुरूआत से तेल उत्पादों को छोड़कर सकल राष्ट्रीय उत्पाद में औसत वृद्धि दर 7.7% रही है । जबकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि दर पूरे विश्व की औसत उसी दौरान 1.4% ही रही है । ईरान दुनिया के प्रथम पांच राष्ट्रो में एक है, जिनकी अपनी सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि दर सर्वाधिक थी । वर्ष 1990 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का हिस्सा 27.8%,

---

1. Europa Year Book- 1982 Vol.-II P. 546 Londan
2. वही
3. Europa Year Book- 1990 Vol-II P. 1346 पार्श्वोद्धृत

खान 10.6% रहा है ।[1]

योजना के दूसरे महत्वपूर्ण उद्देश्यों में औद्योगिक निवेशों की तरफ की भागीदारी को प्रोत्साहन देना रहा है । 300 सरकारी कम्पनियों का निजी क्षेत्र में हस्तान्तरण शुरू हो गया और कुल सरकारी शेयरो को राज्यों में व राष्ट्रीयकृत कम्पनियों में उत्पादकता बाटने के प्रयास में 33% शेयर उनके कर्मचारियों में हस्तान्तरित किये गये । आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए तथा अच्छे आर्थिक प्रबन्धन के लिए ईरान में जून 1979 में बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया ।[2] विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान औद्योगिक क्षमताओं का उपयोग 1989 मे 50% से बढ़कर 1991 में 70% हो गयी और विदेशी विनियम की राशि जो औद्योगिक क्षेत्र के लिए निर्धारित की गयी थी 34 अरब डालर से बढकर 98 खरब डालर हो गयी । औद्योगिक विकास की औसत दर 1991 में 17% आकी गयी और दर को मध्यम और पूंजी उपयोग के लिए उच्चतर बताया गया।[3] रफसंजानी की नवीन औद्योगिक संरचना का गुणात्मक सुधार ही है कि गैर तैलीय उत्पादों का निर्यात प्रतिशत भी पर्याप्त मात्रा में बढ़ा । 1991 में ईरानी औद्योगिक उत्पादों का निर्यात करीब 10 खरब डालर हो गया जो गैर तैलीय निर्यात का 35% है । ईरानी गणराज्य की सेन्ट्रल बैंक की रपट के अनुसार औद्योगिक क्षेत्र में 1991 में गुणवता 20% बढ़ गयी । सन् 1990 में कुल गुणवता की राशि 15.9% हो गयी । स्थापना आदेश (परमिट) जो हल्के और भारी उद्योग मंत्रालय द्वारा जारी किये गये है में वृद्धि 40% हो गयी । सन् 1190 में औद्योगिक रोजगार में 3.1% की वृद्धि हो हुयी ।[4] ईरान में आर्थिक स्थिति में सुधार तथा उस पर शासकीय नियंत्रण हेतु बैकिंग एवं बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण किया गया । इस्लामिक बैकिंग पद्धति 1984 तक अत्यन्त सुदृढ़ रूप से काम करती रही । 1985-86 में मुख्य रूप से 15.8% आयात था । निर्यात का मुख्य बाजार जर्मनी था जिसको 24.4% निर्यात किया गया। ईरान के इस समय के अन्य प्रमुख व्यापारिक साझेदार जापान, स्वीडेन स्वीट्सजरलैण्ड, इटली और युनाइटेड अरब अमीरात थे । 1984-85 के प्रमुख निर्यातों में पेट्रोलियम एवं पेट्रो उत्पाद ही थे जो लगभग सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 98 प्रतिशत थे । अन्य प्रमुख आयातों में कृषि आधारित परम्परागत उत्पाद भी

1. नसीर सगाफी अमेरी- सम्पादक ग्रिजेश पंत व अन्य पार्श्वोद्धृत
2. The Europa Year Book 1982 Vol. -II
3. नसीर सगाफी अमेरी- पार्श्वोद्धृत
4. वही

थे, जिनमें मोटर गाड़ियां, पेपर, कपड़ा, लोहा–इस्पात, खाद्य पदार्थ एवं पालतू पशु आदि थे ।[1] 1989 में रफ़संजानी के राष्ट्रपति बनने पर इनकी प्रमुख प्राथमिकता आर्थिक पुनर्संरचना एवं सांविधानिक सुधारों को ही रहीं । ईरान की पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ का प्रमुख लक्ष्य अर्थव्यवस्था में सुधार करना ही था । मुख्य जोर तेल उद्योग पर ही दिया गया । 1990 के बाद ईरान ने ओपेक द्वारा निर्धारित प्रतिदिन के उत्पादन कोटा 2.9 मिलियन वैरल प्रतिदिन में विश्वास जगाते हुए उसके अनुरूप उत्पादन को अपना लक्ष्य बनाया। पेट्रोलियम उद्योग का पुनर्निर्माण पश्चिम के साथ सम्बन्धों के सुधार पर निर्भर था, विशेषकर अमेरिका और ब्रिटेन के साथ । यह प्रभावी राजनीतिक स्थिरता से ही सम्भव था तभी विदेशी निवेश को आकर्षित किया जा सकता था । ईरान का प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था के प्रति देश एवं विदेश में विश्वास पैदा करना ही था ताकि देश व विदेश से निवेश को आकर्पित कर अर्थव्यवस्था को सुधारा जा सके।[2]

ईरान की परिस्थितिजन्य मजबूरियों के कारण जिन्होंने आयतुल्ला खुमैनी के शिष्य हाशमी रफसंजानी को अपनी राह बदलने को बाध्य कर दिया, समझने के लिए विगत के खुमैनी के काल के और उससे भी पूर्व शाह के काल के अर्थतन्त्र का विश्लेषण आवश्यक है। शाह के शासन काल के अन्तिम छ वर्षों में आयी तेल के दामों में वृद्धि के कारण, आय में एकाएक वृद्धि के चलते अपनी उन्नति का झूठा प्रभाव प्रेषित किया गया । इस काल के दौरान देश में एक बहुत बड़ी मॉग पैदा हो गयी और कई औद्योगिक इकाईयॉ बिना किसी सूझ–बूझ के स्थापित कर दी गयी । परिणाम स्वरूप उनकी उत्पादन लागत अत्यधिक होने के कारण उनका अस्तित्व शासन के सहयोग के अभाव में असम्भव हो गया । शाह ने स्वयं को एक शक्तिशाली राजा समझा और एक महान सभ्यता के निर्माण के लिए आंकाक्षित होने लगे ।[3] यह आकांक्षा कभी फलीभूत नहीं हुई क्योंकि इसमें विकास के लिए उन बड़े महत्वपूर्ण सिद्धान्तों जैसे शक्तिशाली और कारगर व्यवस्था के स्रोत की कमी थी । कृषि उत्पादन में निरन्तर गिरावट आती गयी । शाह के शासन काल के अन्तिम दौर में तेल से प्राप्त राजस्व पर निर्भरता ही अर्थ व्यवस्था के स्पष्ट लक्षण थे । ईरान के शक्तिपुरूष मरहूम इमाम खुमैनी के नेतृत्व में अमेरिका के विरोध में हुई इस्लामिक

1. The Europa Year Book-1990 Vol.-II P. 1346 पाश्र्वोद्धृत
2. वही
3. नसीर सगाफी अमेरी– पाश्र्वोद्धृत

क्रान्ति के बाद अमेरिका के नेतृत्व में लगे प्रतिबन्धों के बाद ईरानी अर्थ व्यवस्था डावाडोल हो गयीं । इतिहास गवाह है कि जब भी ईरानी तेल पर प्रतिबन्ध लगा ईरानी अर्थतन्त्र ध्वस्त होता नजर आने लगा । 1953 में ब्रिटेन द्वारा ईरानी तेल का वहिष्कार के कारण ईरान की अर्थ व्यवस्था तेजी से विगड़ने लगी थी ।[1]

1979 में जनक्रान्ति द्वारा शाह का तख्ता पलट दिया गया और पहलवी वंश का अन्त करके इस्लामी गणराज्य की स्थापना हुई । 14वर्षों के निष्कासन के बाद देश के लोक प्रिय धार्मिक नेता आयतुल्लाह खुमैनी पेरिस से स्वदेश लौटे । धोर अमेरिकी विरोध की लहर पर सवार ईरानी नेताओं ने कट्टरवादियों और रूढ़िवादियों के हवाले देश को छोड़ दिया । देश में नया संविधान लागू हुआ और 1980 में पहलीवार मजलिस का चुनाव हुआ तब से पांचवे चुनाव तक रूढ़िवादी जमात का बोलवाला रहा है । इस्लाम की आक्रामक छवि को प्रस्तुत करने वाला देश क्रान्ति से तथा इस्लामिक पाबन्दियों विशेषकर अर्थ क्षेत्र में, दूर क्यों हुआ, यह जानने के लिए उसकी धरेलू और विदेश-नीति की नीतियों को देखा जाना आवश्यक है। इन्हीं नीतिजन्य परिवर्तनों को देखने के बाद अर्थव्यवस्था में इन सुधारने को समझा जा सकेगा । संसार के मुख देशों से कटा और उपेक्षित ईरान अपनी पुरानी छवि को खोता जा रहा था धर्म और राजनीति के धालमेल से जिस व्यवस्था का निर्माण हुआ उसने ईरानी विदेश नीति को इस्लामिक जगत से भी अलग-थलग कर दिया । रूस, चीन, भारत एवं अन्य एशिया और अफ्रीका के देश ईरान से एक दूरी बनाये रखने में ही अपना भला देखते थे ।[2] यह एक सत्य है कि विश्व अर्थतन्त्र और विश्व राजनीति में आज के युग में कट्टरवाद और रूढ़ियों के लिए कोई जगह नहीं है । इन्हीं तमाम तथ्यों के मद्देनजर और अपनी आर्थिक स्थिति की मजबूरियों के कारण ईरान ने अपनी परम्परागत रूढ़िवादी इस्लामिक आर्थिक संरचना में मूलभूत सुधार की तरफ अग्रसर हुआ । लगभग 21 वर्षों तक मजहबी उन्माद की छाया में रहने के कारण ईरान की अर्थव्यवस्था पर कभी भी वहॉ के शासकों ने पूरी तरह ध्यान नहीं दिया । जिससे वहॉ की अर्थव्यवस्था लगातार डावाडोल होती गई । ईरानी मुद्रा रियाल का लगभग 15 वर्षों में जबरदस्त

1. पी.डी. कौशिक-अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पृ. 573
2. जितेन्द्र कुमार सिंह -राष्ट्रीय सहारा लखनऊ 25.02.2000

अवमूल्यन हुआ । अस्सी के दशक के मध्य में एक अमेरिकी डालर की कीमत लगभग 500 रियाल थी लेकिन रियाल के अवमूल्यन के कारण अब एक अमेरिकी डालर की कीमत लगभग 10000 रियाल हो गयी है । मुद्रा के इस जबरदस्त अवमूल्यन के लिए कट्टरपंथियों ने अपनी नीति को जिम्मेदार मानने के स्थान पर इसके लिए अमेरिका पर दोष मढ़ना शुरू कर दिया कि उनकी इस्लाम विरोधी नीति के कारण ही ईरानी मुद्रा रियाल का अवमूल्यन हुआ है । कट्टर इस्लामी रवायतों को मानने का दावा करने वाले शासकों ने उन्हीं राष्ट्रो से सम्बन्ध विकसित करना उचित समझा जो उनकी नजरों में इस्लामी रवायतों के उनके समान ही पक्षधर थे । इसके परिणाम स्वरूप पिछले दो दशको में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर ईरान की उपस्थिति लगातार कम होती गयी ।[1]

इन्हीं सब बातों के कारण ईरान में विकास की गति लगातार कम होती गई और इसके कारण अर्थव्यवस्था निरन्तर खराब होती गयी और ईरानियों का मजहबी उन्माद ठंडा पड़ता चला गया कट्टरता से उदारवाद की ओर आने की कड़ी में ''मोहम्मद खातमी'' के नये राष्ट्रपति बनने से एक नया अध्याय जुड़ गया । पूर्व संस्कृति मंत्री श्री खातमी जून 1997 के चुनाव में विजयी हुए रफसंजानी ने ईरान में आर्थिक सुधारों का श्री गणेश अवश्य किया पर ये आर्थिक सुधार कारगर असर मोहम्मद खातमी के शासन काल में ही दिखा पाये इसके पीछे रफसंजानी का आर्थिक सुधारों के प्रति सामयिक मॉग की हद तक समर्पित न होना प्रमुख कारण था । मोहम्मद खातमी के समक्ष अर्थव्यवस्था को संभालना एवं सुधारना एक गम्भीर चुनौती थी, जिसे उन्होंने पूर्णमन से स्वीकार किया और उसके लिए हर आवश्यक कदम उठाया और अब भी ईरान में आर्थिक सुधारों का क्रम सामयिक जरूरतों के अनुसार चल ही रहा है । अर्थतन्त्र में रफसंजानी सरकार ने जिन क्षेत्रों में सुधार प्रारम्भ किया था उसको खातमी ने और आगे बढ़ाया जिन क्षेत्रों को उन्होंने नहीं छुआ था, उनमें आर्थिक विकास हेतु सुधार आवश्यक था, खातमी ने उनमे भी सुधारों की विविध योजनाओं को शुरू किया । ईरान दुनिया का चौथा बड़ा खनिज उत्पादक देश है । अर्थव्यवस्था में खनिजों का बड़ा अंशदान है । ईरान के पास प्राकृतिक गैसों का विश्व का दूसरा सबसे बड़ा भण्डार है ।[2] यद्यपि

1. विनय पाठक-अमर उजाला लखनऊ 29 फरवरी 2000
2. माया पत्रिका हिन्दी संस्करण 1995 पृ. 44

कई विश्लेषकों का मानना है कि ईरान अपने विशाल प्राकृतिक स्रोतों व उन पर आधारित क्षमताओं के मद्देनजर एक महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति है तथा कुछ का मानना है कि ईरान दिवालिया है तथा इसकी आर्थिक दशा कभी भी अच्छी नहीं रही है ।[1] इस्लामिक ढ़ाँचे और कडी रवायतों में जकड़ा ईरानी व्यापार बुरी तरह प्रभावित हुआ था । इन सुधार से विदेशी व्यापार एवं विदेशी पूँजी निवेश का स्तर भी सुधरा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ईरानी अर्थतन्त्र एवं सरकारी आर्थिक नीति में विश्वास की एक नयी उम्मीद जगीं, जिसका पर्याप्त लाभ अर्थव्यवस्था को सुधारने में मिला ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में इतना उतार–चढ़ाव तो नहीं आया जितने उतार–चढ़ाव का सामना ईरानी अर्थव्यवस्था को करना पड़ा, परन्तु यह भी एक सत्य है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में भी तत्कालीन जरूरतों, अर्थव्यवस्था के स्तर, बाजार की मॉग एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थनीति के अनुरूप समयानुसार आवश्यक नीतिगत परिवर्तन किये जाते रहे है। नियोजन के पहले यदि हम भारत की आर्थिक नीति को देखे तो हम पायेगे कि एक तो भारत की आयात नीति का उद्देश्य ब्रिटिश हितों की रक्षा करना था, दूसरे समय–समय पर जो सरकार ने आयात में हस्तक्षेप की नीति अपनायी वह केवल तत्कालिक समस्याओं के निराकरण से सम्बन्धित थी, दीर्घकालिक आर्थिक विकास से प्रभावित नहीं थी । अप्रैल 1951 में दीर्घकालिक विकासात्मक योजनाओं की पृष्टभूमि में आयातनीति का निर्धारण किया गया ।[2] पं0 जवाहर लाल द्वारा समाजवादी नीति निर्देशित अर्थनीति का प्रारम्भ किया गया था । कमोवेश सामयिक जरूरतों के अनुरूप कुछ परिवर्तनों के साथ दीर्घकालिक कांग्रेस शासन में वही नीति चलती रही । जनता पार्टी शासन में अर्थव्यवस्था पर पूँजीवादी नीति पर अंकुश कड़ा किया गया । शासकीय छूट पर आधारित समाजवादी ढ़ाचा और सुदृढ़ किया गया । बीच के समय से अल्पकालिक सरकारों के असामायिक पतन से अर्थतन्त्र निरन्तर संकटग्रस्त होता चला गया । मुद्रा स्फर्ति रिकार्डो को तोड़ने लगी । विदेशी पूँजी निवेश लगभग निम्नतर स्तर पर पहुचने लगा । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय अर्थ व्यवस्था अपना विश्वास खोती गयी । आन्तरिक स्तर पर विविध प्रकार की समस्याओं से देश का जनमानस दो चार होने लगा । आर्थिक

1. नसीर सगाफी अमेरी–पार्श्वोद्धृत
2. एकोनामिक टाइम्स–अगस्त 30 तथा 31–1985, एम.एन. लाल–पार्श्वोद्धृत पृ. 198

स्तर पर तबाही का आलम आ गया, मुद्रा का अवमूल्यन हो गया । अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व अन्य सम्पन्न विदेशी राष्ट्रों से प्राप्त होने वाली विदेशी सहायता लगभग स्थगित होने के कगार पर पहुँच गयी । इन संस्थाओं एवं देशों द्वारा ऋण, सहायता, अनुदान एवं निवेश हेतु अपनी शर्तों को रखा जाना शुरू कर दिया गया । अर्थव्यवस्था के गिरते स्तर के मद्देनजर पी.वी. नरसिंहराव के नेतृत्व वाली भारतीय सरकार को तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह की अगुवाई में भारतीय अर्थनीति की गाड़ी को दीर्घकालिक समाजवादी रास्ते से हटा कर पूँजीवादी डगर पर चलाने को मजबूर होना पड़ा । विदेशी पूँजी निवेश, विदेशी कर्ज एवं सहायता तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय बाजार की विश्वसनीयता हेतु यह नीतिगत परिवर्तन आवश्यक हो गया था । इससे भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप पूर्णतयाः परिवर्तित हो गया । इसका तत्कालिक फायदा भी मिला, विदेशी निवेश, सहायता, ऋण एवं अनुदान का रूका हुआ सिलसिला स्वागत स्तर पर चालू हो गया मुद्रा स्फीति सामान्य स्तर पर पहुँच गयी अन्य अनेकों अर्थगत समस्याएं समाधान की तरफ अग्रसर होती गयी ।

भारत और ईरान की अर्थव्यवस्था के स्वरूप में एक स्तर पर समानता भी है । दोनों ने सामायिक आन्तरिक माँगों एवं मजबूरियों में स्वयं को व्यापक स्तर पर परिवर्तित किया है । इस्लामिक क्रान्तियोत्तर काल के लगभग दो दशको को छोड़ दिया जाय तो भारत और ईरान के मध्य लगभग सामान्य व्यापारिक एवं आर्थिक सम्बन्ध रहे है । ऐतिहासिक स्तर पर देखा जाय तो भारत और ईरान के मध्य दीर्घकालिक आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध रहे है । सिन्धु सभ्यता में ईरान से सीसा आयात किया जाता था ।[1] कुषाण साम्राज्य में भी व्यापार का ऐतिहासिक साक्ष्य मिलता है । पाँचवी सदी में भी ईरान से भारत का आर्थिक सम्बन्ध रहा है । स्वर्ण मुद्रायें ईरानी शासकों को प्रदान की गयी थी । गुप्त काल में घोड़ो का ईरान और अरब से आयात किया जाता था । मुगल काल में भारत और ईरान के बीच अन्य सम्बन्धों के साथ आर्थिक सम्बन्ध के व्यापक स्तर पर प्रमाण मिलते है । ईरान से कुशल कारीगरों के साथ बहुमूल्य पत्थर, आभूषण आदि के आयात निर्यात के होने के एतिहासिक साक्ष्य मिलते हैं ।

1. भारत का प्राचीन इतिहास–एन.सी.आर.टी. हिन्दी संस्करण ।

स्वतन्त्र भारत तथा इस्लामिक क्रान्ति के पूर्व के ईरान में कोई उल्लेखनीय व्यापारिक व वाणिज्यिक सम्बन्ध नहीं रहा है । शाहों के शासन काल में तेल उत्पादो तक का ही सम्बन्ध भारत और ईरान के बीच रहा है । कमोवेश यही स्थिति आयतुल्लाह खुमैनी के शासन काल में भी रही। किसी देश के आत्मनिर्भर एवं प्रवैगिक आर्थिक विकास में उस देश के विदेशी व्यापार की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यह एक ओर बाजार के विस्तार के कारण, अर्थव्यवस्था में उत्पादन, रोजगार तथा आय में वृद्धि लाता है तथा दूसरी और अत्यन्त ही बहुमूल्य विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि के कारण आर्थिक विकास में सहायक होता है ।[1] ईरान के साथ भारत के आयात-निर्यात को निम्नाकित सारणी में दर्शाया जा रहा है।[2]

सारिणी–1

भारत का व्यापार (Million Rupees)

वर्ष	1978–79	1979–80	1985–86	1986–87	1987–88
आयात	3532	6,207	8,851.30	1,405.30	1,195.10
निर्यात	929	960	948.60	472.60	1,386.30

Source - M. & Co. Annual Report 1986-87/87-88/1980-81

भारत के विदेशी व्यापार में प्रमुख सात देशों में अमेरिका, रूस, जापान, ब्रिटेन पश्चिम जर्मनी, फ्रांस के साथ ईरान भी प्रमुख स्थान रखता है । विदेशी व्यापार में इन देशों का हिस्सा 50% है । ओपेक देशों से विदेशी व्यापार बढ रहा है । इधर हाल के वर्षो में, विशेष रूप में पेट्रोलियम के मूल्यों में वृद्धि के बाद भारतीय विदेशी व्यापार में तेल उत्पादक देश (OPEC) नये भागीदार के रूप में सामने आये है । इन देशों से आने वाला आयात 1970–71 में 125 करोड़ रू0 (7.6%) था जो 1983–84 में 3321 करोड़ रूपया (29.5%) हो गया । इसी अवधि में आयात में 26 गुना से भी अधिक वृद्धि हुई । इसमें ईरान की प्रमुख भागीदारी है ।[3] भारत के प्रमुख आयातों में पेट्रोलियम का प्रमुख स्थान है । पेट्रोलियम आयात की निम्न स्थिति रही है ।[4]

1. एस.एन.लाल–पार्श्वोद्धृत पृ. 159
2. The Europa Year Book 1982 II P. 490 and 1990 Vol. I P. 1297
3. एस.एन. लाल–पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 81–82
4. वही पृ. 168

सारिणी–2

प्रमुख आयात – (करोड़ रूपया में)

वर्ष	1980–81	1984–85	1985–86	1986–87	1987– 88
पेट्रोलियम	5226	5409	4989	2797	4083

उपरांकित सारणी में प्रदर्शित पेट्रोलियम आयात में जून 1989 में खुमैनी के निधन के बाद ईरान की भागीदारी निरन्तर बढ़ती गयी है । ज्यों–ज्यों ईरान में उदारबाद का विस्तार होता गया अखिल–विश्व से उसके अलगाव का दायरा सिकुड़ता गया । खुमैनी के निधन के बाद हासमी रफसंजानी ने ईरानी अर्थनीति में व्यापक परिवर्तन किया, जिससे भारत और ईरान के बीच अल्पकालिक व्यापारिक अवरोधो का क्रम टूटा और दीर्घकालिक व्यापारिक एवं आर्थिक सम्बन्ध पुनः बहाल हो गये । तेल एवं तैलीय उत्पादों की व्यापारिक आवक के स्तर में पर्याप्त वृद्धि हुई । खनिजों का आयात एवं निर्यात पुनः प्रारम्भ हो गया। फल एवं मेवे का भी ईरान से आयात प्रारम्भ हुआ । दोनों देशों के सम्बन्धों में आर्थिक स्तर पर सुधारों में भारत एवं ईरान के संयुक्त आयोग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रहीं है । वैसे तो भारत–ईरान संयुक्त आयोग का गठन दोनों देशों के बीच बहुआयामी सम्बन्धों के विकास हेतु किया गया था लेकिन आर्थिक सम्बन्ध ही महत्वपूर्ण रहे है । संयुक्त आयोग की बैठकों, दोनों देशों के नेताओं के एक दूसरे देश के भ्रमण पर जाने के मौको पर विविध प्रकार के नीतिगत निर्णयों से सम्बन्धों में व्यापक स्तर पर सुधार हुआ । सम्बन्धों के नये आयामों का विकास हुआ । प्रश्नगत काल (1980 से 1995 तक) के भारत के विदेशी व्यापार को निम्न सारणी के अवलोकन से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है ।[1]

सारिणी –3

भारत का विदेशी व्यापार (करोड़ रूपया में)

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार संतुलन
1980–81	12549	6711	(–) 5838.00
1981–82	13608	7806	(–) 5802.00
1982–83	14293	8803	(–) 5490.00

शेष सारणी अग्रांकित

1. भारत 1999 पृ. 577 पार्श्वोद्धृत

शेष सारणी

1983–84	15832	9771	(–) 6052.00
1984–85	17134	11744	(–) 5390.00
1985–86	19658	19895	(–) 8763.00
1986–87	20096	12452	(–) 7644.00
1987–88	22244	15574	(–) 6750.00
1988–89	28232	20232	(–) 8003.00
1989–90	35328	27658	(–) 7670.00
1990–91	43193	32553	(–) 10640.00
1991–92	47851	44042	(–) 3809.00
1992–93	63375	53688	(–) 9687.00
1993–94	73101	69751	(–) 3350.00
1994–95	89971	82674	(–) 7297.00
1995–96	121647	106465	(–) 15182.00

Source : RBI Report on Currency and Finance Vol. II for different years.

उपर्युक्त सारणी में विवेचित भारत के विदेशी व्यापार में ईरान के साथ हुआ व्यापार भी सम्मिलित है । भारत के ईरान के साथ व्यापार की विवेचना करतीं हुई निम्नांकित सारणी के अवलोकन से दोनों देशों के वाणिज्यिक सम्बन्धों को और आसानी से समझा जा सकता है –[1]

सारिणी –4

भारत का आयात – (प्रतिशत में कोष्ठक में) – करोड़ रूपया में

देश	1970–71	1980–81	1986–87	1987–88
ईरान	92 (5.6)	1339 (10.6)	140 (0.7)	119 (0.5)

1. एस.एन.लाल –पार्श्वोद्धृत पृ.पृ. 81–82

सारिणी –5

भारत का निर्यात (कोष्ठक में % मे, करोड़ रूपया में)

देश	1970–71	1980–81	1986–87	1987–88
ईरान	27 (1.8)	123 (1.8)	47 (0.4)	138 (0.8)

'भारत–ईरान संयुक्त आयोग' की पॉचवें सत्र की बैठक 1991 में तेहरान में हुई । दोनों देशो के विदेश मंत्री अपने –अपने देशों के विशेषज्ञों के दल के साथ मिले । जिससे सांस्कृति, आर्थिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक, तकनीकी एवं कृषि से सम्बन्धित समझौतों पर हस्ताक्षर किये गये ।[1] पूर्व बैठक में किये गये समझौतो की समीक्षा की गयी । संयुक्त आयोग की बैठक में लम्बित पड़े मसलों पर चर्चा हुई तथा उनके शीघ्र समाधान एवं क्रियान्वयन हेतु आवश्यक कार्यवाही किए जाने पर आम सहमति बनी । राष्ट्रपति रफसंजानी 17 से 19 अप्रैल 1995 को भारत की राजकीय मात्रा पर आये । प्रधान मंत्री से वार्ता की, संसद के संयुक्त सत्र को सम्बोधित किया । उनके साथ आया विशेषज्ञों का दल आर्थिक, तकनीकी एवं सांस्कृतिक बिन्दुओं पर आधारित वार्ता किया । पर्यटन, दूर–संचार, डाक सेवा, मादक पदार्थो की तस्करी एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान से सम्बन्धित अनेको समझौतों पर हस्ताक्षर किया गया ।[2] ईरान के विदेश मंत्री 13 जनवरी 1996 को भारत के दौरे पर आये । भारतीय विदेश मंत्री से विविध पक्षों पर वार्ता किया । महत्वपूर्ण क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक विषयों पर, महत्वपूर्ण आर्थिक मुद्दों पर जैसे उर्वरक संस्थान भारत–ईरान गैस पाइप लाइन आदि पर महत्वपूर्ण वार्ता हुई । ईरान के उप वाणिज्य मंत्री नवम्बर 1995 में भारत के दौरे पर आये उनके साथ एक दल भी आया था, जो वाणिज्यिक वार्ता हेतु विशेषज्ञों से युक्त था । इसके तुरंत वाद विदेश उपमंत्री भारत भ्रमण पर आये । ये इन्दिरागॉधी मेमोरियल ट्रस्ट के एक सेमिनार में भाग लेने आये थे । इन्हीं राजकीय यात्राओं से, उनसे उपजी वार्ताओं से उभयपक्षीय अर्थ समस्याओं का समाधान एवं नवीन अर्थवार्ताओं का शुभारम्भ हुआ । भारत और ईरान के सदियोपूर्व

1. इण्डिया 1992–पार्श्वोद्धृत पृ. 705
2. इण्डिया 1996–पार्श्वोद्धृत पृ. 550

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के साथ-साथ आर्थिक सम्बन्ध भी रहे है । ईरान भारत को एशिया के एक मजबूत विकासशील देश के रूप में देखता है । भारत के साथ आपसी सहयोगों हेतु तत्पर रहता है । भारत ने भी उदार मुस्लिम देशों के साथ आर्थिक आधार पर सम्बन्ध बढ़ाने की जो कूटनीति अपनायी, उसके अच्छे परिणाम सामने आने लगे है । ईरान के साथ तो भारत के दीर्घकालिक बहुपक्षीय सम्बन्धों की परम्परा रही है । एक तरफ जहाँ ईरान के पास तेल एवं प्राकृतिक गैस का विपुल भण्डार है तो दूसरी तरफ भारत के पास उसके लिए विशाल बाजार व आकर्षक पूँजी है ।[1] इसलिये उभय राष्ट्रों को अन्य बहुपक्षीय सम्बन्धों के साथ ही साथ आर्थिक सम्बन्ध होना स्वाभाविक है । भारत और ईरान के बीच कई क्षेत्रयी एवं अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर विचारों में समानता रही है और इसी परिप्रेक्ष्य में दोनों देशों की सभ्यताओं के बीच एतिहासिक सम्बन्ध भी रहे है । आपसी समझ बढ़ाने एवं आर्थिक सम्बन्धों का दायरा विस्तृत करने का दोनों देशों के तत्कालिक शिखर नेतृत्व द्वारा समय-समय पर प्रयास भी किया जाता रहा है । इन्हीं प्रयासों की श्रृंखला में 31.01.1981 को पेट्रोलियम निर्यातक देशों के संगठन ओपेक ने, जिसका ईरान भी सदस्य है, दूसरी बम्बई हाई परियोजना के लिए भारत को तीन सौ लाख डालर का व्याजमुक्त ऋण देने का अनुमोदन किया जिसे भारत ने 16 मार्च 81 को प्राप्त किया ।[2] 19.11.81 ई को भारत और ईरान ने 1982 में कच्चे तेल के आयात के लिए तेहरान में एक करार पर हस्ताक्षर किये । ईरान से आयात की स्थिति 1979-80 में 62,749 लाख रू0 तथा 1980-81 में 1,33,890 लाख रूपया थी ।[3] 1982 में ईरानी मजलिस के अध्यक्ष विदेश मंत्री, उपविदेश मंत्री तथा उनके साथ एक उच्चस्तरीय प्रतिनिधि मण्उल भारत आया । भारत का भी एक आर्थिक एवं वाणिज्यिक प्रतिनिधि मण्डल तेहरान गया दिल्ली और तेहरान में अन्य समझौतो के साथ-साथ क्रमशः वाणिज्यिक और आर्थिक समझौतो पर हस्ताक्षर किया गया । ईरान के विदेश मंत्री अली अकबर विलायमती 28 अप्रैल 1982 को 5 दिन की भारत यात्रा पर आये । इनके साथ एक उच्चस्तरीय प्रतिनिधि मण्डल भी आया वाणिज्यिक समझौते पर हस्ताक्षर हुआ । 30 अप्रैल 1982 को ईरान ने ईरान के इस्पात उद्योग के विकास के लिए भारत के साथ एक करार पर हस्ताक्षर किया । 10 अगस्त

---

1. नवभारत टाइम्स लखनऊ 10 अप्रैल 2001
2. भारत 1982 पृ. 632 पार्श्वोद्धृत
3. वही पृ.पृ. 667 व 444

1982 को परमाणु बिजली पर तथा 29 अगस्त 1982 को उद्योग एवं व्यापार कर के एक समझौते पर हस्ताक्षर किया गया ।[1] 1981–82 में भारत का ईरान से आयात 1,328.05 लाख रूपया तथा निर्यात 110.87 लाख रूपया का था ।

भारत दुनिया की पॉचवी अर्थव्यवस्था तथा तीस करोड़ मध्यम वर्गीय उपभोक्ताओं वाला देश है ।[2] नयी विश्व व्यवस्था में राजनैतिक सैद्धान्तिक प्रतिद्वन्दिता का स्थान आर्थिक प्रतिस्पर्धा ने ले लिया है । इस तथ्य के मद्देनजर दोनों देशों की सरकारो का यह दृष्टिकोण रहा है कि अन्य मुद्दों को एक तरफ रखकर न्याय राष्ट्रीय हितों के लिए आर्थिक सहकार का क्षितिज व्यापक करना ही दूरदर्शिता तथा समझदारी है। उभय पक्षों के अब तक के सम्बन्ध इसी सोच के कारण और इसी सोच की परिधि के आस–पास चले आ रहे है। ईरान के विपुल तेल, गैस, युरेनियम और क्रोमियम के प्राकृतिक भण्डारों के कारण भारत का ईरान से आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करना इसकी अपरिहार्यता है, तो कृषि, तकनीक, वाणिज्यिक, संचार जैसे बहुत से क्षेत्रों में भारत की श्रेष्ठता के कारण इससे द्विपक्षीय सम्बन्ध स्थापित करना ईरान की अनिवार्यता है ।

12 फरवरी 1979 को ईरान की मेहदी बजरगान की सरकार को भारत ने मान्यता दिया । 8 मई 1979 को तेहरान में एक तेल सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर हुआ, जिसके अनुसार भारत को 26 लाख टन खनिज तेल देना प्रावधानित किया गया ।[3] ईरान–इराक युद्ध के कारण भारत ईराना के सम्बन्ध प्रभावित हुए । इसके बाद भी दोनों का आर्थिक कार्यक्रम पूर्णतयः रूका नहीं । भारत ईरान संयुक्त आयोग की बैठक 10 जनवरी 1986 को हुई जिसमें व्यापरिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्धों के विस्तार पर चर्चा के साथ–साथ तत्सम्बन्धी समझौतो पर हस्ताक्षर किया गया । 21 अगस्त 1986 को एक व्यापार सम्बन्धी समझौता भी किया गया । 19 नवम्बर 1985 को एक तेल सम्बन्धी समझौता हुआ । भारत ईरान संयुक्त आयोग की चौथी बैठक दिल्ली में हुई जिसमें व्यापार एवं अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित समझौता हुआ ।[4]

1991 के तेहरान समझौतो, जो भारत ईरान संयुक्त आयोग की पांचवी बैठक में किये गये थे तथा

---

1. इण्डिया 1983 पृ.पृ. 605, 702, 773–775, 721 पार्श्वोद्धृत
2. डा0 कृष्ण कुमार –राष्ट्रीय सहारा लखनऊ 16.03.2000
3. इण्डिया 1980 पार्श्वोद्धृत
4. इण्डिया 1987 पृ.पृ. 405, 577–85 पार्श्वोद्धृत

1995 की राष्ट्रपति रफसंजानी की दिल्ली यात्रा के समय किये गये समझौतो ने भारत–ईरान के बीच आर्थिक सम्बन्धों को नई दिशा प्रदान की । इन समझौतो के माध्यम से वाणिज्यिक आर्थिक एवं तकनीकी स्तर पर दोनों देशों के सम्बन्धों में नये आयामों का खुलासा हुआ । 1991 में दोनों देशों के विशेषज्ञ दलों ने अनेक समझौतो पर जो वाणिज्यिक एवं व्यापारिक प्रावधान करते थे, पर हस्ताक्षर किया ।[1] 1995 ई. में ईरान के राष्ट्रपति की भारत की राजकीय यात्रा पर आने पर उनके साथ एक विशेषज्ञों का प्रतिनिधि मण्डल भी आया था जिसने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल से अन्य विविध क्षेत्रों की चर्चा के साथ ही साथ आर्थिक सम्बन्धों पर भी चर्चा की । 13 जनवरी 1996 को ईरानी विदेशमंत्री भारत दौरे पर आये उनके साथ भारतीय विदेशमंत्री की वार्ता के समय आर्थिक मुद्दों जैसे उर्वरक एवं गैस पाइप लाइन जैसे विषयों की चर्चा हुई । नवम्बर 1995 में ईरान के उपवाणिज्य मंत्री एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ भारत आये वाणिज्यिक एवं आर्थिक विषयों पर विशद विचार विमर्श एवं तत्सम्बन्धी करारों पर हस्ताक्षर किया गया ।[2] सितम्बर 1993 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिंह राव ईरान की राजकीय यात्रा पर गये उनके ईरान प्रवास के दौरान भारतीय एवं ईरानी विशेषज्ञ दलों के बीच वाणिज्यिक एवं आर्थिक बिन्दुओं पर केन्द्रित कई चक्रों की वार्ताओं के बाद दोनों देशों के बीच अनेकों समझौते पर हस्ताक्षर भी किया गया । 1993 में ही तत्कालीन राष्ट्रपति डा0 शंकर दयाल शर्मा तेहरान गये थे, उनकी ईरान के तत्कालीन राष्ट्रपति रफसंजानी से दोनों देशों के आर्थिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्धों को लेकर चर्चा हुई ताकि दोनों देशों की पुरानी परम्परा एवं दीर्घकालिक सम्बन्धों को नया आयाम दिया जा सके ।[3] भारत और ईरान के बीच, बीच के कुछ समयों को छोड़ दिया जाय तो अत्यन्त समुन्नत दीर्घकालिक सम्बन्धों का स्पष्ट साक्ष्य उपस्थित है। इन्ही सम्बन्धों के चलते परस्पर सहयोग के अनेकों क्षेत्रों में नवीन फलकों का विस्तार हुआ । पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैसो का ईरान के पास विपुल भण्डार है । भारत की पेट्रोल एवं प्राकृतिक गैसों की जरूरते निरन्तर बढ़ती जा रही है । ईरान ये चीजें भारत को देना भी चाहता है । भारत के पास अनेक क्षेत्रों में अत्यन्त विकसित एवं परिष्कृत तकनीक भी है और पर्याप्त मात्रा में अर्थ भी है । ऐसी परिस्थिति में दोनों

1. इण्डिया 1992 पृ.–705 पार्श्वोद्धृत
2. इण्डिया 1995 पृ. 550 पार्श्वोद्धृत व जगमोहन माथुर हिंदुस्तान टाइम्स लखनऊ – 29.02.2002
3. जगमोहन माथुर हिन्दुस्तान लखनऊ 29.02.2002 पार्श्वोद्धृत

देशों के बीच आर्थिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्धों के क्षेत्र में नवीन सम्भावनाओं का आंकाक्षी होना स्वाभाविक है।[1]

भारत और ईरान वाणिज्य सन्धि 1954 में की गई । इस सन्धि के माध्यम से दोनों देशों के नागरिकों को व्यापार करने एवं सम्पत्ति ग्रहण करने का अधिकार दिया गया तथा एक दूसरे को विशेष दर्जा प्राप्त राष्ट्र का स्थान मिला ।[2] इस सन्धि के बावजूद दोनों देशों के बीच पारस्परिक व्यापार में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई, परन्तु 60 के दशक में दोनों देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों में कुछ सुधार परिलक्षित हुआ । 1961 में विदेश मंत्रालय में एक आर्थिक प्रभाग खोला गया । भारत में उसी वर्ष ईरान के साथ एक व्यापार समझौता हुआ । श्री के.आर.एफ. खिलानी जो वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के संयुक्त सचिव थे, की अध्यक्षता में एक व्यापार प्रतिनिधि मण्डल ईरान गया था । इस समझौते के अन्तर्गत ईरान ने भारत में 6 हजार टन चीनी खरीदने का करार किया । भारत ने ईरान से 15 मिलीयन रूपये का शुष्क मेवा आयात करने का निर्णय लिया ।[3]

प्रश्नगत काल (1980–95) के भारत के सम्पूर्ण निर्यात को विशेषतयः ईरान के निर्यात को प्रदर्शित करती निम्न सारणी से समझा जा सकता है ।–[4]

सारणी–6

भारत का ईरान को निर्यात (Millions of US dollars)

वर्ष	ईरान की निर्यात	सम्पूर्ण विश्व निर्यात	कुल निर्यात का %
1980	135	8,441	1.60
1981	141	6,827	2.10
1982	155	9,655	1.61
1983	139	9,907	1.40
1984	125	10,616	1.20
1985	84	8,265	1.01

शेष सारणी अग्रांकित

1. जगमोहन माथुर– हिन्दुस्तान 29.02.2002 पार्श्वोद्धृत
2. सुनन्दा सेन– Indias Bilateral Payments & Trade Agreements 1947-48 to 1963-64 Caluctta 1965 P. 195

			शेष सारणी
1986	38	9,135	0.42
1987	93	10,798	0.86
1988	89	12,981	0.70
1989	47	15,839	0.30
1990	76	17,741	0.43
1991	123	17,873	0.70
1992	135	20,683	0.65
1993	150	21,553	1.43
1994	142	24,075	1.93
1995	160	30,764	1.91

Source - Direction of Trade Statistics year book, IMF Wastington Various Issues.

उपरांकित सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि भारत के ईरान को निर्यात में उतार–चढ़ाव आता रहा है ।

प्रश्नगत काल (1980–95) में भारत के ईरान से आयात को निम्नांकित सारणी के अवलोक से समझा जा सकता है –[1]

सारणी–7

भारत का ईरान से आयात (Millions of US dollors)

वर्ष	ईरान की निर्यात	सम्पूर्ण विश्व निर्यात	कुल निर्यात का %
1980	1,227	14,822	8.30
1981	1,655	14,400	11.50

शेष सारणी अग्रांकित

1. M. Azhar- India Iran Trade in Post- Revolutionary period, Incontemporary Iran and Emerging INDO-IRANIAN Relations Girijesh Pant P. 188

शेष सारणी

1982	1,490	17,450	8.54
1983	1,192	16,400	7.27
1984	1,072	17,697	6.06
1985	661	16,329	4.04
1986	281	15,051	1.90
1987	36	16,841	0.21
1988	59	19,130	0.31
1989	533	20,264	2.63
1990	482	23,940	2.01
1991	585	19,509	3.00
1992	643	23,638	2.72
1993	330	22,761	1.44
1994	476	26,846	1.77
1995	574	34,522	1.66

Source : Direction of Trade statistics year book, IMF, Washington, Various Issues.

सारणी की विवेचना से यह सपष्ट होता है कि भारत का ईरान से आयात भी निर्यात की ही तरह उतार–चढ़ाव से युक्त रहा है।

भारत के निर्यातों में जो ईरान को किया जाता है, चाय एक प्रमुख निर्यात है । इसका प्रश्नगत काल (1980–95) में निर्यात विवरण निम्नांकित सारणी में दिया जा रहा है –[1]

1. M. Azhar- India Iran Trade in Post- Revolutionary period, Incontemporary Iran and Emerging INDO-IRANIAN Relations Girijesh Pant P. 192

सारणी–8

भारत के ईरान को निर्यात में चाय का अंश (रू0 करोड़)

वर्ष	ईरान को चाय का निर्यात	ईरान को कुल निर्यात	कुल निर्यात में चाय का %
1980–81	25.1	123.00	20.4
1981–82	13.1	125.00	10.5
1982–83	21.9	74.00	29.6
1983–84	47.9	126.00	38.0
1984–85	73.9	134.00	55.1
1985–86	65.9	95.00	69.4
1986–87	33.1	47.00	70.4
1987–88	87.6	139.00	63.0
1988–89	51.5	89.00	58.0
1989–90	59.0	132.00	45.0
1990–91	61.8	141.00	44.0
1991–92	105.7	299.00	35.4
1992–93	72.51	331	21.79
1993–94	33.43	501	6.67
1994–95	14.84	492	3.01
1995–96	4.51	0513	0.89

Source : Report on currency and Finance, Reserve Bank of India,

Bombay Various Issues.

पूर्वांकित सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि 1980–81 में भारत की कुल चाय निर्यात का 5.9% अकेले ईरान को निर्यात हुआ । 1985–86 में 10.5% तथा 1987–88 में यह निर्यात 14.6% हो गया।

भारत और ईरान का प्रश्नगत काल 1980–95 तक का व्यापार उतार चढ़ाव युक्त रहा है । निम्नांकित सारणी के अवलोकन से इसको आसानी से समझा जा सकता है –[1]

सारणी–10

भारत – ईरान व्यापार (Millions of US dollors)

वर्ष	भारत–ईरान व्यापार	भारत का कुल व्यापार	ईरान का कुल व्यापार	व्यापार सन्तुलन	भारत के कुल व्यापार का %	ईरान के कुल व्यापार का %
1980	1375	23,263	26,865	–1089	5.91	5.12
1981	1810	21,227	22,870	–1500	8.53	7.91
1982	1660	27,105	27,766	–1320	6.12	6.00
1983	1345	29,139	38,251	–1039	4.62	3.52
1984	1210	26,345	30,864	–934	4.60	3.92
1985	676	24,594	25,131	–526	2.75	2.70
1986	336	24,186	17,399	– 176	1.40	1.93
1987	98	27,639	20,405	32	0.36	0.48
1988	178	32,111	20,961	70	0.55	0.85
1989	224	36,103	24,167	–130	0.62	0.93
1990	522	41,681	31,045	–354	1.25	1.68
1991	708	37,382	37,767	–462	1.90	1.90
1992	778	44,321	39,003	–508	1.80	2.00

Source :Direction of Trade Statistics year book, IMF, Washington, Various issues.

उपरांकित सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि 1980 में भारत–ईरान व्यापार 1375 करोड़ अमेरिकी डालर था तो 1987 में 98 करोड़ अमरिकी डालर ही रह गया । उभय राष्ट्रों के व्यापार का पक्ष भारत और ईरान के पक्ष में प्रायः सन्तुलित ही रहा है ।

1. M. Azhar- India Iran Trade in Post- Revolutionary period, Incontemporary Iran and Emerging INDO-IRANIAN Relations Girijesh Pant P. P. 184-85

निम्नांकित सारणी में ईरान को प्रमुख वस्तुओं के निर्यात को प्रदर्शित किया गया ।

सारणी–11

प्रमुख वस्तुओं का ईरान को निर्यात (कोष्ठको में कुल निर्यात प्रदर्शित है)

(करोड़ रूपये में)

प्रमुख वस्तुएँ	1980–81	1990–91	1992–93	1993–94	1994–95	1995–96
चावल	7.49	–	6.80	42.69	11.15	101.18
	(223.86)	(461.57)	(975.60)	(1287.38)	(1205.71)	(4568.08)
खाद्यय तेल	1.35	–	26.20	49.08	127.34	58.51
	(125.08)	(608.50)	(1545.29)	(2323.92)	(1797.84)	(2348.61)
Iron ORE	–	11.65	36.89	75.38	74.27	104.73
	(303.33)	(1049.13)	(1104.09)	(1373.67)	(1297.19)	(1721.03)
रसायन एवं	4.47	10.44	8.55	21.37	64.79	86.49
कॉच की वस्तुएं	(225.42)	(2344.67)	(3558.53)	(4635.25)	(6139.89)	(7890.70)

Source - Report on carrency and finance, 1995-96 P.P. 253, 255, 256, 257

उपरांकित सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि भारत का ईरान को प्रमुख वस्तुओं का निर्यात उतार–चढ़ाव युक्त रहा है । भारत और ईरान का वाणिज्यिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध दोनों देशों की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं एवं उसके राष्ट्रगत प्रभावों से भी प्रभावित होता रहा है ।

अध्याय – 6

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध

जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है, जिसका ग्राफ एक अरब को भी पार कर गया है । जिसमें चालिस विभिन्न जातिया (RACES) सम्मिलित है । ये लोग 161 विभिन्न भाषा में बोलते है तथा तीस विभिन्न लिपियो का प्रयोग करते है । भारत में सांस्कृतिक विविधता का अनुपम स्वरूप विद्यमान है, जो पारस्परिक रूप से एकता की लड़ी से आबद्ध है । ईरान भी एक प्राचीन एवं महान देश है, जो अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए सुविख्यात है । क्षेत्रफल की दृष्टि से ईरान भारत का लगभग आधा है जब कि भारत की जनसंख्या ईरान की जनसंख्या का लगभग सोलह गुना है । सांस्कृतिक विविघता का स्वरूप ईरान में भी विद्यामान है, परन्तु उस रूप में नहीं जैसा भारत में है । दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों की एक दीर्घकालिक अनवरत कड़ी एतिहासिक साक्ष्यों के विश्लेषण से प्राप्त होती है । सिन्धु सभ्यता से ही पारस्परिक सम्बन्धों का साक्ष्य मिलता है ।[1] 14 ई0पू0 से ही सांस्कृतिक सम्बन्ध थे । आर्यो के आगमन के सम्बन्ध में एक विचारधारा के अनुसार इण्डो–ईरानी आर्यो के आपस में सम्बन्ध थे जो एक दूसरे को सांस्कृतिक स्तर पर प्रभावित करते रहे थे । विदेशी आक्रमणों से भी सांस्कृतिक स्तर पर दोनों देशों के सम्बन्ध प्रभावित हुए । मौर्य काल की कलाओं पर ईरानी कला का प्रभाव स्पष्ट है । मेगस्थनीज के अनुसार मौर्य सम्राट ईरानी प्रणाली से रहते थे । ईरानी सम्राटो के समान ही वे अंगरक्षको द्वारा घिरे हुए एकान्त वास में रहते थे । इस काल में दोनों देशों के बीच साहित्यिक सम्बन्धों के साक्ष्य उपलब्ध है । गान्धार प्रान्त जो कला का केन्द्र था पर ईरानी संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट था । वास्तु एवं स्थापत्य दोनों कलाओं पर ईरानी प्रभाव स्पष्ट था। मौर्य शिल्पियों को ईरानियों ने ही लकड़ी, महीन चूने और ईट के स्थान पर पाषाण का प्रयोग सिखाया। ईरानी शिल्पकला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है ।

सल्तनत कालीन व मुगलकालीन भारत में ईरानियों का सम्बन्ध सांस्कृतिक एवं साहित्यिक स्तर पर

1. भारत का इतिहास – N.C.E.R.T. पृ. –64

ज्यादा रहा । फारसी साहित्य के विद्वानों का एक दूसरे के राज दरबारों में आना-जाना बहुत ज्यादा हुआ। जिससे साहित्यिक प्रथाओ, विधाओं तथा परम्पराओं का आदान-प्रदान तथा एक दूसरे की शैलियों को अपनाने का काम हुआ । दिल्ली के सुल्तानों ने फारसी भाषा को अपनी राज भाषा बनाया उसके संरक्षण एवं विकास के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना किया । विदेशी फारसी भाषा के विद्वानों को राजदरबारों में अतिथि का दर्जा दिया गया । जिससे दोनों देशों का साहित्य पारस्परिक रूप से प्रभावित हुआ । चिस्ती सम्प्रदाय के भारत में संस्थापक शेख मुईनुद्दीन चिस्ती का जन्म ईरान में हुआ था ।[1] इन्होंने तत्कालीन ईरान में प्रचालित परम्पराओ, रीतियों तथा सामाजिक संव्यवहार की अनेको चीजों को भारत में अपने सम्प्रदाय के माध्यम से प्रचलन में ला दिया । अपने जीवन काल में ये इतने लोकप्रिय हो गये थे कि इन्हें मुहम्मद गोरी ने 'सुल्तान उल हिन्द' अर्थात हिन्द के आध्यात्मिक गुरू की उपाधि से विभूषित किया था । संगीत के क्षेत्र में भी इन्होंने अमिट छाप छोड़ी । मुगलकालीन शासन व्यवस्था पर भी ईरानी प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है ।[2] सांस्कृतिक, संगीत एवं साहित्यिक संवहन में इन क्षेत्रों के कलाकारों विशेषज्ञों के एक दूसरे के राजदरबारों में आने-जाने से एक दूसरो को प्रभावित करने का लम्बा सिलसिला चला । दोनों देशों में एक दूसरे के महाकाव्यो का अनुवाद प्रचलन मे आया । जिससे सामाजिक सरोकारो के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ । ईरानी कला के प्रभाव से मुगलकालीन स्थापत्य कला के क्षेत्र में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ, जिसे 'इण्डो-पार्शियन स्थापत्य शैली' कहा जाता है ।[3] जिसके माध्यम से ईरानी स्थापत्य की अनेक वारीकियाँ भारतीय स्थापत्य कला में सहज ही चली आयीं । भोग विलास की सामाग्री, ललित कलाएँ, उद्यान निर्माण कला, चित्रकला एवं अन्य कलायें भी ईरानी प्रभावानुसार परिवर्तित एवं परिमार्जित हुई । कमोवेश यही स्थिति ईरानी सामाजिक, संगीत एवं सांस्कृतिक परिवेश की भी रही ।

ब्रिटिश कालीन भारत के उपनिवेशवादी स्वरूप के कारण भारत एवं ईरान के पारस्पतिक सम्बन्धों एवं संव्यवहारों के आपसी रिस्तों का स्वरूप निरन्तर समापन की तरफ अग्रसर हुआ । सम्बन्धो का जो अनवरत सिलसिला मुगलकाल में अपने चर्मोत्कर्ष पर था, पूर्णतयः अवरुद्ध हो गया । स्वतन्त्र भारत में वैदेशिक सम्बन्धों का पूर्णतयः नवीन स्वरूप सामने आया । जिसमें लोकतांत्रिक देशों से ही ज्यादा

---

1. ए0के0 मित्तल- पार्श्वोद्धृत पृ. – 315
2. वही, पृ.-405
3. वही, पृ.-413

सम्बन्ध रहा । राजतन्त्रात्मक ईरान से सम्बन्धों का कोई विशेष उल्लेखनीय स्वरूप नहीं है । 1979 की ईरान की इस्लामिक क्रान्ति के बाद ईरान के वैदेशिक सम्बन्धों का दायरा बहुत ही संकुचित रहा । धर्म और राजनीति के घाल-मेल से जिस व्यवस्था का निर्माण हुआ, उसने ईरानी विदेशनीति को इस्लामिक जगत में भी अलग-थलग कर दिया रूस, चीन, भारत एवं अन्य एशिया एवं अफ्रीका के देश ईरान से एक दूरी बनाये रखने में ही अपना भला देखते थे ।[1] इन दशाओं में भारत की सम्बन्धों की दीर्घकालिक ईरानी परम्परा बाधित हुई कोई विशेष उल्लेखनीय स.माजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध नहीं रहे । 1989 में मरहूम इमाम अयातुल्ला खुमैनी के निधन के बाद सुधारवाद का ईरान में एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। अन्य देशों के साथ -साथ भारत से भी ईरानी सम्बन्धों का फलक धीरे-धीरे विस्तृत होना प्रारम्भ हुआ । हासमी रफसंजानी राष्ट्रपति बने । भारत एवं ईरान पुनः दीर्घकालिक सम्बन्धों की अनवरत धारा में प्रवाहित होना प्रारम्भ किये । साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों का शासकीय एवं गैर शासकीय स्तरों पर अनवरत सिलसिला पुनः प्रारम्भ हुआ । भारत एक विशाल देश है, जिसकी भौगोलिक स्थिति में भारी विविधा और अनेकता दिखायी पड़ती है । यह कहीं गर्म कही ठण्डा कहीं शीतोष्ण है । कहीं जंगल है तो वहीं रेत ही रेत और कही खूब हरे भरे प्रदेश । इससे भारतीय संस्कृति को खेतों खलिहानो, वस्तियों, जंगलों और रेगिस्तानों में खुलकर खेलने का अवसर मिला है । इन्हीं के बीच रहकर हमारी संस्कृति के बाह्य और आन्तरिक रूप का निर्माण हुआ है । भारत जातीय अजाबघर भी है, जिसमें दो हजार जातियॉ निवास करती है । भारत के विभिन्न राज्यों में दो सौ के लगभग बोलियॉ और भाषायें है । विश्व के सभी प्रमुख धर्म-भारत में विद्यमान है जैसे- हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, इस्लाम तथा ईसाई धर्म । भारतीय संस्कृति की विशेषताओं में प्रधान है - कर्म प्रधानता, आध्यात्मिकता, प्राचीनता, अमरता, चिन्तन की स्वतन्त्रता, सामूहिक कुटुम्ब प्रणाली, ग्रहणशीलता, विश्वकल्याण की भावना, सहिष्णुता और उदारता तथा सबसे प्रधान विशेषता है - अनेकता में एकता ।[2]

भारत अनादिकाल से समस्त संसार का मार्ग दर्शन करता रहा है । भारत भूमि को 'स्वर्णादपि गरीयसी'' कहा गया है । भारत को जगत्गुरू भी कहा गया है, क्योंकि उसने विश्व वसुधा

---

1. जितेन्द्र कुमार सिंह- अलेख , राष्ट्रीय सहारा लखनऊ 25.02.2000
2. परीक्षा मंथन निबन्ध वार्षिकी 1995-96 भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता पृ. 65, एकेडमी प्रेस इलाहाबाद ।

के कोने -कोने में ज्ञान विज्ञान का प्रकाश फैलाया ।[1] महमूद-गजनबी के दरबारी लेखक अलबरूनी ने अपनी पुस्तक में ऐसे हवाले दिये है जिनसे ईरान और भारत की धनिष्ठता सिद्ध होती है । प्राचीन अरब लेखक अल याकूबी ने भी इसी तथ्य की पुष्टि की है । भारत और ईरान का सांस्कृतिक सम्बन्धों का विषय तो प्रश्नगत है ही, यदि इस अध्ययन के दायरे को और अधिक विस्तृत किया जाय तो यह सत्य भी उद्धाटित होता है कि आज मानव ईरान, भारत, चीन, युनान और ग्रीष जो मानव सभ्यता के जनक देश है, इनका ऋणी है । इन देशों का पारस्परिक पूर्व समय से चला आता हुआ क्रिया कलाप, जिससे संस्कृति का निर्माण हुआ, इनके समाज में हजारों वर्षो से सम्मिलित है । इन देशो के निवासियों की पारस्परिक पहचान इतनी गहराई से जुड़ी है कि यह बहुआयामी सम्बन्धों पर आधारित विकासात्मक नीति निर्धारकों को प्रभावित करती है ।[2] इन्ही तथ्यों के प्रभाव एवं अनुप्रकाश में भारत एवं ईरान के बीच सांस्कृतिक स्तर पर आपसी आदान-प्रदान होता रहा है । ऐसे ही पूर्ववत भाव भारतियों और ईरानियों, जो एक दूसरे के प्रति कई हजार वर्षो तक पारस्परिक रूप से क्रियाशील रहे है एवं जिन्होंने अपने अनुभव, विज्ञान एवं साहित्य का आपस में आदान-प्रदान किया है, के बीच विद्यमान है । इस देश में मुसलमानों के अल्पमत में होने के बावजूद और यह कि भारत और ईरान के बीच कोई उभय व भौतिक सीमा रेखा नहीं है, ईरान की आम जनता उनके विदेश नीति कार सहित इस विचार के साथ कि इस देश के साथ किसी भी क्षेत्र में द्विपक्षीय सम्बन्धों के विकास में कोई बाधा नहीं है, भारत को अपना पड़ोसी देश मानते है ।[3]

सांस्कृतिक कारक भी मानवाधिकारों जैसी सामान्य विचारधाराओं से सम्बन्धित, ईरान के इस्लामिक गणराज्य के विचार बिन्दुओं जो भौगोलिक स्थिति परिवर्तन की वजह से है कमोवेश यही स्थिति भारत की भीं है । देश जो प्राचीन सभ्यता के पालन स्थल रहे है तथा जो बहुमूल्य संस्कृति के मालिक है और अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप विकसित करने में काफी सक्षम है । ये देश आपस की समझ के आधार पर अपने अनुभव और विचारों का आदान-प्रदान अपने आँचलिक परिवेश के विकास व विदेशी शक्तियों द्वारा व उनके प्रदूषित हस्तक्षेप करने से रोककर कर सकते है । उदाहरार्थ ईरान, चीन व भारत के पास ऐसी क्षमता है ।[4]

---

1. पं. श्रीराम शर्मा, आचार्य-समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान-भाग -2 युग निर्माण योजना मथुरा -1993
2. ए0शेख अख्तर- मुस्लिम गणराज्य ईरान-वैदेशिक नीति की आधारभूत अवधारणा, इ कन्टेम्प्रेरी ईरान एण्ड एमरजिंग इण्डो ईरानी रिलेशन्स J.N.U. नई दिल्ली ।
3. वही
4. चोपड़ा पुरी दास-भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग-एक, 1995 दिल्ली

कुछ लोग भारतीय संस्कृति सबको आत्मसात कर जाती है, यह इसकी बहुत बड़ी विशेषता मानते है । कितनी जातियाँ यहाँ घुली मिली, उनकी अलग-अलग पहचान नहीं रह गयी, गगां की धारा में जितनी नदियां मिली सभी गंगा हो गयी पर इससे बड़ी विशेषता भारतीय संस्कृति की यह है कि यह परायापन नहीं देखती, न मनुष्य की किसी अन्य प्रजाति मे न जीव जगत् मे । अतः आक्रामण, हिंस मनुष्य या पशु को भी आत्मीय भाव से देखती है । यह अपने भाव को आरोपित नहीं करती न दूसरों से आरोपित होना चाहती है । हॉ यह न अपने को अद्वितीय मानती है और न दूसरे की अद्वितीय के दावों को स्वीकार करती है । कहना चाहे तो कह सकते है कि भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति उसकी सर्वमयता है । उसके देवी देवता सबके है, वे सर्वमय है । उपनिषदों में कहा गया है कि जो सब को देखता है, वहीं देखता है, जो सब को नहीं देख पाता वह जीवन को नहीं समझ पाता ।[1] भारतीयता किसी से कुछ छीनती नहीं, किसी से कुछ वसूलती नहीं, बस सुबास की तरह छा जाती है, जो उसमें एक बार शामिल हो जाती है । शामिल होने की और कोई शर्त नहीं, सिवाय इसके कि जिस देश मे पॉच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) के साथ सम्पर्क करते हो उस देश की उदारता और रमणीयता, दूसरों के लिए आतिथ्य में बिछ जाने की विनम्रता और दूसरों को प्रिय लगने के लिए सहजमधुता को समझो । ये भाव किसी जाति विशेष, इतिहास विशेष, ग्रन्थ विशेष की इजारददारी नहीं, सबके है, बस हाथ बढाओ, तुम्हारी अंजलि में जितना आये वह सब तुम्हारा है ।[2] पो0 मैक्स मूलर ने अपनी 'साइन आफ लेग्वेज' पुस्तक में लिखा है – फारसी लोगों ने आर्यवंशी परपराओं को अधिक सुरक्षित रखा । वे लोग भारत के उत्तर पश्चिम भाग से चल कर फारस में वसे थे । उनके धर्मग्रन्थ में जिन्दाबस्ता भारतीय धर्म दर्शन ही भरा पड़ा है । सर विलियम जोन्स ने अपने भाषा शोध में इस बात की चर्चा की है कि जिन्दकोष में साठ-सत्तर फीसदी शब्द शुद्ध सस्कृति के है ।[3] अपने 5000 वर्षों के इतिहास वाला भारत सांस्कृतिक अध्ययन के लिए सर्वोच्च क्षेत्र है। इस सुदीर्घ काल मे देशी विदेशी शक्तियों के बीच टक्करें होती रहीं । विदेशी शक्तिया देशी शक्तियों में धुल मिल गयी, किन्तु देशी लोगों पर और उनके जीवन तथा आचरण पद्धति पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रही । इन सब ने भारतीय संस्कृति की मुख्य धारा में, अनेक नदी, नालों की भांति मिलकर उसे आगे बढ़ाया है ।

1. डा0 विद्यानिवास मिश्र-भारतीय संस्कृति और समन्वय पृ. पृ. 63-64 परीक्षा मंथन- पाश्र्वोद्धृत
2. वही पृ. 64 पाश्र्वोद्धृत
3. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य- पृ. 69 पाश्र्वोद्धृत

उसे सूखने तो दिया ही नहीं, गतिहीन भी नहीं होने दिया । इस प्रकार भारतीय संस्कृति को एक मिश्र संस्कृति कहा जा सकता है ।[1] डा0 राधा कुमुद बनर्जी के अनुसार– ''भारत वर्ष सम्प्रदायो एवं रीति रिवाजों धर्मो और सभ्यताओ–विश्वासों और बोलिया, जातीय प्रकारों और जातीय व्यवस्थाओं का एक अजायबघर है, पर इन सारी विभिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय संस्कृति में मूलभूत एकता है।'' बाह्य विभिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय संस्कृति में मौलिक एकता पायी जाती है । यह एकता कोई हाल की घटनाओं या ब्रिटिश शासन का परिणाम नहीं मानी जा सकती, बल्कि संस्कृति एकता उतनी ही प्राचीन है जितनी कि भारतीय संस्कृति । सांस्कृतिक एकता भी अनेकता में एकता का मूलतत्व है । विभिन्न भाषाओं एवं रीति रिवाजों के होते हुए भी विभिन्न सम्प्रदाओं के साहित्य एवं विचारों पर सांस्कृतिक एकता की मुहर लगी हुई है ।[2] विभिन्न सांस्कृतियों के आपसी सम्पर्कों से साहित्यिक आदान–प्रदान एवं साहित्यिक सम्वर्धन का भी रास्ता प्रशस्त हुआ है । आर्यो के बारे में ऐसा माना जाता है कि वे भारत में बाहर से आये थे । इसका प्रमाण यह है कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा और पश्चिम की पुरानी भाषाओं में –इंडो–आर्य या इंडो–जर्मन दोनों भाषा परिवारों से निकली भाषाओं में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से एक दूसरे में सादृष्य है ।[3] आर्यो की एक शाखा ईरान या फारस में रह गयी, जब कि एक अन्य आगे बढ़ गयी और सिन्धु के क्षेत्र में जिसे 'पंचनद' कहा जाता है बस गई । ऋृग्वेद और अवेस्ता–प्राचीन ईरानियों का धर्मग्रन्थ– में शब्दों, वाक्यांशो, पद्यांशों, और यहाँ तक की पुराण कथाओं और आख्यानों में साम्य से यह अनुमान होता है कि हिन्दुओं और पारसियों के पूर्वज दीर्घकाल तक साथ रहे थे ।[4] वैदिक भाषा की (और कुछ कम सीमा तक संस्कृत की) ईरानी भाषा के प्राचीनतम रूप 'अवेस्ता' की भाषा से तुलना करने पर अनुमान होता है कि ये दोनों किसी एक ही भाषा की बोलिया है ।[5] भारतीय एवं ईरानी इन दो महान संस्कृतियों के पारस्परिक सम्पर्को ने अनेक नवीन सम्भावनाओं के विकास का मार्ग प्रसस्त किया । ये सम्भावनाऐं अनेक स्तरों पर वांक्षित परिणामों तक विकसित हुई । साहित्यिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में पर्याप्त विकास हुआ । कला के विविध क्षेत्रों में इन दो महान संस्कृतियों के पारस्परिक सम्बन्धों से अनेकों उल्लेखनीय विकासात्मक, शोधात्मक कार्य हुए । पारस्परिक सम्पर्को से कला के क्षेत्र में अनेकों

---

1. चोपड़ा, पुरी, दास,–पार्श्वोद्धृत
2. डा0 राधा कुमुद बनर्जी –''भारत की आधारभूत एकता'' परीक्षा मंथन निबंध वार्षिकी पृ.पृ. 65–66 पार्श्वोद्धृत
3. चोपड़ा, पुरी, दास,–पार्श्वोद्धृत पृ. 38
4. वही पृ.पृ.–38–39

नवीन कार्य हुए, जो दोनों सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के विधि पक्षों को उद्घाटित एवं व्याख्यायित करते थे । यह क्रम दीर्घकालिक होने के कारण कला की अनेकों नवीन शैलिओ, विधाओ का विकास हुआ । मौर्य कालीन कला तथा स्थापत्य में जो अनेकों सतम्भो का निर्माण कार्य हुआ था, के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का कथन है कि ये स्तम्भ मौर्य सम्राट द्वारा नियुक्त ईरानी कलाकारों द्वारा बनबाये गये थे ।[1] भारत पर इस्लामिक प्रभाव के दृष्टिकोण से 11 वीं सदी के प्रारम्भ से भारत पर तुर्क अफगानों की विजय बहुत महत्वपूर्ण है, जिसके द्वारा इस्लाम का भारत में राजनीतिक शक्ति के रूप में आगमन हुआ । मुसलमानों की ईरान और मिश्र की प्राचीन सभ्यता तथा युनानी रोम सभ्यता की शेष परम्परा को आत्मसात कर लिया था ।[2] मुगलकाल के पूर्व कला में परम्परागत भारतीय एवं फारसी शैलियों का सम्पर्क समागम चल ही रहा था कि 1526 में मुगलों का आगमन हुआ । वे अपने साथ कला की नई परम्परा लाये। जिसे फारस के महान कलाकार 'विहजाद' (पन्द्रहवी शदी) ने विकसित किया था ।[3] मुगलकाल में अनेकों कलाकार समय-समय पर बादशाहों के दरबारों में मेहमान कलाकार की हैसियत से आते रहे । इन्हें राजकीय संरक्षण प्राप्त था । इनके कला कौशल से अनेकों स्थापत्य कीर्तिमानों की स्थापना हुई, जिसकी चरम सीमा रही विश्व के आश्चर्यो में एक 'ताजमहल' । वैसे दीर्घकालिक सम्पर्को का प्रतिफल यह रहा कि धीरे-धीरे भारतीय कला के सम्पुट इसमें समाहित होते गये । नवीन मिश्रित विधाओ का प्रकटन होता गया । शाहजहाँ ने अर्ध-हिन्दू उदारवादी शैली जो कि अकबर की इमारतों की विशेषता थी, को त्याग कर पुनः फारसी पद्धति के रूपांकणों को अपनाने का प्रयत्न किया है ।[4] शाहजहाँ द्वारा आगरे में ताज महल के मकबरे का निर्माण मुगल स्थापत्य कला की चरम सीमा है । इसे उसने अपनी प्राणोपम पत्नी मुमताज महल के यादगार स्वरूप बनवाया है । इसे विश्व में स्थापत्य कला के चमत्कार का नमूना माना जाता है। इसे बनाने में बीस वर्षो का समय लगा तथा केवल मकबरे के निर्माण में पच्चास लाख रकम खर्च की गई थी । इसकी सम्पूर्ण रचना और सामान आदि में इससे बहुत अधिक व्यय हुआ है । ऐसा अनुमान है कि यह राशि 4,11,48,826 रू0 के करीब होगी । इसका प्रधान शिल्पी एक तुर्क (या फारसी) उस्ताद इंशा था इसे बड़ी संख्या में हिन्दू कारीगरों का सहयोग प्राप्त था ।[5] भारत के शरीर मे बसने वाली ईरान की

---

1. चोपड़ा, पुरी, दास- पार्श्वोद्धृत- 266
2. वही भाग-दो पृ. 102
3. वही भाग-दो पृ.पृ. 186
4. वही पृ. 216
5. वही पृ.पृ. 216-217

आत्मा ! यह है वह जुमला जो ईरान के लोगा मोहब्बत की इस दास्तां-ताज महल के लिऐ इस्तेमाल करते है और क्यों नहीं इतिहास के पन्नों में झाँकते रहने वाले बताते है कि शाहजहॉ की पत्नी मुमताज महल और जहॉगीर की बेगम नूरजहॉ के पूर्वज इसी ईरान के ही रहने वाले थे । नूरजहॉ ईरान के एक विद्वान मिर्जा गयासुद्दीन बेग तेहरानी की बेटी थी । यही नहीं 17वीं शदी के एक मशहूर वास्तुविद उस्ताद ईशा ताजमहल की डिजाइन तैयार करने वालों में से थे । वे ईरान के खूबसूरत शहर शिराज में रहा करते थे।[1]

दक्षिण भारत में बहमनी साम्राज्य के विघटन के बाद विकसित अहमद नगर, बीजापुर, गोलकुण्डा के दकनी सुल्तानो ने भी मुगल परम्परा से अलग चित्रकला की अपनी अलग शैली बना ली थी । यहॉ के शासक शिया थे । जिनका फारस से गहरा राजनीतिक सम्बन्ध रहा था, फलस्वरूप कई फारसी और तुर्की कलाकार बीजापुर एवं गोलकुण्डा के राजदरबारों में नियुक्त किए गये थे । इसी से दकनी स्कूल के आरम्भिक चित्रो में फारसी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । प्राकृतिक दृष्य एवं सजावटी तत्व फारसी का बोध देते है ।[2] बहमनी सल्तनत भी वास्तु शिल्प की अपनी एक शैली विकसित करने में सफल रही थी। यह न तो परम्परागत द्रविण-चालुक्य शैली पर आधारित थी और न दिल्ली सल्तनत की शैली पर । यह प्रत्यक्ष रूप से फारस के वास्तु शिल्प से प्रभावित है, जहॉ से बहमनी राज्य का संस्थापक एक सहयात्री के रूप में आया था । वह अपने साथ में बड़ी संख्या में शिल्पकार, कारीगर एवं मजदूरो को भी लाया था। साथ ही मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित करने के निर्णय से भी कई शिल्पकार शाही सेवा छोड़कर बीजापुर आ गये थे । जहॉ दिल्ली और फारसी दो स्थापत्य शैलियो का सामंजस्य आरम्भ हो गया था ।[3]

इसके पूर्व मौर्यकाल में भी सांस्कृतिक सम्बन्धो का प्रचुर मात्रा मे साक्ष्य उपलब्ध हैं । सम्राट अशोक के काल में रीति-रिवाजों संस्कृति में कुछ समानता का कारण भारत पर ईरान का प्रभाव बताया गया हैं। एकेमेनिड प्रभाव के बारे में अब तक दो मत रहे हैं । इनमे किसी को भी ठीक नही माना जा सकता । एक मत के अनुसार सारी की सारी अशोक कालीनकला एकेमेनिड ईरान से आयी थी, जबकि दूसरा इतने ही बल के साथ दावा करता है कि यह पूर्णतयः देशी हैं । पुरातत्व विभाग ने यह सिद्व कर दिया हैं कि

1. ईरान डायरी-ज्ञानेन्द्र शर्मा दैनिक जागरण इलाहाबाद 14 अप्रैल 2001 ।
2. चोपड़ा, पुरी, दास- पार्श्वोद्धृत- 216, 217
3. वही पृ. 209

एकेमेनिड कालीन ईरान और उत्तर पश्चिमी भारत सांस्कृतिक रूप से बहुत निकट थे।[1] ईरान और भारत में एक जैसी प्रथाओं में से कुछ व्यवहारिक आवश्यकता के परिणाम थे और ऐसा बहुत ही संस्कृतियों में पाया जाता हैं, उदाहरण के लिए ईरान में कुछ अवसरो पर सिर का मुडवाना दण्ड देने का एक तरीका था।[2] अर्थशास्त्र और महावंश दोनो में इस प्रकार के दण्ड़ का जिक्र है, परन्तु इस प्रकार का दण्ड़ आधुनिक भारत में भी प्रचलित हैं । ईरानी और भारतीय आर्य पुराने आर्यो के नये इलाके में बसने के बाद भी बहुत से पुराने रिवाज का पालन करना उनके लिए स्वाभाविक था । राजा के जन्मदिन पर बाल धोना इसी प्रकार की रीति थी । दारियस और अशोक के फरमानो में समानता एक जैसी संस्कृति का एक और साक्ष्य है। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि अशोक को दारियस के फरमानो का ज्ञान था । उसे सम्भवतः इस बात का पता था कि एकेमेनिड के लोग चट्टानो पर अभिलेख अंकित करते थे और उसने भी ऐसा ही करने का निर्णय लिया । सम्बोधन की समानता से प्रतीत होता है कि सम्भव है कि अशोक ने दारियस के फरमान को पढ़ा हो ।[3]

यह सांस्कृतिक समानता विचारों तक ही सीमित न थी और यह बात मौर्य साम्राज्य के उत्तर पश्चिमी भाग में रहने वाले लोगों और एकेमेनिड ईरान के लोगों मे भाषाई घनिष्ट सम्बन्ध से स्पष्ट है । उत्तर के सहवाजगढ़ी और मानसेहरा कें अभिलेखों में 'खरोष्ठी' का उपयोग ईरान से गहरे सम्बन्धों का एक साक्ष्य हैं । तक्षशिला का आंशिक सीरियाई अभिलेख और कंदहार का सीरियाई अभिलेख दोनो इलाको में निरन्तर अन्तः संचार का घोतक है । मुख्य शिलालेखो के उत्तरी रूपान्तर में ईरानी शब्द "दिपि" और "निपिष्टे" का प्रयोग इस धारणा की पुष्टि करता है। एकेमेनिड कालीन ईरान तथा मौर्य कालीन भारत की कुछ इमारतों में वास्तुशिल्पीय निकटता काफी चर्चा का विषय रहीं हैं ।[4] अशोक ने अपने अभिलेखों में अपने अंभिषेक के वर्ष की गणना की हैं, उसमे अन्य विस्तार नही देता । स्पष्ट ही इस विषय में ईरानी प्रथा का अनुसरण करता था । ईरानी राजाओं को कौटिलीय अर्थशास्त्रीय जैसी विधि मालुम थी, परन्तु उसका सभी अवसरों पर वे मान नहीं करते थे ।[5] मौर्य कला के अवशेष अपनी शैली में ईरानी इतिहास के एकेमेनिड काल के अवशेषों के समान होने के तथ्य से इतने ज्यादा आच्छादित है कि दो विरोधी मत के

---

1. रोमिला थापर, अनुवादक डी.आर.चौधरी, प्रभा यादव- पार्श्वोद्धृत- पृ.पृ.-119 ग्रन्थ शिल्पी 1987 दिल्ली
2. स्मिथ-अर्ली हिस्ट्र ऑफ इण्डिया पृ. 137
3. रोमिला थापर, अनुवादक डी.आर.चौधरी, प्रभा यादव- पार्श्वोद्धृत- पृ.पृ.-119,
4. वही पृ. पृ. 119-122 पार्श्वोद्धृत
5. ए.के. नीलकण्ड शास्त्री (सम्पादक)- नन्द मौर्य युगीन भारत-पृ. 224

कला विज्ञो के बीच संघर्ष के बीच इन्हे गोला बारूद की तरह इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति रहती है । एक तरफ वे कला विद्वान है जो इन्हें ईरानी कलाकारों की कृतियाँ मानते है और दूसरी तरफ वह विचार सम्प्रदाय है, जो इन्हें पूर्णतयः देशज मानता है । स्थापत्य में लकड़ी के प्रयोग की कमी का एक कारण हो सकता है-एकेमिनिड ईरान के सम्पर्क का प्रभाव रहा हो । व्हीलर का सुझाव है कि राज्य द्वारा नियुक्त शिल्पकार वे बेरोजगार ईरानी शिल्पकार थे, जो भारत में बस गये थे । यह तर्क संगत है क्योंकि पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी प्रान्तों में मौर्यो द्वारा ईरानी या ईरानी मूल के भारतीय नियुक्त किये जाते थे । उदाहरण के लिए गर्वनर तुषास्प । फिर भी यह आश्चर्यजनक है कि अगर ईरानी शिल्पकार एक बड़ी संख्या में इन प्रदेशों में बसे हुए थे तो भी यहाँ एकेमिनिड मूल की ज्यादा कृतिया नहीं मिलती ।[1]

मुगलकाल का भारत-ईरान सम्बन्ध सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में, जिसके विस्तार का फलक अत्यन्त विस्तृत था, अध्ययन का एक वृहत् क्षेत्र है । हुमायूँ के काल में भवनों और मस्जिदों में-जो फारसी ढंग की मीनाकारी किये हुए खपडों की सजावट बनी थी । यहाँ पर हमें यह याद रखना चाहिए कि यह 'फारसी' बल्कि मंगोल पद्धति पहले पहल भारत में हुमायूँ द्वारा नहीं लायी गयी, यह पहले से ही बहमनी राज्य में पन्द्रहवीं शदी के उत्तरार्द्ध में वर्तमान थी । कलात्मक स्तर पर ही समान परम्पराओं एवं वारीकियों का ही साम्य नहीं था बल्कि सामाजिक रीति-रिवाजों में भी समानता के साक्ष्य उपलब्ध रहे है । अकबर की माँ जाम के एक फारसवासी शेख परिवार में उत्पन्न हुई थीं, जिससे उसने विरासत में फारसी विचार पाये और वह उससे चिपका रहा ।[2] तेरहवीं शदी में फारस में उसके मंगोल विजेताओं ने चीनी कला का एक प्रांतीय रूप प्रचलित कर किया, जो भारतीय बौद्ध, ईरानी, वैक्ट्रियन तथा मंगोल प्रभावों का मिश्रण था । इसे मंगोलो के तैमूर वंशीय उच्चाधिकारियों ने जारी रखा तथा फिर भारत में ले आये । इसी भारतीय, चीनी, फारसी कला के लक्षणों का एकीकरण मिश्रण एवं सम्मिश्रण अकबर के समय में चित्रकला के तत्कालीन भारतीय स्कूलों की उपज में हुआ ।[3] हुमायू ने जिसे तैमूरियो के समान कला में अभिरूचि थी, फारस में अपने निर्वासन के समय चीनी-फारसी संगीत, काव्य और चित्रकला का अध्ययन करने में बिताया तथा 'शाह तहमास्प' के उदार संरक्षण में रहने वाले फारस के प्रमुख कलाकारों के सम्पर्क में

1. रोमिला थापर पृ.पृ. 119-122 पार्श्वोद्धृत
2. मजूमदार राय चौधरी दत्त- भारत का वृहत् इतिहास भाग दो- पृ.पृ. 295-298, 1994 दिल्ली ।
3. वही पृ.पृ. 306, 308, 1994 दिल्ली

आया। बाद में इन्हीं में से कलाकारों को काबुल में लाया गया । हुमायूँ और उसका पुत्र अकबर इनसे चित्रकला सीखते थे, तथा उन्हें 'दास्ताने अमीर–हमजा के लिए चित्र बनाने का कार्य सौंपा गया । ये विदेशी कलाकार अपने भारतीय सहयोगियों के साथ मुगल चित्रकला प्रणाली के केन्द्रीय भाग बन गये, जो अकबर के समय में अत्यन्त विख्यात हुई ।[1]

मुगलकाल के थोड़ा पूर्व के सल्तनत कालीन भारतीय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक इतिहास के अवलोकन से ईरान और भारत के बीच के सम्बन्धों का प्रगाढ़तम रूप प्रस्तुत होता है । इस काल में फारस के रीति–रिवाजों और जीवन को भी अपनाया गया । इल्तुतमिश और वल्बन दोनों ने अपने वंश को फिरदौसी के 'शाहनामे' के उल्लिखित पौराणिक अफरासियाब से जोड़ा । रजिया को अपना उत्तराधिकारी चुनते समय भी इल्तुतमिश ने ईरानी परम्परा से प्रेरणा ली थी, जहाँ पिता के बाद पुत्री के सिंहासनारोहण के उदाहरण प्राप्त होते थे । बल्वन ने अपने पौत्रों के नाम फारस के सम्राटों के सामन रखे । फारसी रिवाजो, सव्यवहारो, संस्कारो व उत्सवो को अपनाया गया । 'नवरोज' का उत्सव मनाना बल्वन ने शुरू किया, उसने अपने दरबार की संरचना भी फारसी के आधार पर की । सेना की संरचना मध्यकालीन फारसी सेना के आधार पर थी और उसी प्रकार के अस्त्र–शस्त्र, युद्ध सामग्री एवं युद्ध प्रणाली अपनायी गयी । इल्तुतमिश ने ईरान की राजतन्त्रीय परम्परा को लागू किया ।[2] बल्वन ने सर्वप्रथम फारस के इस्लामिक राजत्व के राजनीतिक सिद्धान्तों व परम्पराओं के आधार पर अपने शासन को संगठित किया। बल्वन के राजत्व का 'सिजदा' और 'पाववोस' सिद्धान्त इसी की प्रतिकृति रही । इस प्रकार बल्वन के राजत्व सिद्धान्त का स्वरूप और सार फारस के राजत्व से प्रेरित था, उसने फारस के लोक प्रचालित वीरो से प्रेरणा लेकर अपना राजनीतिक आदर्श निर्मित किया था, उसका अनुसरण करते हुए उसने राजत्व की प्रतिष्ठा को उच्च सम्मान दिलाने का प्रयास किया। राजा को धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि 'नियाबते खुदाई' माना गया ।[3]

मध्यकाल में भारत से सोने के बदले अनेक प्रकार की जड़ी बूटियाँ विदेशों को ले जाई जाती थी। ईरान के शासक गजन खाँ के प्रधानमंत्री रशीदुद्दीन द्वारा भारत का भ्रमण का मुख्य उद्देश्य इस देश की

---

1 मजूमदार, राय चौधरी, दत्त– पृ. 308 पार्श्वोद्धृत

2. हरिशचन्द वर्मा–मध्यकालीन भारत–सपा– पृ.पृ – 171–73, 1996 दिल्ली

3. वही पृ.पृ. 180–182

जड़ी–बूटियॉ प्राप्त करना भी था । फलों में नीबू, संतरो आदि का तब तक फारस में उत्पादन नहीं होता था, यह यहीं से जाता था।[1] मध्यकाल में ही ग्वालियर और गुजरात में उनकी शैली और विषय वस्तु में अकबरी चित्रशाला द्वारा प्रचलित चित्रकला सम्बन्धी नवीन उद्‌भावनाओं को युरोपीय और ईरानी शैलिया भी शामिल थीं, आत्मसात् कर लिया गया । प्रो0 रिचर्ड एटिंगहाउसेन और इर्मा एल.फ्राड ने हाल ही में ईरानी साहित्यिक ग्रन्थों और सम्बद्ध पाण्डुलिपियों की खोज की है । जिसमें वेश–भूषा और रीति–रिवाजों, प्राकृतिक दृष्यो, स्थापत्य, आन्तरिक सजावट फूलों और पौधों एवं उच्च कोटि के रंग चयन आदि से परिपूर्ण एक बहुत परिष्कृत ईरानी रंग की शैली की खोज की गयी है ।[2] भारत ईरान सम्बन्धों की एक दीर्घकालिक एवं अत्यन्त सुदृढ़ परम्परा में सांस्कृतिक स्तर पर विभिन्न विधाओं में अत्यधिक उन्नत स्तर के सम्बन्ध रहे है । अमीर खुसरो भारतीय संगीत से बहुत अधिक प्रभावित थे, और उन्होंने उसमें अनेक रागों और तालो की वृद्धि की । उन्होंने यह कार्य भारतीय एवं ईरानी संगीत के मिश्रण से किया था । खुसरो ने भारतीय रागो का वर्गीकरण संगीत में प्रयुक्त होने वाले बारह स्वरो के ईरानी नामों के आधार पर किया ।[3] सल्तनत कालीन और मुगलकालीन भारत एवं ईरान सम्बन्धो में सबसे अच्छा, उत्कृष्ठ सम्बन्ध व सम्बन्धों की पराकाष्ठा शाहजहा के शासन काल में स्थापत्य कला के क्षेत्र में रहीं ।

दक्षिण भारत का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश तथा तत्कालीन ईरान के तत्सम्बन्धी क्षेत्रों में साम्य का जो, स्वरूप था तुलनात्मक अध्ययन, शोध व समीक्षा के लिए अत्यन्त विस्तृत धरातल उपलब्ध कराता है । वहमीन साम्राज्य का संस्थापक अलाउद्दीन बहमन ईरान से सम्बन्धित था । इसी साम्राज्य के शासक महमूद गावॉ बड़ा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सुरूचि सम्पन्न व्यक्ति था । वह विद्वानों का महान संरक्षक था, उसने अपनी राजनीतिक गतिविधियों को केवल बहमनी साम्राज्य तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् भारत और उसके बाहर ईरान, इराक, मिश्र तथा तुर्की के सुल्तानों के साथ पत्र व्यवहार किया, अन्य विविध क्षेत्रों में समुन्नत सम्बन्धों को स्थापित किया ।[4] बहमनी साम्राज्य में युरोप की सैनिक, वास्तुकला और फारस (ईरान) की वागरिक वास्तुकला का जितना प्रभाव देखने को मिलता है । उतना भारत की समकालीन किसी अन्य शैली में नहीं । गुलवर्गा का जामा मस्जिद ईरानी वास्तुविदो की कृति

1. हरिशचन्द्र वर्मा पृ. 463 पार्श्वोद्धृत
2. वही पृ.पृ. 527–528
3. मजूमदार, राय चौधरी, दत्त– पार्श्वोद्धृत– पृ. 535
4. हरिशचन्द वर्मा– पार्श्वोद्धृत– पृ.पृ. 317–325

के रूप में विख्यात है । दौलताबाद स्थित चॉद मिनार (1435 ई.) और वीदर स्थित महमूद गवान के महाविद्यालय (1472 ई.) जैसे अन्य भवन भी प्रमुख रूप से ईरानी शैली के बने है और अवश्य ही अधिकांशतः उसी देश के वास्तुविदो और कारीगरो द्वारा बनाये गये होगे । अन्य भवनों पर ईरानी शैली की प्रेरणा अधिक आंशिक तथा अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है । गुलवर्गा में मुहम्मद शाह ने दो मस्जिद बनवाया इसमें पावदान के दण्डोवालें गुम्बद तथा शकरे प्रवेश द्वार है जो ईरानी शैली की खास विशेषताए है । हिन्दू प्रभाव मकबरो के बाहरी भाग पर और ईरानी प्रभाव भीतरी चित्रकारी जो ईरानी जिल्दसाजी एवं कसीदाकारी के सुन्दर नमूने की याद दिलाती है – देखने में आता है।[1] चित्रकला के क्षेत्र में भी पारस्परिक सहसम्बन्ध एवं साम्य का साक्ष्य उपलब्ध रहा है । सुल्तान लोग अरबी और फारसी की उन श्रेष्ठ साहित्यिक एवं एतिहासिक कृतियो की चित्रित पाण्डुलिपियों से भी अनभिज्ञ नहीं रहे होंगे, जिन्हे उत्साही कुलीन वर्ग के लोग तथा पुस्तक प्रेमी तुर्किस्तान, इराक तथा फारस से निरन्तर आयात करते रहते थे ।[2]

संसार की हर संस्कृति ने वाह्य तत्व ग्रहण किये है, भारत ने भी । मुख्य प्रश्न इन तत्तवों के उद्गम का नहीं है, प्रश्न है उनके समवाय का जिससे संस्कृति को उसकी विशिष्टता मिलती है । भारतीय संस्कृति में अनेक अभारतीय मूल के तत्त्व है पर देशजीकारण की प्रक्रिया से अब वे भारतीय बन गये है ।[3] इन तत्त्वों में अनेकों तत्त्व ईरानी साहित्य एवं सस्कृति से विभिनन कालों व चरणों में भारतीय सम्बद्ध परिवेश में आये तथा देशजीकरण की प्रक्रिया में पूर्णतयः समाहित व समन्वित हो गये । करीब–करीब यही स्थिति ईरानी परिवेश में भारतीय प्रभावों की भी रही है । सच तो यह है कि किसी भी संस्कृति व साहित्य में अपने मौलिक तत्त्व थोड़े ही होते है अधिकांश तो बाहर से आते और अपनाये जाते है । इस प्रक्रिया में संस्कृति उन्हें अपने सांचे में ढाल लेती है और इस तरह उनकी उपयोगिता भी बड़ा लेती है । भारत ने शेष विश्व को क्या दिया है ? बगदाद के एक अरब कवि अल समादी के अनुसार तीन चीजे–अंक और गणना पद्धति (दशमलव बिन्दु के साथ) शतरंज का खेल और कथाएं ।[4] भारत और ईरान के बीच शदियों पूर्व ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे है । कई क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर विचारों में समानता रही है और इसी परिपेक्ष्य में दोनों देशों की सभ्यताओं के बीच ऐतिहासिक सम्पर्को का दीर्घकालिक क्रम चलता रहा है ।

1. नीलकंठ शास्त्री – दक्षिण भारत का इतिहास – पृ.पृ. 424–426, 1996 पटना ।
2 हरिशचन्द वर्मा–पार्श्वोद्धृत पृ. 522
3 श्यामाचरण दूबे–भारतीय संस्कृति और परिवर्तन की चुनौतियों पृ.–62 परीक्षा मंथन पार्श्वोद्धृत
4. वहीं पृ. 61

ईरान भारत को एशिया के मजबूत विकासशील देश के रूप में देखता है । आपसी सहयोग की तत्परता दिखाता है ।[1]

दोनों देश के बीच क्रान्तियोत्तर (इस्लामिक क्रान्ति) काल के सम्बन्धों में दोनों देशों के शिखर नेतृत्वों की शिखरवर्ताओं तथा विशेषज्ञ प्रतिनिधि मण्डलों के आपसी सम्मिलनो से सम्बन्धों का नवीनीकरण भी होता रहा है । जिसमें भारत के विदेशमंत्री पी0वी0 नरसिम्हराव की अगुवाई की 1981 की वार्ता तथा 1982 के ईरानी विदेशमंत्री, उपविदेश मंत्री, मजलिस के अध्यक्ष की भारत यात्रा के समय के सांस्कृतिक समझौता का प्रमुख स्थान है । दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों के साथ–साथ अन्य क्षेत्रों में अच्छे, सारवान सम्बन्ध स्थापना में भारत–ईरान संयुक्त आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । सितम्बर 1993 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पी0वी0 नरसिम्हराव की ईरान यात्रा तथा 1995 के अप्रैल में ईरान के तत्कालीन राष्ट्रपति रफसंजानी की भारत यात्रा से दोनों देशों के बीच अन्य क्षेत्रों के साथ–साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों की समीक्षाओं के अलावा नवीन समझौते पर भी हस्ताक्षर हुए । इस बीच गैर शासकीय स्तर पर भी तत्सम्बन्धी प्रयास भी होते रहे हैं ।[2] भारत एक संस्कृति प्रधान देश रहा है । यहॉ परम्पराओं की अपनी एक खास पहचान रही है तो ईरान भी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए विख्यात रहा है । ईरान में भी परम्पराये जीवन का प्रमुख आधार रही है तथा परम्पराओं के ही सहारे जीवन शैली का विस्तार भी हुआ । भारत में परम्पराए हमारे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सूझ–बूझ में न सिर्फ विकसित हुई है, वरन् इसमें खूबसूरती के साथ ढ़ल भी गयी है । यहीं खूब सूरती और परम्पराओं का विकास देश की पहचान रहा है । कमोवेश ईरानी समाज में भी परम्पराओं का प्रभाव एवं विस्तार इसी प्रकार का महत्व रखता है । उभय देशों के पारस्परिक सम्बन्धों में इसका आपसी आदान–प्रदान तथा एक दूसरे के प्रभाव में उनके अनुरूप सपरिवर्तन भी होता रहा है । संस्कृति एवं सभ्यतापरक सम्बन्धी तथा ऐतिहासिक सम्पर्को पर आधारित भारत ईरान मैत्री लगातार विकसित होती गयी । परस्पर देशों के दौरे की उच्चस्तरीय प्रक्रिया के एक भाग के रूप में, जिसने पारस्परिक विश्वास एवं भरोसे के निर्माण में योगदान दिया है, भारत और ईरान के बीच सांस्कृतिक, आर्थिक और वाणिज्यिक तालमेल सन्तोषप्रद चलता रहा ।[3]

1. नवभारत टाइम लखनऊ 21 अप्रैल 2001
2. India 1982, 83, 87, 94, 96 पार्श्वोद्धृत तथा नवभारत भारत और हिन्दुस्तान टाइम्स 29 फरवीर 2002 पार्श्वोद्धृत
3. भारत 2000 पृ. 748 प्रकाशन विभाग–सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली ।

अध्याय – 7

उपसंहार

संस्कृति परिष्करण एवं उसके परिस्थिति जन्म अनुकूलन से भारत को कभी परहेज नहीं रहा है, किन्तु केवल उसी स्थिति में ये हमारी संस्कृति एवं दैनंदिन जीवन व्यवस्था को अलंकृत करने की दिशा में हो । यह प्रश्न काबिले गौर है कि बाह्य जीवन मूल्यों और देशज जीवन मूल्यों के मध्य टकराव की स्थिति में उत्पन्न सांस्कृतिक संकट से निपटने हेतु हमारी है तैयारी किस स्तर की है । यह सम्भव नहीं है कि एक देश दूसरे देश के जीवन मूल्यों को बिना किसी नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं वैचारिक अड़चन के अपना सके । भारतीय संस्कृति का आत्मसात कर लेने का गुण और उसका तरीका इस अड़चन के सम्पूर्ण समाधान की अचूक औसन्धि के समान है । भारतीय संस्कृति रूपी गंगा में मिलने वाली किसी देश की संस्कृति रूपी नदी यहाँ गंगा ही बन जाती है । यही कारण है भारत और ईरान के दीर्घ कालिक सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप ईरानी संस्कृति के उन तत्वों को अब पहचानना व अलग करना लगभग असम्भव सा है, जो पारस्परिक आदान–प्रदान के क्रम में भारतीय संस्कृति में समायोजित हो गये थे । यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के आत्मसात कर जाने के गुण को कुछ लोग इसकी सबसे बड़ी विशेषता मानते है । कितनी जातियाँ, परम्परायें रीति रिवाज यहाँ धुले मिले उनकी अलग पहचान नहीं रह गयी । यह किसी में परायापन नहीं देखती सब में आत्मपिता का भाव प्रदर्शित करती है । इसी आत्मीय भाव एवं आत्मसात और समन्वय के ही कारण शेख मुईनुद्दीन चिस्ती ईरान से चलकर अजमेर में चिस्ती सम्प्रदाय की स्थापना कर भारतीय एवं ईरानी संस्कृतियों का अद्भुद समन्वय का कीर्तिमान स्थापित कर अजर अमर हो गये । 10वीं0 तथा 11वीं शाही में ईरान के इस्लाम के अनुयायियों द्वारा धार्मिक संकट खड़ा करने पर पारसी धर्म के अनुयायी बम्बई और गुजरात में आये, बसे, यहीं के होकर सर्वधर्म सम्भाव की भारत की बेमिसाल परम्परा में एक और कड़ी जोड़ गये । शेरशाह शूरी द्वारा अपदस्त किय जाने पर अपने ईरान प्रवास के दौरान हुमायूं ईरानी कला एवं संस्कृति की अनगित चीजों का भारतीयकरण कर गया हुमायूं की पत्नी जो ईरान की जन्मी ईरानी संस्कारों में पली थी, ईरानी–भारतीय सामाजिक सरोकारों के समन्वय

की तामीर में एक और पत्थर जोड़कर सम्राट अकबर जैसा पुत्र दे गयी । नूरजहॉ, तमाम ईरानी सरदारों, जाने कितनों ने क्या-क्या ईरान से लाया पर भारतीय संस्कृति के आत्मसात एवं समन्वय का ही चमत्कार है कि आज क्या ? भारतीय नहीं है इस प्रश्न का उत्तर मौनता ही है । इसका उत्तर देना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है ।

एतिहासिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक सम्पर्को के दीर्घकालिक, भारतीय ईरानी परम्परा में नवीन शैलियो, विधाओं का निर्माण व प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ, नवीन कीर्तिमानों की भी स्थापना हुई है । विश्व के आश्चर्यों में एक 'तालमहल' भारतीय एवं ईरानी कला शैलियों के सम्मिलन से उपजे चमत्कारों का चर्मोत्कर्ष है । संगीत और कला के क्षेत्र में भी दोनों के परस्पर सम्मिलन, सहयोग और समन्वय से दोनों विधाओं के नवीन फलकों का निर्माण व उनका विस्तार हुआ है । सहसम्पर्को से भारत ही नहीं ईरान की भी कला व संगीत का परिष्कार व परिमार्जन हुआ है । जिससे नवीन सम्भावनाओं के द्वारा खुले । उसके अनुरूप दोनों विधाओं का समय और कालक्रमानुसार विकास हुआ । चिस्ती सम्प्रदाय की सांस्कृतिक गतिविधियों से गायकी के क्षेत्र-कौब्वाली में ईरानी संगीत की अनेकों वारीकियों एवं परम्पराओं प्रवेश ही भारत में नहीं हुआ भारतीय संस्कृति के आत्मसात एवं समन्वय के गुणों के कारण उनका भारतीकरण भी हुआ । शेख मुईनुद्दीन चिस्ती के द्वारा भारत-ईरान सम्बन्धों के सांस्कृति एवं सामाजिक क्षेत्रों में पारस्परिक सम्मिलन में इनके द्वारा दिये गये गुरू गम्भीर योगदान के ही कारण मोहम्मद गौरी ने इनको 'सुल्तान-उल-हिन्द' की उपाधि से विभूत किया ।

सामाजिक रीति-रिवाजों का भी आपस में आदान-प्रदान हुआ है । दोनों देशों के जीवन मूल्यों को एक दूसरे के यहां अपनी-अपनी सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुरूप अपनाया गया है । बल्वन ने फारस के राजनीतिक एवं सामाजिक सरोकारों एवं विचारों को सर्वप्रथम और सर्वाधिक मान्यता एवं प्राथमिकता दिया है । जिसका पालन बाद के कालों में भी यथावत किया जाता रहा । इस्लामिक राजत्व एवं परम्पराओं के अनुरूप इसने अपने शासन का संचालन किया । उभय राष्ट्रों के बीच के ऐतिहासिक सम्पर्को के सम्यक अनुशीलन से यह तथ्य स्वतः उद्घाटित होता है कि सम्बन्धों एवं परस्परिक प्रभावों का स्वर्णकाल मुगल काल को ही कहा जाता है । सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में पारस्परिक सम्बन्ध सर्वाधिक इसी काल में रहे । भारत वर्ष के राजधरानों के सदस्य प्रथमतः और प्राथमिकता के साथ

प्रभावित तथा उसका अनुशीलन व अनुपालन करते रहे है । कला के क्षेत्र में विशेषकर स्थापत्य कला, में दोनों देशों के कलाकारों के एक दूसरे के यहाँ आने–जाने तथा राजकीय संरक्षण में रहने के कारण पारस्परिक समन्वय हुआ । इसी प्रकार भारतीय सम्राटों के राज दरबारों में फारसी साहित्य के विद्वानों को राजकीय संरक्षण देने, फारसी भाषा को राजभाषा बनाये जाने से भारत ईरान साहित्यिक संवहन की शाश्वत धारा प्रवाहित होती रहीं थीं । ईरानी साहित्य का ईरानी फारसी के विद्वानों के भारत प्रवास से भारतियों को भी ज्ञान हुआ । साहित्यिक शैलियों एवं विधागत बारीकियों को भारतीय साहित्य में भी प्रचलन हुआ । ईरानी काव्यों का भारत में एवं भारतीय अन्य भाषागत काव्यों के ईरान में अनुवादित रूप प्रचलन में आया जिसके कारण दोनों देशों का जनमानस एक दूसरे की लोककथाओं से परिचित हुआ ।

राजनीतिक स्तर के सम्बन्धों में तत्सम्बन्धी प्रथाओं व नियमों को अपनाया ही नहीं गया । ईरान से एक सहयात्री के यहाँ आकर साम्राज्य स्थापित करने तक के साक्ष्य है । बहमनी साम्राज्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है । ईरानी सहयात्री के रूप में आये लोगों के यहां सरदार व अन्य पदों पर नियुक्तियों के तो अनगिनत प्रमाण भरे पड़े है । राजनीतिक सम्बन्धों एवं सम्पर्कों का ही परिणाम रहा जिससे अन्य क्षेत्रों के सम्बन्धों की पृष्ठभूमि तैयार हुई । राजनीतिक सम्बन्धों के सहारे ही भारत व ईरान के बीच सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक सम्बन्धों की स्थापना हुई, या यूं कहे उक्त क्षेत्रों में प्रमाणतम् सम्बन्ध ही नहीं रहे, बल्कि इन्हीं के द्वारा स्थापित इस्पाती तामीर पर समयगत आवश्यकताओं के अनुरूप भारत और ईरान के दीर्घकालिक सम्बन्धों की अवाध परम्परा आज भी चली आ रही है ।

भारतीय विदेशनीति और कुछ अर्थो में ईरानी विदेश नीति भी अन्य देशों की विदेशनीतियों की भांति विकसित पल्लवित, पुष्पित और परिपक्व हुई । भारत के सन्दर्भ में देखा जाय तो विदेशनीति देश के राष्ट्रीय आन्दोलन, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक मूल्यों, राजनीतिक परिस्थितियों स्थानीय विशेषताओं, नेतृत्व व्यक्तित्व, भौगोलिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं से प्रभावित रही है । इन तत्वों का परिस्थितिजन्य, सामयिक आवश्यकताओं तथा राष्ट्रीय जरूरतों के अनुप्रकाश में ईरानी विदेशनीति पर भी व्यापक स्तर पर प्रभाव पड़ा है । इन तत्वों का संचयी प्रभाव भारतीय विदेश नीति के निर्माण, शिक्षा प्रतिमानों एवं स्वरूप पर पड़ा है । भारत जैसे बहुधार्मिक विविध जातियों, विविध सांस्कृतियों एवं धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक देश

में नीति का निर्माण एवं जटिल मामला था । स्वतन्त्रता के काफी पूर्व से ही कांग्रेस के नीतिगत फैसलों में अन्तर्राष्ट्रीय सोच का विकास हुआ । मई 1928 में ही नेहरू ने लिखा था कि –हमें भारत का पृथक्करण समाप्त करना चाहिए एवं विश्व घटनाओं को समझने का प्रयास करना चाहिए । हमारे राष्ट्रवाद के अतिरिक्त हमें अन्तर्राष्ट्रवाद को भी विकसित करना चाहिए । जिससे अन्य देशों की अच्छाइयों से लाभ प्राप्त कर सके एवं विश्व की प्रगतिवादी शक्तियों के साथ सहयोग प्राप्त कर सके । स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति निर्मा"ा में पं0 जवाहर लाल नेहरू का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इन्होंने विश्व मामलों में भारतीय पक्ष को मजबूती से रखा एवं उपनिवेशवाद, फांसीवाद तथा नाजीवाद के खिलाफ सतत् संघर्ष करने का आहवान किया । सितम्बर 1927 में छपे अपने विदेशनीति लेख में नेहरू ने भारतीय विदेश नीति के विस्तृत दृष्टिकोण एवं विविध पक्षों को उजागर किया । नेहरू की सोच और चिन्तन ने भारतीय विदेश नीति को बहुत प्रभावित किया । इनके इसी योगदान के कारण इन्हें माइकल ब्रेशर ने विदेश नीति का मुख्य शिल्पकार, अभियन्ता एवं दार्शनिक कहा है । ईरान की विदेश नीति के निर्माण में वहां के शिखर नेतृत्वों का रूख प्रभावी कारक रहा है । क्रान्तिपूर्ण ईरान की विदेशनीति का झुकाव अमेरिका की तरफ था दोनों अच्छे दोस्ताना सम्बन्ध रहे परन्तु क्रान्तियोत्तर ईरान की नजरों में ईरान का पुराना मित्र व संरक्षक अमेरिका सबसे बड़ा शैतान तथा अमेरिका नजरों में ईरान दुष्ट राष्ट्र हो गया । अमेरिका ने ईरान को अपना सबसे बड़ा दुश्मन, दुष्टता की धुरी, मानवता के लिए खतरनाक तक सोचना व कहना शुरू कर दिया ।

शीतयुद्ध के दौरान भारत की विदेशनीति निर्धारकों ने दोनों महाशक्तियों के दावों को खारिज करते हुए–गुट निरपेक्षता के रूप में मानवता के कल्याण के लिए विश्व को एक नवीन दर्शन दिया । भारत के जवाहरलाल नेहरू और मिश्र के राष्ट्रपति नासिर तथा युगोस्लाबिया के मार्शल टीटो ने तीसरी शक्ति की इस अवधारणा को काफी मजबूत किया । मनोवैज्ञानिक विवशता, सैनिक गुटों से पृथकता की मानसिकता, अपने पृथक एवं विशिष्ट वैचारिक स्वरूप को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिलाषा आदि अनेक कारणों से 1979 में गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के छठे शिखर सम्मेलन में ईरान भी गुट निरपेक्ष राष्ट्रों में शामिल हो गया । वैसे तो गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सिद्धान्तों में एक यह भी है कि सदस्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों की सम्मेलनों में चर्चा न की जाय, फिर भी ईरान के इस आन्दोलन की सदस्यता ग्रहण करने से इस आन्दोलन

के संस्थापक राष्ट्रभारत एवं ईरान के आपसी सम्बन्धों में और प्रगाढ़ता आयी । उभय–राष्ट्रों की पारस्परिक समझ का, अन्तर्राष्ट्रीय मसलो पर वैचारिक एक रूपता की सम्भावनाओं के विकास में काफी आसानी आयी ।

भारतीय विदेश नीति में श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रथम कार्यकाल (1966–77) तथा दूसरा कार्यकाल जनवरी 1980 से अक्टूबर 1984 इनके कुशल कूटनीति कौशल के लिए याद किया जाता है । इस काल में भारत ईरान सम्बन्धों में सकारात्मक, रचनात्मक परिवर्तन आया । 1974 में ईरान के साथ धनिष्ठ आर्थिक सहयोग हेतु एक कमीशन की स्थापना की गयी । श्रीमती इन्दिरा गांधी ने विदेश विभाग में नीति निर्माण हेतु ''नीति नियोजन समिति'' को विशिष्ट महत्व दिया । इसमें विशेषज्ञों का बाहुल्य था इसके चेयरमैन डी0पी0धर, पार्थसारथी आदि विख्यात कूटनीतिज्ञ रहे है । विदेश नीति के निर्माण में विवेक की स्वतन्त्रता को प्राथमिकता देते हुए इन्होंने गतिशील सकारात्मक और चातुर्यपूर्ण विदेशनीति का अनुशरण किया ।

इन्दिरा गांधी प्रशासन द्वितीय कार्यकाल (1980–84) क्षेत्रीय राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय चुनौतियों से ग्रस्त था । दुबारा सत्ता में आने के बाद श्रीमती गांधी भारतीय विदेश नीति को नई दिशा प्रदान करने, भारत को एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व प्रदान करने तथा विश्व स्तर की गम्भीर समस्याएं जैसे निःशस्त्रीकरण, नाभिकयी एवं परम्परागत शस्त्रीकरण की होड़ रोकने, विश्व अर्थव्यवस्था के असंतुलन को दूर करने के लिए अपने प्रयासों को सक्रिय किया । श्रीमती गांधी ने राष्ट्रीय हितों में अभिवर्धन बड़े जोरें से किया । जहाँ श्रीमती गांधी दृढ़ थी वहीं उनमें लचीलापन भी था । श्रीमती इन्दिरा गांधी के द्वितीय कार्यकाल में ईरान के साथ कोई विशेष उल्लेखनीय सम्पर्क, सम्बन्ध विकास नहीं हुआ, जिसके पीछे ईरानी राजनीति में परिवर्तन ही प्रमुखरूप से उत्तरदायी रहा । शाह के सत्ताच्युत होने और देश से पलायन कर जाने के बाद ईरान का सांविधानिक स्वरूप ही नहीं परिवर्तित हुआ, राजतन्त्रात्मक ईरान से इस्लामिक गणराज्य ईरान तक का क्रान्तिकारी सफर भी ईरान को तय करना पड़ा । जिसमें मुख्य जोर इस्लामिक राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध स्थापना पर ही दिया गया ।

31 अक्टूबर 1984 को श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी को भारत के प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलायी गयी । राजीवगांधी के बारे में यह भ्रान्ति बनी हुई थी कि राजनीतिक अनुभव के

अभाव में वे देश के आन्तरिक एवं बाह्य मामलों को संभाल नहीं पायेगें । राजीव गांधी की विदेश नीति में यद्यपि कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ । उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर व्याप्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अनुकूल विदेश नीति को नई दिशा व गतिशीलता प्रदान की । राजीव गांधी ने श्रीमती इन्दिरा गांधी की विदेश नीति का अनुशरण किया, परन्तु राजीव गांधी की दो बड़ी विशेषताएं, विशेषरूप से बाह्य जगत के साथ व्यवहार के सम्बन्ध में थीं । प्रथम भारत को औद्योगिक, विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में द्रुतगति से अन्य औद्योगिक राष्ट्रों की अग्रिम पंक्ति में लाने के लिए उन्होंने पश्चिमी देशों के साथ नये सिरे से भारत के रिस्ते स्थापित करने की पहल की । दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय मंचों जैसे असंलग्न आन्दोलन (NAM) राष्ट्र मण्डल (Common Wealth of Nations) व सार्क (SAARC) के माध्यम से उन्होंने अनेक समस्याओं पर भारत के पक्ष को बड़े ही जोरदार तरीके से अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुत किया । जिससे भारत की सकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीय छवि बनने में मदद् मिली । निष्कर्श के तौर पर राजीव गांधी के कार्यकाल में भारत की विदेश नीति में नवीनता और परम्परा का अच्छा ताल मेल था । राजीव गांधी में स्पष्ट वादिता का पुट अधिक रहा । अफगानिस्तान के बारे में उन्होंने कहा कि भारत हस्तक्षेप और अड़गेबाजी दोनों के खिलाफ है । तमाम विश्व में अपनी सशक्त उपस्थिति को दर्ज कराने वाला भारत इस काल में पश्चिम एशिया में भी विभिन्न राष्ट्रों के साथ अपने बहुपक्षीय सम्बन्धों को नये सिरे से परिभाषित एवं परिमार्जित करता रहा । राजीव गांधी प्रशासन की समाप्ति तक ईरान में आध्यात्मिक नेता के पद पर मरहूम आयतुल्लाह खुमैनी ही आसीन रहे । इनके जमाने में ईरान तमाम विश्व में लगभग कटा रहा । उसका जो भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध रहा । केवल प्राथमिकता क्रम में इस्लामिक राष्ट्रों से ही रहा । खुमैनी के बाद उनके तथाकथित उदारवादी शिष्य हाशमी रफसंजानी ने ईरान के राष्ट्रपति का पद संभाला । ईरान की राजनीतिक सांविधानिक व्यवस्था में सामायिक जरूरतों के अनुरूप परिवर्तन हुआ और भारत तथा ईरान के सम्बन्धों का दायरा पुनः विस्तृत होना शुरू हो गया ।

राजीव गांधी सरकार के पतन के बाद दिसम्बर 1989 में वी0पी0 सिंह के नेतृत्व में और नवम्बर 1990 में चन्द्रशेखर सिंह के नेतृत्व में अल्पमतीय सरकारे भारत में सत्तारूढ़ हुई । बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुकूल विदेश नीति में थोड़ा बहुत परिवर्तन का आभाव देखा गया । इसी परिपेक्ष्य में

प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की विदेश नीति का अनुशरण मात्र ही कहा जा सकता है । कुछ अर्थों में राजनीतिक टीकाकार मानते है कि राजीव गांधी की पड़ोसी राष्ट्रों की कठोरता की नीति के स्थान पर वी0पी0 सिंह सरकार की लचीली नीति थी । इसी काल में भारत और ईरान के सम्बन्धों की दीर्घकालिक पम्परा जो क्रान्तियोत्तर ईरान से अवरूद्ध सी हो गयी थी, का पुनः नये सिरे से विस्तार प्रारम्भ हुआ भारत ईरान संयुक्त आयोग के माध्यम से तेल व अन्य आर्थिक गतिविधियों में स्वागत स्तर पर विकासात्मक घटनाक्रम हुआ ।

जून 1991 में सत्ता परिवर्तन के क्रम में भारत के प्रधानमंत्री के पद पर पी0वी0 नरसिम्हाराव आरूढ़ हुए । इन्होंने दि0 1991 में घोषणा की कि उनकी सरकार विदेशनीति को राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने के लिए एक 'गतिशील साधन'' के रूप में प्रयुक्त करेगी । राव ने जोर देकर कहा कि यदि हम विदेश नीति और बाह्य सम्बन्धों तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में लकीर के फकीर बने रहे तो हम अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा नहीं कर पांयेगे । विदेश नीति की प्राथमिकताओं की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि इसके प्रमुख लक्ष्य है –

(1) भारत की एकता और प्रादेशिक अखण्डता को किसी प्रकार के खतरे से बचाना है ।

(2) दक्षिण एशिया क्षेत्र में भू राजनीतिक सुरक्षा के द्वारा स्थायित्वपन और शान्ति के लिए एक स्थाई पर्यावरण सुनिश्चित करना है ।

(3) इस क्षेत्र के लोगों के लिए, आर्थिक कल्याण के लिए एक पर्याप्त वातावरण तैयार करना है ।

(4) अपने पड़ोसी देशों के साथ मतभेदों को दूर करना, सीमाओं पर तनाव कम करने के लिए प्रभावशाली कदम उठाना है।

संक्षेप में, प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने अपने पांच वर्ष के कार्यकाल में अनेक शिखर सम्मेलनों, हरारे में राष्ट्रमण्डल शिखर सम्मेलन, काराकास, डाकार तथा ब्यूनस आयर्स में जी–15 देशों के शिखर सम्मेलन, कोलम्बों और ढाका में सार्क शिखर सम्मेलन, न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की शिखर बैठक, रियो में पृथ्वी शिखर सम्मेलन और जकार्ता में 10वें एवं कार्टगेना में 11वें निर्गुट सम्मेलन, में भारत की नयी

छवि और शान्तिपूर्ण नीतियों को प्रदर्शित किया । पश्चिम एशिय के प्राचनी एवं महान देश ईरान के साथ सम्बन्धों पर भी श्री राव ने विशेष ध्यान दिया । सितम्बर 1993 में श्री राव ईरान की यात्रा पर गये दोनों देशों की प्राचीन सम्बन्धों के नवीनीकरण तथा वर्तमान सम्बन्धों के स्वरूप की समीक्षा के सन्दर्भ में इस यात्रा का बड़ा महत्व है । अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर दोनों महान देशों की सामान्य समझ हेतु यथार्थ धरातल के निर्माण तथा उभय पक्षीय बहुआयामी सम्बन्धों की स्थापना हेतु दोनों देशों के लिए इस यात्रा का समान रूप सें महत्व है । भारत ईरान संयुक्त आयोग के तत्वाधान में हुए पिछले समझौतो की प्रगति के अवलोकनोपरान्त अनेकों समझौतो पर हस्ताक्षर किया गया ।

कश्मीर की समस्या भारत और पाकिस्तान के बीच सबसे उलझी हुई समस्या है । स्वतन्त्रता के बाद जहाँ भारत और पाकिस्तान दो नये राज्य बने । वहाँ देशी रियासते एक प्रकार से स्वतन्त्र हो गयी । ब्रिटिश सरकार ने घोषणा कर दी कि देशी रियासते अपनी इच्छानुसार भारत या पाकिस्तान में विलय कर सकती है । अधिकांश रियासतें भारत या पाकिस्तान में मिल गयी । और उनकी कोई समस्या नहीं उत्पन्न हुई । भारत के लिए हैदराबाद और जूनागढ़ ने अवश्य समस्या उत्पन्न की परन्तु वह शीघ्र ही हल कर ली गयी । कश्मीर की स्थिति कुछ विशेष प्रकार की थीं । भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर स्थित यह राज्य भारत और पाकिस्तान दोनों को जोड़ता है । अगस्त 1947 में कश्मीर के शासक ने अपने विलय के विषय में कोई तात्कालिक निर्णय नहीं लिया । पाकिस्तान इसे अपने साथ मिलाना चाहता था । 22 अक्टूबर 1947 को उत्तर पश्चिम सीमा प्रान्त के कबायलियों ने एवं अनेक पाकिस्तानियों ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया । पाकिस्तान ने भी अपनी सीमा पर सेना का जमाव कर लिया । 4 दिनों के भीतर हमलावार आक्रमणकारी श्रीनगर से 25मील दूर वारामूला तक जा पहुँचे । 26 अक्टूबर को कश्मीर के शासक ने आक्रमणकारियों से अपने राज्य को बचाने के लिए भारत सरकार से सैनिक सहायता की मांग की और साथ ही कश्मीर को भारत में सम्मिलित करने की प्रार्थना भी की । भारत सरकार ने इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया । 27 अक्टूबर को भारतीय सेनाऐ कश्मीर भेजी गयी तथा युद्ध समाप्ति पर जनमत संग्रह की शर्त के साथ कश्मीर को भारत का अंश मान लिया गया ।

भारत द्वारा कश्मीर की सुरक्षा के निर्णय के कारण और उधर पाकिस्तान द्वारा आक्रमणकारियों को

सहायता देने की नीति के कारण कश्मीर दोनों राष्ट्रों के बीच युद्ध का क्षेत्र बन गया । भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर तनाव का मुख्य कारण है । कश्मीर समस्या के मद्देनजर भारत ईरान सम्बन्ध भी प्रभावित होता है । कश्मीर पर ईरानी दृष्टिकोण को नीतिगत झुकाम के कारण दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम–क्रान्तिपूर्ण दृष्टिकोण–जिसमें तत्कालिक ईरानी प्रशासन अमेरिका विदेशमंत्रालय के देख–रेख व नियंत्रण और तथाकथित दोस्ताना माहौल में संचालित होता था । अमेरिका की कश्मीर नीति ही ईरानी प्रशासन के लिए आदर्श थी और उसी के अनुरूप कश्मीर पर जब भी जहाँ भी जैसा भी तत्कालिक ईरानी प्रशासन आवश्यक समझता था करता था । जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण 1965 व 1971 की भारत–पाकिस्तान युद्ध के समय की ईरानी प्रशासन की नीति है । द्वितीय क्रान्तियोत्तर दृष्टिकोण–जिसमें ईरानी प्रशासन और अमेरिका के बीच सम्बन्ध तनावपूर्ण रहा है । इस काल में ईरान की कश्मीर पर नीति पर भारत–ईरान दीर्घकालिक सम्बन्धो की परम्परा हाबी रही है । भारत और ईरान के बीच कई क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर विचारों में समानता रही है और इसी परिपेक्ष्य में दोनों देशों की सभ्यताओं के बीच ऐतिहासिक संवादों की दीर्घकालिक परम्परा रही है । कश्मीर पर ईरानी दृष्टिकोण इस काल में भारतीय नीति के अनुरूप–समस्या का समाधान बातचीत के जरिए किये जाने का रहा है और कश्मीर समस्या पर भारत को सभी सम्भव सहायता इसके समाधानार्थ देने को ईरानी प्रशासन तैयार व तत्पर है ।

ईरान में दो दशक पूर्व हुई इस्लामिक क्रान्ति से जो कट्टरता बड़े ही जोर–शोर से आयी थी । उसका दम टूटना क्रान्ति के नायक आयतुल्लाह खुमैनी के निधन के बाद प्रारम्भ हो गया । कट्टर इस्लामिक शासन एवं उसके के साथ हुए युद्ध से देश की आर्थिक दशा बुरी तरह प्रभावित हुई । आम जीवन धार्मिक उन्माद के कारण इस्लामिक परम्पराओं से जितना ज्यादा खुश था आर्थिक तंगहाली और स्वतन्त्रता के अभाव के कारण उससे ज्यादा नाखुश था । पश्चिमी देशों से सम्बन्ध खराब हो जाने अमेरिका से दोस्ती, दुश्मनी में तब्दील हो जाने अमेरिकी नेतृत्व में तमाम पश्चिमी देशों के प्रतिबन्धों के चलते विश्व के प्राचीन एवं महान देश ईरान का अर्थतन्त्र लगभग जाम सा हो गया । ऐसी हालात में हतास, निराश, उदास ईरानी जनता बेबशीभरी नजरों से पश्चिम की पहली नजर में आकर्षक उदारवादी परम्पराओं, पूँजीवादी अर्थव्यवस्थों को

ही अपने इस लाइलाज मर्ज की अचूक दवा समझने लगी । सामान्य जनमानस ही नहीं खुमैनी के उत्तराधिकारी भी इसी मानसिकता के विमार निकले । 1989 में आयतुल्लाह खुमैनी के स्वर्गवस के बाद उनके उदार शिष्य हाशमी रफसंजानी सत्ता की बागडोर संभाली, कट्टरता कम और सुधारवादी व उदारवादी प्रक्रियायें तेंज होतीं चली गयी । शासकीय स्तर पर इस्लामिक कठोर नियमों से छूट देने का ऐतिहासिक सिलसिला प्रारम्भ हुआ । पोशक, श्रृगांर, संगीत, सामाजिक क्रियाकालपों पर से शासकीय नजर का शिंकजा ढीला होना प्रारम्भ हो गया । सामान्य जनमानस राहत की सांस लेना प्रारम्भ किए । तमाम विश्व से ईरान का विलगाववादी स्वरूप परिवर्तित होना प्रारम्भ हुआ फिर से विश्व के प्रमुख देशों के साथ प्राचीन एवं महान ईरान के सम्बन्ध स्थापित होते गये । भारत के साथ भी सदियों पूर्व के सम्बन्धों का नवीनीकरण प्रारम्भ हुआ । ईरान में रूढ़िवादियों को गहरी शिकस्त मिली । जिस तरह वहॉ सुधारवाद का परमच लहराया उससे भारत सहित पूरी दुनिया को सुखद आश्चर्य हुआ । अब तक जो ईरान एक कट्टर मुस्लिम देश के रूप में जाना जाता रहा उसके द्वारा रूढ़िवाद और कट्टवाद से पल्लू झांड लेने के बाद यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि आधुनिक समाज में इन विचारों के लिए कोई जगह नहीं है । साथ ही ईरान से अपनी भूमिका नये अन्दाज में अदा करने की भारत सहित अखिल विश्व आश्वान्वित भी है ।

भारत और ईरान दोंनों देशों की अर्थव्यवस्था मिश्रित और विकासशील अर्थव्यवस्था है । दोनों में प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन एवं जनशक्ति विद्यमान है । दोनों देशों में अपनी–अपनी अर्थव्यवस्था के पुर्नसंचालन एवं निर्माण के लिए अर्थव्यवस्था में ढॉचागत परिवर्तन और नियोजन का सहारा लिया । भारत और ईरान दोनों में यहॉ की कृषि अर्थव्यवस्था में प्रमुख स्थान रखती है । भारतीय अर्थतन्त्र अगर ब्रिटिश शोषण वादी नीति से जरजर हुआ तो ईरानी अर्थव्यवस्था शाहकालिक अमेरिका परस्त नीति व कट्टर इस्लामिक नीति से ध्वस्त हो गयी । भारत और ईरान की अर्थव्यवस्था में जानफूकने का काम क्रमशाः पं0 जवाहर लाल एवं रफसंजानी द्वारा प्रारम्भ की गयी पचंवर्षीय योजनाओं ने किया है । भारत में आर्थिक नियोजन का प्रादुर्भाव स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू के सफल व सार्थक प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप हुआ तो ईरान में मरहूम आयतुल्लाह खुमैनी के उदारवादी शिष्य हाशमी रफंजानी के ऐतिहासिक सद्प्रयत्नों के द्वारा हुआ ।

भारत ने जुलाई 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की । अब तक नव पंचवर्षीय योजनाएं तथा तीन वर्ष का योजनावकाश (1966–99) और 1990–91, 91–92, में दो वार्षिक योजनाएं पूरी हो चुकी है । दसवीं योजना प्रगति पर है । इस समयबद्ध योजनाओं के माध्यम से अर्थव्यवस्था में कायाकल्प स्तर को परिवर्तन व विकास हुआ है । यह निष्कर्ष जिस रूप में भारत की अर्थव्यवस्था के लिए सत्य है उसी अर्थ विस्तार में ईरान के लिए भी । वैसे इन दोनों देशों में कई बातों को लेकर समानता ही नहीं है दोनों देशों के प्राचीनकाल से बहुआयामी यथाराजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध भी रहे है । सिन्धुघाटी व हड़प्पा सभ्यता में ईरान से व्यापार के साक्ष्य उपलब्ध रहे है । इस काल में ईरान से सीसा आयात किया जाता था । इसके बाद तो भारत ईरान व्यापारिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्धों का उतार चढ़ाव भरा सिलसिला निरन्तर चला ही आ रहा है । वर्तमान परिपेक्ष्य में दोनों देशों के व्यापारिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्धों की सम्यक समीक्षा के बाद जो सत्य उद्घाटित होता है वह यह है– ईरान के पास प्राकृतिक गैस एवं तेल का विपुल भण्डार है तो भारत के पास उसके लिए विशाल बाजार है । ईरान के पास विज्ञान, तकनीकी और औद्योगिक स्तर पर विशेषज्ञता की कमी है तो इन सब से युक्त भारत के पास तत्सम्बन्धी क्षेत्रों में ईरान के साथ द्विपक्षीय सम्बन्धों की उत्कट अभिलाषा भी है । ईरान भारत को एशिया के मजबूत विकासशील देश के रूप में देखता है और आपसी व्यापारिक एवं वाणिज्यिक सम्बन्धों को दीर्घकाल से तत्पर दिखता आ रहा है तो भारत भी ईरान की प्राचीनता व महानता को सम्मान की निगाह से देखता है तथा तत्सम्बन्धी क्षेत्रों में मधुर सम्बन्धों का इच्छुक रहा है । उभय राष्ट्रों की इसी सन्दर्भो से युक्त भावनाओ की परिणाम स्वरूप व उनके सफलीकरण हेतु ''भारत ईरान संयुक्त आयोग'' तथा ''भारत ईरान संयुक्त व्यापार परिषद'' जैसी संस्थाएं अस्तित्व में आयी तथा तत्सम्बन्धी लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आज भी सफलतापूर्वक क्रियाशील है ।

शाहकालिक नीति जन्य दुष्परिणामों के फलस्वरूप 1 फरवरी 1979 को 14 वर्ष के निर्वासित जीवन के बाद आध्यात्मिक नेता आयतुउल्लाह खुमैनी के स्वदेश वापस लौटने तथा पूरी तरह सत्ता अपने हाथ में लेने के बाद पहली अप्रैल 1979 को ईरान एक इस्लामिक गणतन्त्र घोषित कर दिया गया । जिसका ईरान तो क्या, भारत सहित विश्व के तमाम हलकों पर व्यापक प्रभाव पड़ा । 12 मार्च 1979 को ईरान सेन्टो से

अलग हो गया । अमेरिका और ईरान का सम्बन्ध अत्यन्त तनावपूर्ण हो गया । 27 जुलाई 1980 को शाह की मृत्यु हो गयी । अमेरिका ने ईरान के राजनयिकों देश से निकाल दिया तथा ईरान के वित्तीय हितो को जब्त कर लिया । इसके पूर्व 30 मार्च 1979 को ईरान में एक जनमत संग्रह हुआ और लोगों ने ईरान को एक इस्लामिक गणतन्त्र बनाने के पक्ष में अपनी राय दी । शाहकालिक प्रशासन के दौरान ईरान की विगड़ती आर्थिक दशा के कारण जनमानस ने एक विशेष आकांक्षा की परिकल्पना में इस्लामिक गणतन्त्र के पक्ष में अपनी राय जाहिर की थी, पर दुर्भाग्य से आकांक्षा का फलीकरण न हो सका ।

विशेषतः ईरान के परिपेक्ष्य में इस्लामिक क्रान्ति के परिणामों का मिला जुला प्रभाव रहा । राजतन्त्रात्मक ईरान से अमेरिका की परम्परागत दोस्ती इस्लामिक गणतन्त्र ईरान में स्वाभाविक दुश्मनी में तब्दील हो गयी । ईरान के वासियों ने जिन लोगों के झण्डे के नीचे शाह की तानाशाही से मुक्ति की लड़ाई लड़ी थी उन लोगों और उनके समर्थकों की प्राथमिकताएं वे नही निकली जिनकी उम्मीद की गयी थी । शाह के आत्मनिर्वासन से लोगों को आजादी मिली । हर वर्ग के लोगों की अलग-अलग अपेक्षाएं थीं, जिनका सम्मिलित और सर्वस्वीकृत स्वरूप ही ईरान के नवभाग्य विधाताओं का आदर्श होना चाहिए था लेकिन ये लोग अपने को बहुत ही सीमित दायरे में समेट लिया । इनकी केवल दो ही प्राथमिकताएं थी- पहली, उन व्यक्तियों का सफाया, जो शाह के समर्थक थे या पिछले शासनतन्त्र के हिस्से थे । इसके लिए जिन तरीकों को अपनाया गया उसमें नयी किस्म की असहिष्णुता और जोरजबरदस्ती की स्थापना हुई । दूसरा लक्ष्य-इलामिक गणतन्त्र के नाम पर आयतुउल्लाह खुमैनी के समर्थकों का शासन स्थापित करना था । इससे शाह की निरंकुशता का निदान करते करते दूसरी निरंकुशता की स्थापना कर दी गयी जिसमें- समस्त प्रकार की स्वतन्त्राएं छीन ली गयी । यह सब इस्लामिक नियमों की संस्थापना के नाम पर किया गया । समाचार पत्रों का प्रकाशन बन्द करा दिया गया । जो प्रकाशन कार्यरत भी थे उनका दायरा नाना प्रकार से प्रतिबन्धित कर उनका दायरा अत्यन्त सीमित कर दिया गया । विश्व के अन्य राष्ट्रों से ईरान का सम्पर्क दायरा अत्यन्त सीमित कर दिया गया , जिससे ईरानी अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई । भारत के साथ सम्बन्ध अवरोध के साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर ईरान की उपस्थिति निरन्तर कम होती गयी । ईरान का अखिल विश्व से विलगाव का काल प्रारम्भ हो गया । जो क्रान्ति के नायक

आयतुउल्लाह खुमैनी के शिष्य हाशमी रफ़संज़ानी के शासन काल में समाप्त हुआ । इन तमाम बातों के होते हुए की प्रमुख धार्मिक नेता आयतुउल्लाह खुमैनी की ईरानी राजनीति पर धर्म की सर्वोपरिता की संस्थापना वीसवीं शदी में उनकी अनोखी देन है ।

भारत और ईरान दोनों देशों को अपने–अपने परमाणु कार्यक्रमों के विकास के प्रारम्भिक चरण में विश्व के परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों का समान रूप से विरोध झेलना पड़ा । इसके बाद भी भारत परमाणु शस्त्र सम्पन्न राष्ट्रवन ही गया । ईरानी नीति और इस नीति के प्रति ईरान की तत्परता को देखते हुए ईरानी परमाणु विकल्प की छटपटाहट के मद्देनजर निकट भविष्य में ईरान के परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है ।

पश्चिम एशिया में अवस्थित इस्लामिक गणराज्य ईरान की उत्तरी सीमा पर रूस, पश्चिम में टर्कीऔ इराक, दक्षिण में पार्सियन की खाड़ी और ओमान की खाड़ी और पूरब में पाकिस्तान और अफगानिस्तान स्थित है । अपनी भौगोलिक स्थिति की महत्वपूर्णता के कारण ईरान शुरू से ही अमेरिका का रूचि क्षेत्र रहा है । दोस्ताना काल में (शाहकालिक) अमेरिका ने सैनिक साजो सामान से ईरान को लैस किया तो क्रान्तियोत्तर काल में जब अमेरिका से सम्बन्ध अत्यन्त खराब है, में ईरानी परमाणु कार्यक्रम पर अमेरिका ने ही सबसे ज्यादा तूफ़ान खड़ा किया । गौरतलब है कि परमाणु शस्त्र सम्पन्नता के क्षेत्र को परमाणु राष्ट्र अपना विशेषाधिकार क्षेत्र समझते है । अपनी स्वयं की तत्सम्बन्धी कारगुजारियों को नजरअन्दाज कर भारत, ईरान सरीखे अनेकों राष्ट्रों पर नाना प्रकार से प्रतिबन्ध लगाते रहे है । चाहे सम्बद्ध राष्ट्र का परमाणु कार्यक्रम पूर्णतयः विकासात्मक कार्यों से सम्बद्ध ही क्यों न हो जबकि ये राष्ट्र स्वयं विनाशात्मक विनिर्माण में संलग्न है । भारत और ईरान का लगातार यह मत रहा है कि परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की यह नीति राष्ट्रों के बीच भेदभाव करती है । परमाणु राष्ट्रों का ही हित साधन करती है । अब जबकि भारत परमाणु राष्ट्र वन चुका है । ईरानी परमाणु कार्यक्रम और महत्वाकांक्षा को दृष्टिगत रखते हुए ईरान के भी इस श्रेणी में आने के लिए मात्र समय का इन्तजार ही है ।

भारत और ईरान के बीच प्राचीन काल से ही साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे है । इस सुदीर्घकाल में राजनीतिक अभियानों के सहारे एवं सहयोग से साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संवाद की सुदृढ़

परम्परा रही है । जिससे रीति व नीति के स्तर पर तथा भाषा परिवारों में वैज्ञानिक स्तर पर पारस्परिक सम्मिलन दोनों देशों की भाषाओं में एक दूसरे के सापेक्ष्य परिष्कार हुआ है । यही कारण कि वैदिक भाषा की और ईरानी भाषा के प्राचीनतम रूप की तुलना करने पर अनुमान होता है कि ये दोनों किसी एक ही भाषा की बोलिया है । मुसलमानों की अरब–ईरानी संस्कृति एक संयुक्त संस्कृति थी । अरबो ने ईरान और मिश्र की प्राचीन सभ्यता तथा युनानी–रोम सभ्यता की शेष परम्परा को आत्मसात कर लिया था । इसी प्रकार भारतीय संस्कृति की भी अनेक परम्परागत खूबिया है । पारस्परिक सम्मिलन से दोनो में तत्सम्बन्धी आदान–प्रदान हुआ । मुगलकालीन भारत में कलाओं के विविध रूपों एवं शैलियों का दोनों देशों के कलाकारों के एक दूसरे के यहॉ आने जाने पारस्परिक रूप से आदान–प्रदान हुआ । साहित्य और सांस्कृतिक स्तर पर शासकीय एवं गैरशासकीय अभियानों के सहारे यह क्रम आज भी अनवरत रूप से जारी है ।

प्राचीनकाल से ही दोनों देशों के राजनीतिक सम्बन्ध रहे है । आक्रमण और अधिपत्य के स्तर पर ही नहीं मौर्यकाल एवं गुप्तकाल में सामान्य राजनीतिक स्तर पर भी भारत एवं ईरान के बीच सम्बन्ध रहे है । सल्तनत कालीन एवं मुगलकालीन भारत में तो राजनीतिक सम्बनध अपने चर्मोत्कर्ष पर रहा है । बाकायदा राजनीतिक प्रतिनिधियों के आने जाने तथा एक दूसरे के रश्मों रिंवाज के अपनाये जाने का क्रम प्रारम्भ हुआ । राजनीतिक समारोहो पर प्रारम्भ की जानी वाली अनेकों परम्पराओं का एक दूसरे के यहॉ अपनाया गया ।

राजनीतिक सम्बन्धों का यह क्रम थोड़े बहुत उतार–चढ़ाव के बाद लगभग जारी ही रहा । स्वतन्त्र भारत एवं राजतन्त्रात्मक ईरान में यही स्थिति रही क्रान्तियोत्तर ईरान और भारत के बीच राजनीतिक सम्बन्धों में आध्यात्मिक नेता आयतुउल्लाह खुमैनी के शासन में लगभग अवरोध की स्थिति रही । व्यापारिक एवं वाणिज्यिक स्तर के ही सम्बन्ध रहे । हाशमी रफ़सजानी के काल से सम्बन्धों की दीर्घकालिक परम्परा का क्रम उत्तरोत्तर विकास की तरफ अग्रसर है । जिसमें दोनों देशों के शिखर नेताओं के पारस्परिक आवागमन, भारत ईरान संयुक्त आयोग, भारत–ईरान संयुक्त व्यापार परिषद तथा दोनों देशों की पारस्परिक आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी, वैज्ञानिक गतिविधियों से निरन्तर निखार,

सुधार और परिष्कार होता जा रहा है । अन्तर्राष्ट्रीय मसलों पर दोनों देशों के बीच सामान्य समझ एवं पारस्परिक सहयोग की परिधि का राजनीतिक सम्बन्धों में आती प्रगाढ़ता से निरन्तर विस्तार ही होता जा रहा है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ –सूची

भाग–एक

(A) ईयर बुक

(i) भारत (हिन्दी संस्करण), 1981, 1982, 1983, 1984, 1985, 1986, 1987, 1988, 1989– प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली ।

(ii) INDIA (अंग्रेजी संस्करण)– 1980, 1990, 1991, 1992, 1993, 1994, 1995 प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली ।

(iii) EUROPA year book- 1982 Vol.-II, 1990 Vol.-II, 1993 EUROPA Publications Limited A world Survey London.

(iv) यूनीक–सामान्य अध्ययन 1996 यूनीक पब्लिकेशन्स दिल्ली ।

(v) क्रानिकल ईयर बुक 1992, 1998 क्रानिकल पब्लिकेशन्स (प्रा0) लि0, नई दिल्ली ।

(vi) Direction of Trade statistics year book IMF washington Various issues.

(vii) Pakistan year book 1980.

सन्दर्भ ग्रन्थ –सूची

भाग–एक

(B) रिपोर्ट

(i) वार्षिक रिपोर्ट 1981–2000 विदेश मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली ।

(ii) Setected speeches - Jawahar Lal Neharu, P.B. Narsimha Rao, Indira Gandhi.

(iii) Annual Report of Foreigh Affairs Ministry New Delhi.

(iv) Selected works of Jawahar Lal Neharu New Delhi- 1972 Vol.-3

(v) Foregn affairs record Vol.-XLIV No.-5 May-1998 Delhi.

(vi) World Bank, World development report 1987-P.221, 1990-P. 185, 1993-P.-245- Oxford University Press Newyork.

(vii) Sreedher- "New Flash Points in the Gulf" strategic Analysis Vol.-XVI No.-6 Septemeber 1993 P. 731.

(viii) Grawing friendship between INDIA and IRAN" Indian and Foreign Review Vol.-5 No.-13, 15 April 1968 P. 6

(ix) लोक सभा डीवेट्स Vol. 30, No.- 17 August 16, 1973

(x) Ministry of external affairs annual report 1961-62 P. 39

सन्दर्भ ग्रन्थ –सूची

भाग–दो
पुस्तकें

(i) ए.के. मित्तल–भारत का इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा ।

(ii) ए.के. नीलकण्ठ शास्त्री–नन्द मौर्य युगीन भारत– श्री जैन प्रेस 1998 नई दिल्ली ।

(iii) वी.एन. खन्ना, लिपक्षी अरोड़ा– भारत की विदेश नीति – द्वि.सं. 2000, विकास पब्लिशिंग हाउस (प्रा0) लि0 नई दिल्ली ।

(iv) भारतीय इतिहास – एन.सी.ई.आर.टी.

(v) वी.एल. ग्रोवर–आधुनिक भारत का इतिहास – दशम् संस्कराण 1995 एस.चन्द्र एण्ड कम्पनीलि0 राम नगर, दिल्ली ।

(vi) विपिन चन्द्र–भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, प्रथम संस्करण, हिन्दी मा0क्रि0 निदेशलय, नई दिल्ली।

(vii) वी.एल. फडिया– अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा–1999.

(viii) वी.एम. जैन– प्रमुख देशों की विदेश नीतियां, द्वि.सं. 2000 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ।

(ix) चोपड़ा, पुरी, दास–भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास भाग–एक, एस.जी. वास्वानी फार मैक्मिलन इण्डिया लि0 दिल्ली ।

(x) चोपड़ा , पुरी, दास–भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास भाग–दो कोणार्क प्रेस लक्ष्मी नगर, दिल्ली ।

(xi) डी.एन. वर्मा – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, ज्ञान दा प्रकाशन (पी.एण्ड डी.), नई दिल्ली।

(xii) G.W. Chaudhari- The last days of Pakistan London 1947

(xiii) ग्रिजेश पन्त व अन्य (संपा.) कन्टेम्प्रेरी ईरान एण्ड इमर्जिंग इण्डो–ईरान रिलेशन्स, गल्फ स्टडी प्रोग्राम, जे.एन.यू. दिल्ली ।

(xiv) हरिशचन्द्र वर्मा (सम्पा0) मध्यकालीन भारत–हिन्दी मा0क्रि0 निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय टूडे आफसेट प्रिन्टर्स दिल्ली–1996

(xv) J.C. Kundra- Indian Foreign Policy- 1947-54 (Jakarta 1955)

(xvi) खन्ना एवं वर्मा-उपकार सामान्य ज्ञान 1992 उपकार प्रकाशन आगरा ।

(xvii) लूनिया वी.-भारत की संस्कृति एवं सभ्यता, 1998, 16वाँ संस्करण आगरा ।

(xviii) मजुमदार, राय चौधरी दत्त- भारत का वृहद इतिहास भाग-दो, पुष्प प्रिन्ट सर्विस 1994 दिल्ली ।

(xix) नीलकण्ठ शास्त्री-दक्षिण भारत का इतिहास 1996 बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।

(xx) पाल कनेडी (सम्पा.)- द पिवेटल स्टेट ।

(xxi) Peter Colvocorssi-World Politics since 1945, 5th edition singapoure 1987.

(xxii) पी.डी. कौशिक-अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

(xxiii) आर.सी. जैन- उपकार सामान्य ज्ञान दिग्दर्शन, आटोमैटिक प्रिंटिंग प्रेस मथुरा 1993

(xxiv) रोमिला थापर-अनुवादक-डी.आर.चौधरी, प्रभा यादव-"अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन 1997 ग्रन्थ शिल्पी दिल्ली ।

(xxv) S.N.Lal – अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-शिव पब्लिशिंक हाउस 1989 इलाहाबाद ।

(xxvi) Sushma Gupta- Pakistan as a Factor in Indo Iranian relations 1947-1978 (New Delhi 1988)

(xxvii) सुमित सरकार-आधुनिक भारत-पंचम संस्करण 1998 राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।

(xxviii) Sundasen- Indias Bilateral Payments and Trade Agreement 1947-48 to 1963-64 (Calutta bookland-1965)

(xxix) श्याम किशोर कपूर- अन्तर्राष्ट्रीय विधि, 1991, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी टैक्सको पिंटर्स बहादुरगंज इलाहाबाद

(xxx) स्मिथ-अर्ली हिस्ट्री

(xxxi) श्रीराम शर्मा आचार्य- समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान द्वितीय भाग युग निर्माण योजना गायत्री तपो भूमि मथुरा-1993

(xxxii) V.P. Dutt- Indias foreign Policy (New Delhi) Vikas Publishing House- 11984

सन्दर्भ ग्रन्थ –सूची

भाग–तीन
समाचार – पत्र

(i) अमर उजाला – हिन्दी संस्करण, लखनऊ ।

(ii) नवभारत टाइम्स – हिन्दी संस्करण, लखनऊ ।

(iii) राष्ट्रीय सहारा – हिन्दी संस्करण, लखनऊ ।

(iv) हिन्दुस्तान – हिन्दी संस्करण, लखनऊ ।

(v) दैनिक जागारण – हिन्दी संस्करण, लखनऊ ।

(vi) जनसत्ता – हिन्दी संस्करण, लखनऊ ।

(vii) एकोनामिक्स टाइम्स नई दिल्ली ।

(viii) दिमान – हिन्दी साप्ताहिक दिल्ली ।

(ix) The Times of India - New Delhi.

(x) The Hinu - Madras.

(xi) The Hindustan Times - New Delhi.

(xii) The Indian express - New Delhi.

(xiii) Financial express - New Delhi.

(xiv) The state man - New Delhi.